



संस्कृति और समाजशास्त्र

भाग-२



# संस्कृति और समाजशास्त्र

(CULTURE & SOCIOLOGY)

भाग—२

क्रि. सं. ७

२४२५  
२५

लेखक

डॉ० रणिव राघव एम० ए०, पी०एच० डी०  
श्री मोरिन्द शर्मा



विनोद पुस्तक मन्दिर  
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—

राजकिशोर प्रसास  
विनोद पुस्तक मण्डिर  
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण

सन् १९४१

मूल्य

८

मुद्रक—

राजकिशोर प्रसास  
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस  
बाग मुखर रोड

## भूमिका

भारतीय समाज का अध्ययन विद्वानों को काफी समय से आकर्षित करता रहा है। उनके विस्फाट समाजशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में प्रबल कार्य किया है। हमने समाजशास्त्रीय दृष्टि से कुछ विषयों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। भारत की समस्या वास्तव में बहुत ही सतर्क हुई की दिखाई देती है।

हमने अपनी सामाजिक भाषा में प्रादिमयुगीन व्यवस्था से विकास किया है। हमारा इतिहास काफी पुराना है। पुरे रिकार्ड भी नहीं रहे बचे हैं या उन्हें कि ध्वज प्राप्त नहीं होती। इसलिये पुराने प्रश्नों के विषयों में काफी प्रभाव बना रहता है।

परिवार और कौ-नुरख के सम्बन्धों की समस्या बहुत पुरानी है। घारे समूहों ने परिवारों की निम्न की है और इसे छोड़ कर ही मुक्ति का प्रथम संकेतना है। परन्तु परिवार के बिना समाज चल नहीं सकता। कौ-नुरख का दृष्ट भाव के नहीं है। महाभारत में स्वर्ग पितामह भीष्म ने ही कतिपय में कौ-नुरख के सम्बन्धों को 'इन्ड' की संज्ञा दी है। पश्चिम ने हमारे सामने मैसिनटा के नये मानक (Ethical standard) रख दिये हैं, और विज्ञान के विकास के कारण प्रायः उन्हें धार्मिक मानक स्वीकार भी किया जा रहा है।

राष्ट्रीय समाज बहुत विविध है। हम मूल रूप से यह जानते हैं कि यह संसार कुछ भी नहीं है। हम लोग कार्यप्रण से बने हुए जन्म से लेते हैं। समाज में हमें इसलिये रहना ही है, क्योंकि धर्म हम सबके हैं। यह बाहरी दुनिया प्रत्यक्ष में राष्ट्रीय है। धर्म क्योंकि यहाँ रहना ही है, जो एक निरपेक्ष है, जो पति रहता चाहिए कि जैसे हम रह कर भी रहते नहीं, क्योंकि हम निरापेक्ष हैं। धार्मिक दृष्टि से ऐसा करना अच्छा है, और यह भी बड़ा सत्य है कि यह बहुत ही कठिन है। समाजोत्पादन के लिए कौ-सम्पर्क करना निम्न उस समय मानसिक रूप से निरापेक्ष रहकर भावना में बने रहना, जैसे

ही किसी चीज़ के लिए सम्भव हो, साधारण व्यक्ति के लिए तो यह एक असम्भव चीज़ बात है। परन्तु सोच ही रहने के लिए मर्यादा भी चाहिए और मर्यादा नहीं पुरानी बहाना की बगामी है। ऐसे इन्हें भारतीय समाज कई सतावियों में रहा है। आश्चर्य यह है कि यह इतना सिद्धान्तवादी होकर भी बहुत ही बड़ ही और बहुत ही बड़ होकर भी यह बहुत ही सहिष्णु है।

समाजशास्त्रीय विचारों होने के नाते हमने इसके लिए ठपके चुटा कर सामने रखे हैं और उनकी व्याख्या भी उपस्थित की है। हमारा दृष्टिकोण यह रहा है कि हम भारतीय संस्कृति के भीतरी स्वभाव को प्रकट कर सकें।

आधुनिक जीवन और भारतीय आदर्शों में बड़ा भेद दिखाई देता है। हमने उसमें व्यक्ति और समाज के अन्तर्भावित सम्बन्धों को देखने की चेष्टा की है, और यह भी जानने का प्रयत्न किया है कि हमारी विपत्तियों में से कितना ऐसा है जो हमारे काम आ सकता है।

हमने यहाँ यह निर्णय देने का प्रयत्न नहीं किया कि समाज में यही होना चाहिए। हमने आदिम समाजों की व्यवस्था से अतः तक के समाजों का विश्लेषण करने की चेष्टा की है।

समाज में कोई बात अकारण ही नष्ट नहीं होती। उसके पीछे कोई रूढ़ि (myths) परम्परा (traditions) या रिवाज (customs) होते हैं। समाज का मानसिक स्तर जैसा होता वही उसकी चिन्तना भी होती। इस बात को हमने दिखाने का प्रयत्न किया है। विभिन्न समाजों में या विभिन्न कालों में क्या परिवर्तन न हुए, और किस प्रकार हुए, यह हमने अध्ययन करने का प्रयत्न किया है।

विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक एक प्रकार से और अधिक आवश्यक है, कि इसमें भारत तथा अन्य स्थानों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और पारिवारिक व्यवस्थाओं से भारतीय प्रणाली को मिला कर देखा गया है।

मंगेय रायच

गोविंद शर्मा

## विषय-सूची

१—आदिम समाज का विकास	१
२—सांस्कृतिक मर्यादा और उपयोग आदिम समाज	१०
३—परिवार	२१
४—औरत का हस्त	२६
५—विश्वासों का काल और सामाजिक प्रभाव	४२
६—वैदिकता का सामाजिक आधार	५८
७—यौन-जीवन की सामाजिक व्यवस्था	८०
८—सामाजिक परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक भेदों का विकास	१०४
९—समाज विकास और प्रेम	१४२
१०—आधुनिकता और भविष्य का संघर्ष	१०६
११—प्राकृतिक उपादान तथा भौतिक पम्पविकास	१८२
१२—भारतीय सामाजिक विकास और अणुधन नियमन	२१४





# संस्कृति और समाजशास्त्र

भाग—२



## प्रादिम सभ्यता का विकास

मनुष्य अन्य जीवधारियों एवं निर्जीव पदार्थों के विषय में अद्भुत जानकारी रखता ॥ पर स्वयं अपने विषय में अपेक्षाकृत बहुत कम जानता है। मनुष्य कब एवं कैसे उत्पन्न हुआ ? विभिन्न वैज्ञानिक या पौराणिक मतानुसार क्या वह 'जोड़' के रूप में उत्पन्न हुआ अथवा सृष्टि के विकास की किसी निश्चित योजना के अन्तर्गत ही उसने यह विकसित रूप प्राप्त किया है ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो धारम्भ ही से मानवीय जोड़ एवं अनुसन्धान के विषय रहे हैं। वस्तुतः मनुष्य के प्रादुर्भाव से उसके वर्तमान रूप तक की कहानी ही हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास है जिसके अन्तर्गत मनुष्य का विकास उसकी भिन्न भिन्न प्रजातियाँ (races) उनके मूल निवास-स्थान उनका विकास एवं बर्बर अवस्था से राज्य के नागरिक के रूप तक की अवस्थाओं का अध्ययन परम आवश्यक है। इसीलिए उन विभिन्न 'भूत्यों' एवं 'इलाकों' का उत्खनन करना आवश्यक है, जिनमें से हाकर ॥ मनुष्य आज अपने वर्तमान स्तर को प्राप्त कर सका है। मानव एवं अन्य प्राणियों के प्रस्तुति-वस्तुओं (fossilized remains) ने इस विषय के अनुसन्धान में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की है।

सृष्टि की रचना के साथ मनुष्य का जन्म नहीं हुआ है। इसके विपरीत, जन्म-काल की दृष्टि से वह अन्य सब प्राणियों के बाद उत्पन्न हुआ है। सृष्टि

के प्रारम्भ में जबका सबसे प्राचीन युग में तो प्रायःपारि ये ही नहीं। इस काल का 'अजीक युग' (Azoic period) कहा जाता है। इसके उपरान्त वह 'जीव युग' आता है जिसमें मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी उत्पन्न हुए जैसे कि जैली मुक्त पदार्थ (Jelly-like substance), समुद्री जाल (Sea-weeds) छोटी-छोटी मछलियाँ, रेंगने वाले एवं चल के पशु, और पृथ्वी के अन्य पशु आदि। मनुष्य से पूर्व जिस काल से प्राणी उत्पन्न हुए उसके अनुसार निम्नलिखित युगों की गणना की जाती है —

(क) अत्यन्त प्राचीन काल (Archeozoic period)—यह युग साब से कम समय १५००,००० ००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। यह सबसे अधिक पुराना युग था। इसमें 'एक-कोषीय-जीव' (Uni-cellular life) उत्पन्न हुआ। पुरातन शास्त्रियों (Paleontologists) के अनुसार पृथ्वी की अब तक की २ अरब वर्ष की आयु का ३० प्रतिशत समय इसी एक-कोषीय-जीव में बीता। इसी युग को अति-सुपुरा-जीव-युग भी कहा जाता है।

(ख) अति प्राचीन काल (Proterozoic period)—यह युग संपूर्ण युग के बाद आया। इसे 'सुपुरा-जीव-युग' भी कहते हैं। यह समय साब से ६२५ ००० ० ० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था और पृथ्वी की आयु (२ अरब वर्ष) का २५ प्रतिशत समय इसी युग में बीता। इसी काल में 'बहु-कोषीय जीव' (Multi-cellular life) प्रारम्भ हुआ। इस काल में 'बिना रीढ़ की हड्डी वाला' 'बहु-कोषीय-जीव' विकसित हुआ। जैसे जैसे आदि इसी युग के प्राणी थे।

(ग) प्राचीन काल (Paleozoic period)—प्रारम्भ से यह तीसरा युग था। इसी को 'पुरा-जीव-युग' भी कहा जा सकता है। पृथ्वी की आयु का ३० प्रतिशत समय इसी युग में बीता था, जिसमें कि रीढ़ की हड्डी वाले (Vertebrate life) जीव जैसे कि मछलियाँ रेंगने वाले जानवर आदि उत्पन्न हुए। पृथ्वी की आयु का ३० प्रतिशत समय इस युग में बीता था और यह युग साब से लगभग २५० ००० ००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था।

(घ) 'मध्य-जीव-युग' (Mesozoic period)—यह प्रारम्भ से चौथा युग था जिसमें छोटे किराब के 'स्तनधारी' (Mammals) एवं चिड़ियाएँ उत्पन्न हुई थी। यह समय साब से लगभग १६, ००० ००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था एवं पृथ्वी की आयु का ११ प्रतिशत भाग इसी युग में बीता था।

(ङ) 'नवजीव-युग' (Cenozoic or Cenozoic period)—इस युग में बड़े-बड़े 'स्तनधारी' (Mammals) का जन्म प्रारम्भ हुआ। इसी युग के अन्त

में मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ। यह युग आज से साढ़े पाँच करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। चपकु छ से यह पाँचवा युग है।

विषय-वस्तु को सरल एवं आसु बनाने की दृष्टि से ही यहाँ पाँच युगों का वर्णन किया गया है—सभ्यता भूयर्म्मास्त्रियों ने उत्पन्न प्राचीन काल या 'अति-पुपुरा-जीव-युग' (Archeozoic period) को गहना से बाहर रखकर 'पुपुरा-जीव-युग' (Proterozoic period) को अति-प्राथमिक युग (Remote Primary period), 'पुरा-जीव-युग' (Paleozoic period) को 'प्राथमिक युग' (Primary period), 'मध्य-जीव-युग' (Mesozoic period) को 'द्वितीय युग' (Secondary period) एवं 'नव-जीव-युग' (Cainozoic period) को 'तृतीय एवं चतुर्थ युग' (Tertiary and Quaternary period) के नामों से सम्बोधित किया है। भूयर्म्मास्त्रियों ने इस 'तृतीय' एवं 'चतुर्थ' युग को फिर क्रमशः तीन-तीन भागों में विभाजित किया है, अर्थात् नव-जीव-युग को छः भागों में बाँटा है जिसके द्वारा मनुष्य के प्रादुर्भाव एवं क्रमिक विकास का इतिहास सुबन हो जाता है।

### 'नव-जीव-युग' सम्बन्धी तृतीय युग का विभाजन'

#### 1 Eocene period

इस काल में जेरवाले स्तनमय (Placental mammal) उत्पन्न हुए।

#### 2. Oligocene period

इस युग में मनुष्य जैसे आकार के बन्दर सहस्र आनवर (First Small Anthropoid Apes) उत्पन्न हुए।

#### 3. Miocene period

इस युग में बन्दरों के पूर्वज एवं मनुष्य की सी शक्ल (Humanoid forms) के प्राणी उत्पन्न हुए।

### 'नव-जीव-युग' सम्बन्धी 'चतुर्थ' युग का विभाजन

#### 1 Pliocene period

पैरों पर खड़े होकर चलने वाले (Pithecantropus erectus) आनवरों का जन्म इसी समय हुआ था।

#### 2. Pleistocene or Glacial period

इसी युग में वास्तविक मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग में बार बार भूमि के उत्तरी पोलार्ध में हिम का महापात हुआ। हिमपात से पूर्व की समय अवधि १,०००,००० वर्ष प्राचीन जाती है। उसके बाद प्रथम हिमपात (First glacial) आज से १,००,००० वर्ष पूर्व हुआ; दूसरा हिमपात ७१,०००

भी सम्मता की प्रगति में योगदान करती है। मिस्र, सुमेरिया, चीन, एवं भारत आदि देशों का इतिहास तत्कालीन विभिन्न मानव-जातियों की सम्मता और संस्कृति का दर्पण है जिसमें हम उनके शौरवमय अतीत की आँकी देख सकते हैं।

संस्कृति और मानव-शास्त्र का गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य का रहन-सहन मानवशास्त्र के नियम अध्ययन का विषय है। मनुष्य सर्वत्र एकसा नहीं मिलता। उसके विवेक अनेक कारणों से होते हैं। वस्तुतः मानव सभ्यता में एक सा नहीं है। उसके विवेक उसे ज्ञान प्रकाश के स्पाशरों में उपस्थित करते हैं।

प्राचीनकाल में मनुष्य के विकास के विषय में लोगों में कोई धारणा नहीं थी। इसीलिये हमें उसके सांयोगिक अध्ययन का कोई मार्ग नहीं था। भूवीस और इतिहास, इन दोनों का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रकृति की ही अनेक वस्तुओं के प्रति मानव के दृष्टिकोण में जो भेद हैं, वह उसकी संस्कृति में भेद उत्पन्न कर देता है। इन भेदों को प्रत्येक दल या जाति धारण करता मानती है। उस विवेक आत्मा को मानते रहने से मनुष्यों में संस्कार-सा बन जाता है। मनुष्य का अध्ययन करने लिए आवश्यक है कि पहले हम समाजशास्त्रीय व्याख्याओं का अध्ययन करें। समाजशास्त्र बिना मानवशास्त्र के समुप है।

जीव-शास्त्र के बाद ही मानवशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। बट्टाबो में से सोर कर निकाले गये अस्तित्व अवस्थाओं में मनुष्य के दृष्टिकोण को बतल दिया है। विज्ञान और मानवशास्त्र का इसीलिये घट्ट सम्बन्ध है। किन्तु मानव शास्त्र विकासवाद तक ही सीमित नहीं रहता। वह तो मनुष्य का अध्ययन करता है, इसलिये उसे मानव के अनेक रूप देखने पड़ते हैं। उस रूप में मानव शास्त्र समाजशास्त्र के अन्तर्गत आ जाता है।

संस्कृति समाजशास्त्र के अध्ययन का एक प्रमुख विषय है, वस्तु संस्कृति की व्याख्या करना कठिन है। हमने प्रथम चरण में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों में संस्कृति की व्याख्या की है।

मनुष्य के जीवन के अध्ययन के लिये हमें निम्नलिखित तथ्यों को देखना आवश्यक होता है—

(१) समाज क्या है ? उसका विशाल किन्तु नियम और धारण के अन्तर्गत रूप।

(२) समाज की आस्थाएँ किन बाह्य परिस्थितियों से जन्म लेती हैं । उनके पोषे वास्तविकता क्या होती हैं ।

(३) धर्म और लोक व्यवहार किन सिद्धांतों पर अपना विकास करते हैं ?

यहाँ हम इन्हीं विषयों पर प्रसार डालने की चेष्टा करेंगे ताकि संस्कृति और समाजशास्त्र का अभ्योप्यायित सम्बन्ध स्पष्ट हो सके ।



भी सम्प्रदाय की प्रगति में योगदान करती है। मिस्र, सुमेरिया, ग्रीस एवं भारत आदि देशों का इतिहास तत्कालीन विभिन्न मानव-जातियों की सम्प्रदाय और संस्कृति का दर्शाता है जिसमें हम उनके यौवनमय अतीत की झलक देख सकते हैं।

संस्कृति और मानव-शास्त्र का यह सम्बन्ध है। मनुष्य का रहन-सहन मानवशास्त्र के लिये अध्ययन का विषय है। मनुष्य सर्वत्र एकसा नहीं मिलता। उसके विवेक अनेक कारणों से होते हैं। वस्तुतः मानव सत्ता में एकता नहीं है। उसके विवेक उसे भाषा प्रकार के अन्तरों में उपस्थित करते हैं।

प्राचीनकाल में मनुष्य के विकास के विषय में लोगों में कोई आस्था नहीं थी। इसीलिये हमें उसके सांयोगिक अध्ययन का कोई मार्ग नहीं था। यूरोप और इतिहास इन दोनों का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अति की ही अनेक वस्तुओं के प्रति मानव के दृष्टिकोण में जो भेद है वह उसकी संस्कृति में भेद उत्पन्न कर देता है। इन भेदों को प्रत्येक बल या जाति धारण करता मानती है। उस विशेष आस्था को मानते रहने से मनुष्यों में अस्कार-सा बन जाता है। मनुष्य का अध्ययन करने लिए आवश्यक है कि पहले हम समाजशास्त्रीय व्याख्याओं का अध्ययन करें। समाजशास्त्र बिना मानवशास्त्र के मजबूत है।

जीव-शास्त्र के बाद ही मानवशास्त्र का अध्ययन आरम्भ हुआ। बहूनों में से जोर कर निकाले गये प्रस्तुत अवधारणों ने मनुष्य के दृष्टिकोण को बदल दिया है। विज्ञान और मानवशास्त्र का इसीलिये घट्ट सम्बन्ध है। किन्तु मानवशास्त्र बिनासवार तक ही सीमित नहीं रहता। वह तो मनुष्य का अध्ययन करता है इसलिये उसे मानव के अनेक रूप देखने पड़ते हैं। उस रूप में मानव शास्त्र समाजशास्त्र के अन्तर्गत आ जाता है।

संस्कृति समाजशास्त्र के अध्ययन का एक प्रमुख विषय है, परन्तु संस्कृति की व्याख्या करना कठिन है। हमने प्रथम अध्याय में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों से संस्कृति की व्याख्या की है।

मनुष्य के जीवन के अध्ययन के लिये हमें निम्नलिखित तथ्यों को देखना आवश्यक होता है—

(१) समाज क्या है ? उसका विकास किस नियम और प्रारम्भ के अन्तर्गत हुआ।

(२) समाज की वास्तव्य किन बाह्य परिस्थितियों से जन्म लेती है ।  
उनके पीछे वास्तविकता क्या होती है ।

(३) जर्म और लोक व्यवहार किन सिद्धान्तों पर अपनी विकास  
करते हैं ?

यहाँ हम इन्हीं विषयों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे ताकि संस्कृति  
और समाजशास्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट हो सके ।

## सांस्कृतिक मर्यादा और उपकरण समाज

प्रत्येक समाज में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार से एक प्रकार का संबंध उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति दूसरे से जब मिलता है, तब उनमें बहिर्मुख प्रवृत्ति होती है। वे एक दूसरे से समन्वय करने की चेष्टा करते हैं किन्तु उनका भेद प्रपत्नी जैसा वस्तु माना जाता है।

समाज में कुछ परम्पराएँ होती हैं, कुछ नियम होते हैं, और उनके साथ रिवाज के तौर पर बहुत सी बातें चलती जाती हैं। मनुष्य एक परिस्थिति में जन्म लेता है और वह उसको निरन्तर प्रभावित करता है। परम्परा उसकी एक अभिव्यक्ति है। व परम्पराएँ समाज में पिता से पुत्र को और पुत्र से पुत्र को वाम-स्वरूप प्राप्त होती हैं। मनुष्य एकलव्य परिवर्तन नहीं कर पाता। पिता के हाथों जब पुत्र पलता है तो पिता के पुत्र की अपेक्षा वास्तविकता में पुत्र बर पड़ती है। सुख-दुख दोनों में ही उसका वह मानसिक अभ्युत्थान करता है। इसके समय में संबंध होते हैं। पहले भी कुछ संबंध हो चुके होते हैं। अतः वह नये संबंधों को पुरानों की पृष्ठभूमि के अन्तर्गत रखकर देखता है ?

विशेष घटनाओं के बारे में जो सर्वमान्य निर्णय होते हैं और जिन्हें समाज अपने लिए उचित तथा उपयोगी स्वीकार करता है, उन्हें परम्परा के अन्तर्गत रख लिया जाता है। प्रत्येक बार के संबंध के लिये नयी व्याख्या नहीं खोजी जाती क्योंकि मतेष्य के लिये पृष्ठभूमि की आवश्यकता पड़ती है।

यद्यपि किसी भी समाज के अध्ययन में हमें इसीलिए उसके इतिहास को देखना पड़ता है। भारतीयों में जबैक पहचाना धर्म एक परम्परा के अन्तर्गत आता है, किन्तु किसी समय इसका भी कोई उद्भव रहा होया। उस उद्भव का सिद्धांत ज्ञात नहीं जाता यदि बताया है कि परम्परा में उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं थी। भारतीय पक्षी प्रथा अनेक जातियों में विद्यमान है। इसका अन्तःस्थ विवेक-कर एतद्वत् संस्कृति के साथ जुड़ा है। यद्यपि यह भी एक प्राचीन परम्परा है। भारतीय पंचगव्य का प्रसार पाते हैं, परन्तु अन्य देशों में ऐसा नहीं करते। केतिहर समाज में कभी कोई प्रथा भी जो हमारे यहाँ पवित्र बन गई। परम्परा-व्यसन केवल भारतीयों में ही नहीं अपितु संसार के अन्य देशों में भी होता है। घरों के देव में अथवा ऐतिहासिक में जुड़कर होता है, काफ़ी ज़रूरतों में ही बनते हैं। यह पवित्र सचता है। इसीलिए नया ज़रूर देखने की प्रथा भारतीय मुसलमानों में भी विद्यमान है। घरों के साथ यह परम्परा भारत में प्रायः और जस पड़ी और मुस्लिम खून-खून में धर्म के सहारे उतर गई।

यै परम्पराएँ पीढ़ी दर पीढ़ी बनती हैं। इन पर धर्म लोग रुक भी नहीं करते। समाज में इसी भाँति जब नयी समस्या पैदा होती है तब उससे उद्भूत नये नये सचों का उनके आधार पर ही निश्चित कर दिया जाता है। समाज में नया संभव नयी परिस्थितियों से जन्मता है। परन्तु कोई भी नयापन अपने पीछे एक आधार लिये होता है। उस आधार के बिना वह अपने अस्तित्व को समझ नहीं पाता। केवल समय ही नहीं, अत्यन्त और धार्मिक कही जाने वाली जातियाँ भी इसमें पीछे नहीं हैं। एक मतानुसार चित्त की गटनाओं की स्मृति या आदेश उस समय के निश्चय निश्चय या विधि विधान का संक्षिप्त रूप हो कातून है। इसमें जनजातियाँ पुराणकथा परम्परा इत्यादि का भी समावेश होता है, जिनकी सहायता से कि गटना-विवेक द्वारा उत्पन्न समस्या का निदान प्रस्तुत किया जाता है।

वर्तमान युग में विधि-विज्ञान बहुत विकास कर गया है। धार्मिक कोई कातून यों ही नहीं बन सकता। सामंतीय युग में जो प्रकार के कातून भारत में प्रचलित थे।

एक : धर्मशास्त्र।

दो : दैनिक क्रियाओं में राजा का वचन।

धर्मशास्त्र के निर्माता ब्राह्मण थे। ये अपने समाज में एक प्रकार की मर्यादा रखना चाहते थे। इसलिये उनके बनाए नियमों में एक विशेष प्रकार की प्रविष्टि है। पाप पुण्य और नैतिक भावना से बना यह ब्रह्मधर्म पर आधारित विधान भारत में अभी तक लागू रहा है।

सामंतीय शासक एक शासनकर्ता (administrator) था। वह केवल बाह्य कृत नियमों का ही भुक्तियोग प्राप्त करता था। किन्तु वह ब्रह्म विद्या में, वहाँ कि उसे विधि नहीं मिलती थी, अपने विवेक से काम लेता था। प्राक्लिखित और ब्रह्म को बाह्यकृत बर्न-शास्त्र में वहाँ उल्लिखित किया गया है वहाँ उसका बर्न और सभाय से सम्बन्ध होता है।

प्राये ब्रह्मकर विद्या सभाय और कार्तिसिद्धि काग्न बनाने लगी। तब तक समाज बहुत बलवत् गया। इस समय बर्न को पीछे छोड़कर प्रवाहित के लगे मामलों का आसरा लिया गया।

इस दृष्टि से प्राक्लिखित समाजों में कोई कानून नहीं होता। कानून की बड़ी परिभाषा वहाँ पायी नहीं होती।

प्राचीन भारत में समितियाँ होती थीं। परन्तु उससे भी प्राचीन काल में समितियों का अभाव था। प्रबन्धविषय में कम दिया गया है। पहले ब्रह्मपति होता था। जब उससे काम नहीं बना तब समाज बनी। समार्ये जब बड़ी होने लगी तो समितियाँ जुनी गईं और अंत्योक्तता राजा या विद्वाने विधि को सुरक्षित रखा।

कुछ के मतानुसार लिखित नियम और विधि ही समाज में कानून कहला सकती है, जिनके द्वारा शासन संभव होता है। किन्तु इपसर्व में प्रब भी अनिश्चित विद्या है। वहाँ परम्परा से ही काम चलता रहा है। परन्तु कानून और विद्या में अंतर होता है।

प्राचीन काल की कई सम्य आदिवासी भी ऐसी बसायी जाती हैं जिनके यहाँ केवल सर्वसाधारण में नहीं था। फिर भी उनके वहाँ यौक्तिक रूप से ही कानूनों को मान रखा जाता था।

भारत में केवल बहुत प्राचीन है। पाश्चात्यों ने इस पर मतभेद है। बल्कि यहाँ इस विषय पर विचार न करके हम यही कहें कि परम्परा जब सर्वमान्य नहीं होती और संश्लिष्ट हो जाती है, तब कानून को सिखा जाता है।

परन्तु भारत में कई कबीला आदिवासी हैं जिनमें केवल नहीं रहा। फिर भी उनके समाज में कुछ कानून माने जाते हैं।

जो समाज केवल एक ही परिवार के विस्तार से बना हो जिसमें शासन की आवश्यकता न हो, वहाँ राज्य नहीं होता। वहाँ कानून की भी आवश्यकता नहीं होती। कानून निष्पन्नता चाहता है। ब्रह्म और कानून सामाजिक मान्यता के बिना नहीं रह सकते। पहले अमानक यातनाएँ ही जाती थीं क्योंकि प्रपरा की को कष्ट देना अन्तर्गामी समाज में मान्य था, परन्तु प्राये ब्रह्मकर इस

प्रकार शारीरिक कष्ट देने को अत्यन्त नहीं माना गया उसे बर्बर समझा जाने लगा ।

प्रत्येक आदिम समाज में हमें नियम और विधि के दर्शन होते हैं । उनका कड़ाई से पालन किया जाता है ।

कार्लोस के मतानुसार काबून की परिभाषा यों है—“काबून एक प्राचार व्यवहार का नियम या सिद्धान्त है, वह इस औचित्यानुसार निर्धारित किया जाता है कि यदि समुक्त रूप से उत्पन्न होपा तो कचहरीयाँ उसके लिये निर्धारित रूप से शक्ति प्रयोग करके उसे लागू करेंगी । वह सर्वव्याप्य रूप से माना जाता है कि काबून व्यवहार में माने वाली शक्ति है ।”

किन्तु इस विचार से कचहरी का महत्त्व सबसे अधिक हो जाता है । काबून से पहले कचहरी का स्थान बन जाता है । आदिम समाजों में कचहरी का रूप क्या था यह विषय हमारे सामने विद्यमान बन कर आता है । उस समय इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी । परम्परा भी इस प्रकार नियमों के बाध को मानती नहीं सकती थी ।

धार्मिक आदिम समाजों में धार्मिक शक्ति के संपन्न नहीं हैं बिनाके धर्मगुरु हम कचहरी को रद्द सकते हैं । किन्तु प्रकारान्तर से धर्म क्यों में उनमें कचहरीयाँ जैसी कुछ व्यवस्था भी ऐसा हमें मिलता है । समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एकत्रित होते थे और झगड़ों के फैसले किया करते थे । वह एक प्रकार की अस्थायी कचहरी बन जाती थी । कुछ समय के लिये प्राप्त में उस विषय पर विचार किया जाता था ।

भारतीय समाज की पंचायतें इसी का प्रकारान्तर हैं । वीर जनपदों में बयोद्वय मिलते थे और उनकी शक्ति कालान्तर में इतनी बढ़ गई थी कि सम्राट भी उनसे सलाह लेकर काम किया करते थे । वीर जनपदों का राजनीतिक रूप कुछ हो गया है, किन्तु अब भी पानों में पंचायतों का महत्त्व वर्तमान है । नवी पंचायतें ग्रामीणों की इसी परम्परा को देखकर बनायी गई हैं ।

प्रत्येक आदिम समाज में अज्ञात तथ्य किये जाते हैं । वीर इसके लिये कोई न कोई मार्ग प्रपन्नाया जाता है । वे समा के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं । यह काम प्रायः धार्मिक माना जाता है ।

1—The law is a principle or rule of conduct so established as to justify the prediction with reasonable certainty that it will be enforced by the courts if its authority is challenged.

सामंतीय शासक एक धासगकर्ता (administrator) था। वह केवल बाह्यरूप कुछ नियमों का ही मूल्परतया पालन करता था। किन्तु वह बन्धु विधान में, जहाँ कि उसे बिधि नहीं पिसती थी, अपने विवेक से काम लेता था। प्रामाणिक और बन्धु को बाह्यरूपक बर्न-शास्त्र में नहीं प्रतिबिम्बित किया गया है जहाँ उसका बर्न और समाज से सम्बन्ध होता है।

प्राये चलकर विधान समाज और कार्त्तिसर्ग कागुल बनाने लगीं। तब तक समाज बहुत बदन गया। इस समय बर्न को पीछे छोड़कर प्रजाहित के नये मानदंडों का धारण किया गया।

इस दृष्टि से धारिम समाजों में कोई कागुल नहीं होता। कागुल की नयी परिभाषा यहाँ लागू नहीं होती।

प्राचीन भारत में समितिवादी होती थीं। परन्तु उससे भी प्राचीन काल में समितियों का अभाव था। धर्मबोध में कम किया गया है। पहले बृहस्पति होता था। जब उससे काम नहीं जाता तब सभा बनी। समार्ये जब बड़ी होने लगीं तो समितियाँ जुगी बई और अंततःपला राजा धामा बिसने बिधि को सुरक्षित रखा।

कुछ के मतानुसार निश्चित नियम और बिधि ही समाज में कागुल कहना सकती है, जिनके द्वारा शासन संभव होता है। किन्तु दशरथ में धर्म भी प्रतिबिम्बित विधान है। जहाँ परम्परा से ही काम चलता रहता है। परन्तु कागुल और विधान में अन्तर होता है।

प्राचीन काल की कई सम्म बाधियाँ थी ऐसी बतानी जाती हैं जिनके यहाँ सेवन सर्वसाधारण में नहीं था। फिर भी उनके यहाँ मौखिक रूप से ही कागुलों को याद रखा जाता था।

भारत में सेवन बहुत प्राचीन है। पाश्चात्यों में इस पर मतभेद है। बस्तुतः यहाँ इस विषय पर विचार न करके हम यही कहेंगे कि परम्परा जब सर्वमान्य नहीं होती और संश्लिष्ट हो जाती है, तब कागुल की विज्ञा जाता है।

परन्तु भारत में कई कबीला बाधियाँ हैं जिनमें सेवन नहीं रहा। फिर भी उनके समाज में कुछ कागुल माने जाते हैं।

जो समाज केवल एक ही परिवार के विकास से बना हो, जिसमें शासन की आवश्यकता न हो यहाँ राज्य नहीं होता। यहाँ कागुल की भी आवश्यकता नहीं होती। कागुल निष्पक्षता चाहता है। बन्धु और कागुल सामाजिक मान्यता के बिना नहीं रह सकते। पहले जमानक आतमाएँ थी जाती थीं क्योंकि धर्म राजी को कष्ट देता तत्कालीन समाज में मान्य था, परन्तु प्राये चलकर इस

प्रकार धार्मिक कष्ट को व्यर्थकर नहीं माना गया उसे बर्बर समझा जाने लगा ।

प्रत्येक धार्मिक समाज में हमें नियम और विधि के दर्शन होते हैं । उनका कड़ाई से पालन किया जाता है ।

काइज के मतानुसार कानून की परिभाषा यों है—“कानून एक आचार व्यवहार का नियम या सिद्धान्त है वह इस धीक्षितानुसार निर्धारित किया जाता है कि यदि धर्मिक रूप से उत्पन्न होया तो कचहरीयों उसके सिधे निर्धारित रूप से शक्ति प्रयोग करके उसे लागू करेंगी । यह सर्वमान्य रूप से माना जाता है कि कानून व्यवहार में जाने वाली शक्ति है ।”

किन्तु इस हिसाब से कचहरी का महत्त्व सबसे अधिक हो जाता है । कानून से पहले कचहरी का स्थान बन जाता है । धार्मिक समाजों में कचहरी का रूप क्या था वह विषय हमारे सामने चिन्तनीय बन कर आता है । उस समय इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी । परम्परा भी इस प्रकार नियमों के बाल को फेंका नहीं सकी थी ।

सबिकोस धार्मिक समाजों में धार्मिक बंध के संघटन नहीं हैं जिनके अन्तर्गत हम कचहरी को रक सकते हैं । किन्तु प्रकारांतर से अन्य रूपों में उनमें कचहरीयों जैसी कुछ व्यवस्था थी, ऐसा हमें मिलता है ।

समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एकत्रित होते थे और फरमों के फैसले किया करते थे । यह एक प्रकार की अस्थायी कचहरी बन जाती थी । कुछ समय के सिधे आपस में उस विषय पर विचार किया जाता था ।

मास्कोव समाज की पंचायतें इसी का प्रकारान्तर हैं । पौर जनपदों में बपोबुड मिलते थे और उनकी शक्ति असाधारण में इतनी बढ़ गई थी कि सम्राट भी उनसे सहाइ लेकर काम किया करते थे । पौर जनपदों का राजनीतिक रूप घुस हो गया है, किन्तु अब भी गावों में पंचायतों का महत्त्व वर्तमान है । नयी पंचायतें ग्रामीणों की इसी परम्परा को देखकर बनायी गई हैं ।

प्रत्येक धार्मिक समाज में अग्रे उद्य किये जात हैं । और इसके सिधे कोई न कोई मार्ग अपनया जाता है । वे सभा के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं । यह काम प्राचा धार्मिक माना जाता है ।

1—The law is a principle or rule of conduct so established as to justify the prediction with reasonable certainty that it will be enforced by the courts if its authority is challenged.



कोई भी व्यक्ति यदि कोई नियम तोड़ता है तो उसको सजा ही बाकी भोग देना पड़ेगा, क्योंकि वे एक दूसरे के बहुत समीप रहते हैं। निष्पक्षता के कारण वे एक दूसरे पर दृष्टि रख सकते हैं और सजा ही उसे रोक भी सकते हैं।

समाज का विकास दूसरी समस्या प्रस्तुत करता है। तब समाज सहज से संरक्षित हो जाता है।

सहज समाज में कुक्षपति या बलपति हुआ करते थे।

उनमें सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अधिकार निहित रहते थे। कभी-कभी तीनों एक ही के हाथ में रहते थे।

जब बलपति स्वयं ही नियम तोड़ते थे तब कुछ लोग एकजुट होते थे और वे उस पर क्रायट लगाते थे। वे दण्ड भी देते थे। दण्ड अपराधानुसार दिया जाता था। वही कानून की पहली मंजिल थी और प्रजातन्त्र का सीधा (direct) और प्रारम्भिक रूप था।

जब कानून सीधा नहीं लागू हुआ तब समाज में एक दूसरी मंजिल घट गई। इन समाजों में प्रजातन्त्रात्मकता तो थी किन्तु प्रणाली प्रजातन्त्र की न थी जो कि कानूनों को लागू करती। समाज में एक व्यक्ति बलपति बनता था और जब कहीं कोई अपराध होता था तब वह कानून टूटने के कारण अपने अधिकारों का प्रयोग करके दण्ड देता था।

इन अधिकारियों के हाथ में सारी शक्ति निहित होती थी। उन्हें कोई भी रोक नहीं सकता था। उन पर केवल देवी शक्तियों का आधिपत्य माना जाता था। प्रबल ही जनमत का भी उन्हें सब रहता था। परन्तु ऐसे लोग भी सर्वशक्तिमान माने जाते थे वे अपने समाज में प्रायः अनाचार नहीं करते थे। परन्तु स्वयं अपराध करने पर वे अधिकारि बख्शीय नहीं हो सकते थे बस कि नई समस्या के समाज के बलपतियों को दण्ड मिल जाता था।

तीसरी अवस्था में मनुष्य बेतिहृद-बलवाह संस्कृति में आगया।

इन लोगों में वा तो मुखिया या राजा चुने जाते थे। वे राजा अपनी बल पर कानून को ठीक रखने के लिये कचहरियों में न्यायाधीश नियुक्त किया करते थे। फिर उनके नीचे और भी न्यायाधीश होते थे। वे अपने अधिकारों को इस प्रकार बाँट लिया करते थे।

जब जन भी जुमले के रूप में लिया जाता था। वह जन इन समाजों के अधिकारियों को दिया जाता था। उस जन का कुछ जान अन्य कार्यों पर भी व्यय किया जाता था।

कचहरियों में प्रायः ही कानून का पालन किया जाता था। पहले कानून की दृष्टि से देखा जाता था कि प्रमुख कार्य से कानून टूटता है या नहीं और

फिर कबहूँ यह जाँच करती थी कि अपराधी ने वास्तव में धमुक अपराध किया है या नहीं। यह दूसरा काम कठिन था था इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता पड़ने लगी थी और तब गवाह की आवश्यकता ने जन्म लिया। किसी भी व्यक्ति के अपराध को प्रमाणित करने की साक्षी की आवश्यकता पड़ने लगी। प्रारम्भिक काल में गवाह की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सभी एक दूसरे को जानते थे और एक दूसरे के सामाजिक और असांसारिक कार्यों से परिचित थे।

नयी व्यवस्था में परीक्षा प्रारम्भ हुई। ये विभिन्न परम्पराएँ भारत में कई विदेशियों के ध्यानमग्न रह गईं जैसे अपराध किया है या नहीं जाँचने के लिये अग्नि-स्पर्श इत्यादि करना। यदि कोई अग्नि सू कर भी नहीं बसता था तो उसे सज़ा मान कर छोड़ दिया जाता था।

परन्तु यह बात सुनो को ठीक नहीं लगी। मुक्तमान थे। मुल्ता मोर्गे ने इसे अरीयत के विनाश माना और इसे नातिर-प्रथा समझकर रोक दिया गया।

इसके बाद ही साक्ष्य को प्रस्तुत करना एक नयी प्रक्रिया हो गई। धातु के प्रत्येक गवाह की पूरी तरह से जाँच होती है। म्यायाबोध और से बाध में पूछता है, पहले गवाह के बारे में जाँच की जाती है कि वह ठीक कह रहा है या झूठ।

परन्तु यह संक्षिप्त पद्धति सम्यक्ता के विकास के कारण जन्मी है। प्रथम म्यायाबोध का प्रत्येक व्यक्ति से परिचय नहीं होता। समाज बड़ा हो गया है।

आदिम समाज की एक बहुत बड़ी विशेषता होती थी कि उसकी इकाइयाँ छोटी होती थी छोटी मूगोल होता था और इसीलिये उसके सदस्य एक दूसरे को जानते थे।

परस्पर व्यक्तिगत परिचय होने के कारण समस्या दूर होती थी, और न जानने की परिस्थिति में दूरी का बड़ा ख़ासा संभाव्य है।

आदिम राज्य के विषय में भी मत निर्धारण करना कठिन कार्य है। क्या उनमें कोई सरकार नामक वस्तु थी? आजकल हम इसे सरकार कहते हैं, वह आदिमकाल में नहीं थी। तब तक राज्य के स्वरूप का विकास नहीं हुआ था।

किन्तु उस समय भी सरकारी काम व्यवस्था होने थे—अर्थात् किसी शासन की आज्ञा चलती थी।

प्रजा की स्वतन्त्रता धीरे-धीरे और समृद्धि के लिये तब भी कोई

कोई भी व्यक्ति यदि कोई नियम तोड़ता है तो उसकी पीछा ही बाकी लोग बेस लेते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे के बहुत समीप रहते हैं। निष्पत्ता के कारण वे एक दूसरे पर दृष्टि रख सकते हैं और पीछा ही उसे रोक भी सकते हैं।

समाज का विकास दूसरी समस्या प्रस्तुत करता है। तब समाज उच्च से संक्षिप्त हो जाता है।

उच्च समाज में बहुपति या दलपति हुआ करते थे।

उनमें सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक अधिकार निहित रहते थे। कभी-कभी तीनों एक ही के हाथ में रहते थे।

जब दलपति स्वयं ही नियम तोड़ते थे तब कुछ लोग एकत्र होते थे और वे उस पर स्फाट लगाते थे। वे दण्ड भी देते थे। दण्ड अपराधानुसार दिया जाता था। यही कानून की पहली मंजिल थी और प्रजातन्त्र का सीधा (direct) और प्रारम्भिक रूप था।

जब कानून सीधा नहीं लागू हुआ तब समाज में एक दूसरी मंजिल आ गई। इन समाजों में प्रजातन्त्रात्मकता तो थी, किन्तु प्रत्यक्षी प्रजातन्त्र की न थी जो कि कानूनों को लागू करती। समाज में एक व्यक्ति दलपति बनता था और जब कहीं कोई अपराध होता था तब वह कानून टूटने के कारण अपने अधिकारों का प्रयोग करके दण्ड देता था।

इन अधिकारियों के हाथ में सारी शक्ति निहित होती थी। उन्हें कोई भी रोक नहीं सकता था। उन पर केवल देवी शक्तियों का आधिपत्य माना जाता था। अन्त्य ही जनमत का भी उन्हें जब रहता था। परन्तु ऐसे लोग जो सर्वशक्तिमान माने जाते थे, वे अपने समाज में प्रायः भ्रष्टाचार नहीं करते थे। परन्तु स्वयं अपराध करने पर वे अधिकारि दण्डनीय नहीं हो सकते थे, जैसे कि पहली अवस्था के समाज के दलपतियों को दण्ड मिल जाता था।

तीसरी अवस्था में मनुष्य केतिहर-बरमाह संस्कृति में आया।

इन लोगों में था तो बुद्धिमा या राजा जुने जाते थे। वे राजा अपनी अपराध पर कानून को ठीक रखने के लिये कबहूरियों में व्यापारीय निमुक्त किया करते थे। फिर उनके नीचे और भी व्यापारीय होते थे। वे अपने अधिकारों को इस प्रकार बाँट लिया करते थे।

प्रथम जन भी जुमनि के रूप में लिया जाता था। वह जन इन समाजों के अधिकारियों को दिया जाता था। उन्हें जन का कुछ नाम धर्म कार्यों पर भी दिया जाता था।

कबहूरियों में प्रायः ही कानून का पालन किया जाता था। पहले कानून की दृष्टि से देखा जाता था कि अमुक कार्य से कानून टूटता है या नहीं और

फिर कहती यह जाँच करती थी कि अपराधी ने वास्तव में समुक्त अपराध किया है या नहीं। यह दूसरा काम कठिन था अतः इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता पड़ने लगी और तब गवाह की आवश्यकता ने जन्म लिया। किसी भी व्यक्ति के अपराध को प्रमाणित करने को साक्षी की आवश्यकता पड़ने लगी। प्रारम्भिक काल में गवाह की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सभी एक दूसरे को जानते थे और एक दूसरे के सामाजिक और असामाजिक कार्यों से परिचित थे।

नयी व्यवस्था में परीक्षण प्रारम्भ हुए। ये विभिन्न परम्पराएँ भारत में कई विवेचनों के सामने लक रही, जैसे अपराध किया है या नहीं जाँचने के लिये अग्नि-स्पर्श इत्यादि करना। यदि कोई अग्नि छू कर भी नहीं जलता था, तो उसे सच्चा मान कर छोड़ दिया जाता था।

परन्तु यह बात तुम्हें को ठीक नहीं लगी। तुम्हें सुझसमान थे। मुस्मा मोमों ने इसे शरीर के खिलाफ माना और इसे काफिर-अपराध समझकर रोक दिया गया।

इसके बाद तो साक्ष्य को प्रमाणित करना एक सच्ची प्रक्रिया हो गई।

धर्म के प्रत्येक गवाह की पूरी तरह से जाँच होती है। न्यायाधीश और वे बाद में पूछता है, पहले गवाह के बारे में जाँच की जाती है कि वह ठीक कह रहा है या झूठ।

परन्तु यह संस्मृत पद्धति सम्यता के विकास के कारण जन्मी है। जब न्यायाधीश का प्रत्येक व्यक्ति से परिचय नहीं होता। समाज बड़ा हो गया है।

धार्मिक समाज की एक बहुत बड़ी विशेषता होती थी कि उसकी इकाइयाँ छोटी होती थीं छोटी नूतन होता था और इसीलिये उसके सदस्य एक दूसरे को जानते थे।

परस्पर व्यक्तिगत परिचय होने के कारण समस्या दूर होती होती है, और न जानने की परिस्थिति में झूठ का बनावट पड़ा जाना संभाव्य है।

धार्मिक राज्य के विषय में श्री मठ निर्धारण करना कठिन कार्य है। क्या उनमें कोई सरकार नामक वस्तु थी? वास्तविक रूप में सरकार कहते हैं, वह धार्मिककाल में नहीं थी। तब तक राज्य के स्वभाव का विकास नहीं हुआ था।

किन्तु उस समय भी सरकारी काम संचालित होने थे—अर्थात् किसी घातक की भाँसा चलती थी।

प्रजा की स्वतन्त्रता जीवन रक्षा और समृद्धि के लिये तब भी कोई

व्यवस्था होती थी। उस व्यवस्था को ही हम प्रकारान्तर से राज्य कहते हैं। यह व्यवस्था व्यक्ति के ह्रास में थी, या किसी समिति के यह परिस्थिति के अन्तर पर निर्भर था।

प्राथमिक समाज की व्यवस्था करने वाली शक्ति (power) में सामाजिक और कानूनी—दोनों प्रकार के अधिकार संश्लिष्ट थे जबकि आज सरकार का कार्य मुख्यतया कानून की रक्षा करना है। आज कानून की शक्ति बहुत अधिक है, जब कि पहले परम्परा रिवाज और जादू तथा वर्म को भी काफी महत्त्व दिया जाता था।

मोघास के मतानुसार—प्राथमिक लोगों में सरकार की परिभाषा यही हो सकती है कि वह एक ऐसी संस्था थी जो समुदाय को एकत्रित रखती थी उससे भोजन की व्यवस्था करती थी कि उसका अभाव न हो और वह शांति बनाये रखने का प्रयत्न भी करती थी।<sup>1</sup>

यह व्यवस्था अभी तक कम तक कि समुदाय छोटा था। गाँवों में अब भी बिप्लवी के लोग इसी प्रकार एकत्र होते हैं, परन्तु अब उच्च जातिवादी इसे अधिक महत्त्व नहीं देती क्योंकि उन्हें मायूस होता है कि ऐसी पंचायतों के पास राजनीतिक अधिकार नहीं होते।

प्राथमिक समाज में सरकार दो सिद्धान्तों पर आधारित होती है—

(१) राज्य सीमा।

(२) और समुदाय (बिप्लवी)।

राज्य सीमा का सिद्धान्त अब लागू होता है जब एक सीमा में रहने वाले लोगों की रक्षा के लिये एक ही सत्ता होती है। वह अपने समुदाय की रक्षा करती है।

समुदाय-सिद्धान्त अब लागू होता है जबकि लोग भूमि बलों में बँटते हैं और उनके लिये भूमि के किसी भाग की सीमा का प्रश्न नहीं उठता। उन्हें अपना खाना भुगतान के लिये बगल-बगल जाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में किसी विशेष भूमि से मनुष्य भँस कर नहीं रह सकता।

जाना इच्छा करते हुए भूमि वाले लोगों और अधिकारियों—जैसे पोस्टल सिमा के आदिवासी सँका के देहा लोगों में अभी भी यही मौजिम है। इन समाजों

1.—We may define government among primitives as the institutions which serve the purpose of holding the community together safeguarding its food supply and guaranteeing peace

में कभी-कभी बलों का प्रसार ४० ० से १०००० वर्ग मील की दूरी तक हो जाता है। किन्तु सबका वासन-नियन्त्रण एक ही संस्था करती है। बलों में जोश से सी व्यक्ति तन होते हैं। सारा समुदाय ही दांति और नियम पालन करने के लिए उत्तरदायी होता है। परिवारों में प्रायः न केवल बच्ची ही सारे दम की होती है, बरन् और भी सामग्रियाँ होती हैं।

जब एक परिवार कृषि के कारण दूसरे परिवार की बरती बसाता है तो झगड़ा होता है।

यदि निर्णय उचित नहीं होता तो डट कर युद्ध होता है।

दांति ■ यदि काम नहीं होता वहाँ दांति से काम लिया जाता है।

इन समाजों में व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रारंभ नहीं-सा ही रहता है। प्रायः व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्तर्गत आते हैं—गहने और वस्त्र आदि। यद्यपि व्यक्ति इनका स्वयं ही निर्माण करता है फिर भी इन वस्तुओं पर भी उसका सम्पूर्ण स्वामित्व नहीं होता क्योंकि समुदाय का उन पर भी अधिकार होता है। समुदाय को अपनी सीमा के भीतर ही रहना पड़ता है और इस कानून को तोड़ना गम्भीर अपराध माना जाता है। कभी-कभी इसका दण्ड मृत्यु भी होता है। प्रायः दण्ड इस प्रकार के झगड़ों को आपस में दांति-पूर्व बार्ता से भी सुलभ होते हैं।

पास्ट्र लिया-बाबी कबीला जातियों में एक और प्रकार की सरकार होती है जिसे यूरोपवासी 'जिरे-डोकसी (Gerardocracy)' कहते हैं। यह सरकार बूजों द्वारा चलाई जाती है। बूजों के छोटे दल को राज्य संभालन के अधिकार दे दिये जाते हैं और उन्हें अपनी जाति के युवकों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्ग-दर्शन करने का अधिकार होता है। वे उन्हें दण्ड भी दे सकते हैं। कभी-कभी आज्ञा का अनादर करने वाला मृत्युदण्ड भी प्राप्त करता है। इन कबीला जातियों में मुखिया या वसपति धायव ही होते हैं। किन्तु वहाँ भी वसपति होते हैं वहाँ अनमत्त पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

बोसास ने उन लोगों को हार्वे स्टर (Harvester) कहा है जो कि सास-मर का मोहन इकट्ठा करते हैं। वे जंगली पौधे इकट्ठा करते हैं। उन्हें देखकर नहीं कहा जा सकता। मैनेनेशिया में कुछ जातियाँ ऐसे मोहन इकट्ठा करके रख लेती हैं। न्यूगिनी के दक्षिणी और पश्चिमी तीर पर कुछ जातियाँ ऐसा करती हैं। इस प्रकार प्राकृतिक रूप से जमे मोहन को काट कर इकट्ठा करने से कबीले को मोहन ठीक तरह से मिल जाता है। कटाई के समय ये कबीला जातियाँ अथवा कबीला जातियों को भी नियमित करती हैं। प्रायिक निर्भरता के इस स्वयं से उनके समाजों में नये कानून बनते हैं।

जब समाज बड़ती है तब हर एक के प्रति एक दूसरे का व्यवहार निर्दिष्ट रहता है। बाबत में एकदठा भोजन नाम में आता है। परन्तु भोजनसुख पुराने नासियों की स्वाधी सम्पत्ति पर हाथ नहीं डालते। नृप, गीतारि के नियम में भी नियम निर्धारित रहते हैं। भूमि सम्बन्धी स्वत्व समस्त कबीला बाँटि के माने जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति या परिवार को कोई भूमि ही बाँटी है कि उसमें से वह भोजन एकत्र करता रहे, तब भी उस भूमि के विक्रय पर सारी बाँटि का ही अधिकार प्रायः महत्व रखता है।

भरपूर लोगों में व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रचलन है। वहाँ बड़े पुत्र को ही सम्पत्ति मिलती है। एक टॉटम ग्रुप का नेता ही प्रायः सारे कबीले का नेता बनता है। जनमत हममें भी बड़ा महत्व रखता है। इसके निवे सभाओं बोड़ी जाती हैं। एक बार निर्वासित किया हुआ व्यक्ति कभी भी लौटाया नहीं जा सकता, वह सबैव निर्वासित ही रहता है।

हमें कभी-कभी नेता मिलकर जनमत पर परामर्श भी करते हैं।

मध्य और दक्षिण अमेरिका मैसिनेसिया पश्चिमी अफ्रीका और पूर्वी उत्तरी अमेरिका में सबसे ज़ेतिहर समाज विद्यमान हैं। किसान बहुत ही मामूली नाँव या बस्तियाँ (नयने) बसा कर रहते हैं। जेतों से ही उनके घर बिरे रहते हैं। प्रत्येक गाँव में एक मुखिया होता है। सारी कबीला बाँटि का एक प्रमुख होता है और ये सब गाँवों के मुखिया उसके आधीन होते हैं। उनका महत्व विशेष नहीं होता। न्यूमिनी की आदिम बाँटियों में प्रमुख का प्रभुत्व इसी से जात किया जाता है कि उसके पास कितनी भूमि है, जिस पर वह ज़ेती कराता है। उसका मुख्य कार्य ग्राम में प्रागतिक अतिथियों का उत्कार करना होता है और वही उनका ज़र्चा उठाता है। प्रमुख बच्चा नहीं हो सकता, क्योंकि उसके अधिकार सीमित होते हैं और ये प्रमुख को पदच्युत भी कर सकती हैं।

सारी भूमि का स्वामित्व अन्तरीयत्वा समुदाय का ही होता है। किन्तु समुदाय भी भूमि नहीं बेच सकता क्योंकि ऐसा करना उनमें असम्भव माना जाता है। भोजन के लिए रस का उत्तरदायित्व है, चाँकि कोई भूखा न रहे। जब सम्पत्ति पर ही व्यक्तिगत अधिकार हो सकता है।

बच्चा मृत्यु तक हो सकता है। कठिन यातनाएँ देना भी प्रचलित है। गैर गैर सीमा के बाहर रस किसी प्रकार का अधिकार प्रयोग नहीं करता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में नियमन का विकास अनुभूति की बड़ती हुई आवश्यकताओं और बदलती हुई परिस्थितियों के हिसाब से अपना रूप परिवर्तित करता गया है।

### ३

## परिवार

( Family )

मनुष्य को प्रकृति ने एकाकी नहीं बनाया । वह स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है । अपने जन्म पालन-पोषण सुरक्षा शिक्षा और अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसे दूसरों की सहायता और सहयोग पर निर्भर रहना होता है । प्रारम्भ से ही छोटे-छोटे समूहों में रहना मनुष्य के लिये आवश्यक और सामयिक प्रमाणित हुआ और इसी प्रकार के जीवन से संबन्धित जीवन की स्थापना हुई । सहयोग और सामाजिकता की भावना केवल मनुष्य में ही नहीं अन्य जीवों में भी मिलती है । मनु-मस्त्रियों का छत्ता बमाना और सहज इच्छा करना या पक्षियों का परस्पर सहयोग से बँसना बनाना अथवा अन्य पशुओं का मिलकर किसी हिंसक शत्रु का सामना करना, इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । परन्तु अन्य जीवधारियों की सामाजिकता केवल सहज-स्वभाव अथवा प्रवृत्ति (Instincts) से उत्पन्न होती है और उसका क्षेत्र तात्कालिक आवश्यकता तक ही सीमित रहता है । इसके विपरीत मानवीय सामाजिकता ज्ञान-पूर्ण है, उसके पीछे विचार और बुद्धि है तथा उसका क्षेत्र किसी आवश्यकता या परिस्थिति विरोध तक ही सीमित नहीं रहता वह बराबर बढ़ता रहता है । बहुत कम तक आवश्यकतावश समाज में रहने से मनुष्य का यह सामाजिक गुण हो



गया है। समाज की स्थापना परिवारों से होती है। परिवार का मानव-जीवन में क्या स्थान है, समाज में परिवार क्यों एक महत्वपूर्ण संस्था है, मानव को समाज में बिना परिवार के अपना जीवन क्यों असुरक्षित महसूस करता है? इसका कारण एकमात्र यही नहीं है कि आवश्यकतावश मानव को परिवार में रहना पड़ा। परन्तु मनुष्य की कुछ आवश्यक शक्तें हैं जैसे संतति पैदा, जाना पीना आदि जिनके कारण वह ससार में जीवित रहता है, इसके अतिरिक्त काम भाव जैसी शक्तें जिसे मानव अकेला पूरी नहीं कर सकता दूसरे की सहायता से ही हो सकती है। इस शक्त की पूर्ति के लिये पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष की जरूरत है, परन्तु काम भाव का परिणाम सन्तानोत्पत्ति हो जाता है। इस प्रकार काम-वासना की सम्पुष्टि तथा उत्पन्न होने वाली संतान की सुरक्षा के लिये स्त्री-पुरुष एक दूसरे के साथ मिलकर रहने लगते हैं। इसलिये एक दूसरे और बच्चों के जीवन-आरक्षण की चिन्ता से परिवार का जन्म हुआ। मनुष्य को कुछ करता है अपने स्वार्थ के लिये करता है। परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये स्वयं काम करे, दूसरों का सहयोग न ले तो उसका स्वार्थ पूरा नहीं हो सकता। इस तरह मानव को अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये दूसरे के स्वार्थों को पूरा करना पड़ता है। इस प्रकार दूसरों के स्वार्थों की पूर्ति करने तथा दूसरों की रक्षा करने से आत्म-रक्षा को बल मिलता है। इस दृष्टिकोण से परिवार का महत्त्व है। इसी कारण प्राचीनकाल से परिवार बने आ रहे हैं।

### परिवार की परिभाषा तथा अर्थ (Meaning and Definition of Family)

हमारे विचार से मनुष्य जाति की बहुत प्राचीन और छोटी संवृद्धि संस्था 'परिवार' है जो वास्तव में निकट सम्बन्धियों का एक समूह होता था। विस्तार पूर्वक परिवार की परिभाषा तथा अर्थ समझने के लिये अन्य मानव-शास्त्रियों की परिभाषा जानना भी अत्यन्त आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है—

'परिवार' व्यक्तियों के उस समूह का नाम है जिसमें वे पिता, रक्त या मोह लेने के सम्बन्ध से बने होकर अलग-अलग नहीं परन्तु एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं। इस गृहस्थी में वे एक दूसरे पर पति-पत्नी माता पिता पुत्र-पुत्री, भाई बहन के रूप में प्रभाव डालते हैं और एक दूसरे के साथ सम्बन्ध

स्थापित करते हैं। वे सब मिलकर इस गृहस्थी में एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं और उसे बनाय रखते हैं।<sup>१</sup>

(बरजेज तथा रॉक)

संक्षेप में परिवार एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके सदस्य वधिर सम्बन्धों द्वारा बंधे होते हैं।<sup>२</sup>

(बीस्टर तथा हॉइजर)

‘परिवार वह समूह है जिसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उनका सम्बन्ध ऐसा हो जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उसका पालन-पोषण भी किया जाये।’<sup>३</sup>

—मेकाइवर व पेन

“एक परिवार समूह, पुरुष जो कि सबका स्वामी उसकी स्त्री तथा जिनों और उनके बच्चों को मिलाकर बनाता है और कभी-कभी इनमें एक या अधिक अविवाहित पुरुषों को भी शामिल किया जा सकता है।”<sup>४</sup>

—डुकरमेन

‘परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जो कि एक ही छप्पे के नीचे रहते हैं, मूल और वधिर सम्बन्धी माँठों से बंधे होते हैं तथा स्वयं वधिर

- 1— A family is a group of persons united by the ties of marriage blood or adopted, constituting a single household interacting intercommunicating with each other in their respective social role of husband and wife mother and father son and daughter brother and sister and creating and maintaining a common culture

—E. W. Burges and H. S. Lock

- 2— The family may briefly be defined as a social grouping the member of which are united by bonds of kinship.”

—Beals and Hojer

- 3— “The family is a group defined by a sex relationship precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children

—R. M. Mac-Iver and C. H. Page

- 4— “A family group consists of a male overlord, his family or families together with their young and may some times include one or more bachelors or unmated males

—Zuckerman

एवं कृषकता की आयोप्याभितरता के आधार पर जाति की बाधकता रखते हैं।<sup>१</sup>

—डी० एन० मजूमदार

इन सब परिभाषाओं से यह प्रतीत होता है कि परिवार कई प्रकार के होते हैं। परिवार में केवल माता-पिता, पति-पत्नी एवं बच्चे शामिल ही नहीं होते हैं परन्तु यह सब ही व्यक्ति होते हैं जो ख़रिद से सम्बन्धित हों, मोह मिले हुये हों तथा जिन्हें परिवार या समाज में परिवार में रहने की स्वीकृति दे दी हो। इसलिये केवल यही कहना कि परिवार में वे ही व्यक्ति शामिल किये जा सकते हैं जिसका ख़रिद सम्बन्ध हो उचित नहीं है।

**परिवार की उत्पत्ति (Origins of the Family)—**

प्रादिकाल में जब विवाह-पद्धति की स्थापना नहीं हुई थी और स्त्री-पुरुष का विधेय-रहित स्नेहानुकूल समागम होता था अन्तान माता के साथ ही रहती थी। माता के हृदय में अन्तान के प्रति जो नैसर्गिक प्रेम और स्वाभाविक ममत्व होता है, उसी के आधार पर मातृसत्तावादी परिवार का जन्म और स्थापना हुई। उस समय तक व्यक्तिगत सम्पत्ति के विचार उत्पन्न नहीं हुये थे। पुरुष अपनी शक्ति का प्रयोग मृगया में करता और शिकार से प्राप्त भोजन से अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। सामूहिक जंगलों से परिवार की रक्षा करता था। बावकों की देखभाल तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने का क्रम पूरी तरह से माता पर ही रहता था और वह भी उस समय तक जब तक कि बच्चे स्वयं अपने भोजन आदि का प्रबन्ध करने लायक नहीं हो जायें।

नवीन पाषाण युग (Neolithic Age) में जब मनुष्य पशु पालने, बरतगाह रखने आदि की कार्य करने लग गया तो उसका एक स्थान पर रहना निश्चित हो गया। अब वह बैचरवार या कुम्भकड़ शिकारी नहीं रहा बल्कि अपने परिवार सहित निश्चित स्थान पर अधिक काम तक बस्तियाँ बनाकर रहने लगा। स्त्री-जाति भी अलग-अलग समागम से बचकर अब निश्चित रूप से किसी विशेष व्यक्ति से ही विवाह करने लगी। स्त्री और अन्तान अब पुरुष के आधीन रहने लगीं। इस प्रकार मातृसत्तावादी परिवार पितृसत्ताक परिवार में परिवर्तित हो

1—'Family is a group of persons who live under the same roof and are connected by nuclear and kinship ties and own a consciousness of kind on the basis of the locality interest and mutuality of obligations.

गये। स्त्री-पुरुषों के जल-समुहों ने व्यक्तिगत परिवार का रूप धारण कर लिया। अपने पासगु पशुओं अपने द्वारा जोड़े प्रपञ्च विभक्त किये हुये जगमाहों और केतों को मुर्छित रखने के लिए बड़े परिवारों की आवश्यकताओं का अनुमन हुआ। एक स्थान पर साथ रहने वाले जल-समुदाय में भय-निर्माण के आधार पर समाज का संगठन करना अनिवार्य हो गया। आदिवासी साम्यवादी जीवन का ह्रास होने लगा और व्यक्तिगत सम्पत्ति का जन्म हुआ। विभिन्न उद्योग-वन्धों और विभिन्न के विकास व अन्य आर्थिक आवश्यकताओं और व्यक्तिगत के आधार पर परिवार का रूप बदलता रहा और अन्तिम में भी इन परिवारों का प्रभाव परिवार के रूप पर पड़ते रहने की सम्भावना है। मनुष्य जाति की एक बहुत पुरानी और छोटी सुवर्णित संस्था 'परिवार' है जो वास्तव में एक निश्चित सम्बन्धों का समूह होता था जिसका संघासन घर का मुख्य पुरुष करता था।

परिवार की उत्पत्ति के बारे में मानवशास्त्रियों ने अपनी-अपनी विचार बाणों घसत-घसत प्रकट की हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मानवशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। सिटन के अनुसार परिवार पुरुष तथा स्त्री की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति या एक किम्वदन्त सम्पत्ति है। इस प्रकार परिवार की उत्पत्ति आर्थिक कारणों की वजह से हुई। परन्तु इस सम्बन्ध में स्पेन्सर, हाब्स, औरसन तथा अन्य विकासवादियों की विचार बाण भी घसत है। उपरोक्त विकासवादियों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति स्त्री पुरुष के अनिवार्य बर्ताविक सम्बन्ध को कि निश्चित होकर निश्चित हो गये, उनके कारण से हुई। परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वेस्टरमार्क और क्रिफ़स्ट का विवाद भी महत्वपूर्ण है। फिर भी परिवार की उत्पत्ति किन कारणों से हुई। इसके उत्तर के लिये हमको ऐतिहासिक तथ्य तथा अन्य दृष्टियों से परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रमुख सिद्धान्त हैं, उनका विवेचन करना होगा। इस प्रकार परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न विचार बाण हैं—

## १ पितृसत्ताक परिवार सिद्धान्त (Patriarchal Theory)—

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न परिवारों की उत्पत्ति हुई उन्हें पितृसत्ताक परिवार कहते हैं, ऐसे परिवार में प्रारम्भ में पिता की प्रधानता थी। अरस्तू (Aristotle) और प्लेटो के अनुसार भी प्रारम्भ में पितृसत्ताक परिवार ही था। वास्तव में देखा जाये तो पशुपासन तथा सेती के आधिपत्य के साथ ही पुरुष ने अपने भय द्वारा अपनी कृता समाज में निर्धारित कर दी। पुरुष-सत्ता के साथ ही समाज

पर व्यक्ति के प्रभुत्व को बहुत बढ़ा दिया गया। साथ ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का रास्ता खोस दिया गया। पशुपालन के कारण भूमि पर खेती के सिधे अधिकार किया गया। राज्य की स्थापना हुई और स्वार्थपरता की भावना को बृद्धि हुई। उस से समाज में भारी कलह का सूत्रपात हुआ। स्त्री पर पुरुष का अधिकार हुआ, क्योंकि वह नहीं चाहता कि जो दूसरे के पास जाय क्योंकि उसे ईर्ष्या होती है। इस प्रकार पुरुष की एकाधिकार तथा ईर्ष्या की भावनाओं के कारण से पितृसत्ताक परिवार का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त पितृसत्ताक परिवार के घर की जिम्मेवारी पुरुष की हुई। सम्पत्ति पर अधिकार स्त्री का नहीं, पुरुष का होता है। मर परम्परा भी पुरुषों के नाम से चलती है। पितृसत्ताक परिवार में स्त्री को अपना घर छोड़कर पति के घर जाकर रहना होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री अपने खरिब के लोगों में न रहकर अपने से भिन्न खरिब के लोगों में जाकर रहने लगती है। आरतर्पण में भी पितृसत्ताक परिवार ही पाय पाते हैं। (कुछ मपवाओं को छोड़कर)।

## २ मातृसत्ताक परिवार सिद्धान्त (Matrarchal Family)-

प्रारम्भिक जनसत्ता में समाज में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य थीं। एक मातृसत्ता और बाद में दूसरी पितृसत्ता समाज। जनसत्ता के प्रारम्भिक काल में माता का ही राज्य था। अधिकार तथा सम्पत्ति सांघिक होती थी किन्तु जो बड़ी बहुत परिवार की सम्पत्ति थी उसका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं पुत्रियाँ होती थी। जनसत्ता में मानव को स्थायी सम्पत्ति थी—पत्थर, छवि तथा बोहे के हथियार। सुझसी, जानवर या जानवर का मांस स्थायी सम्पत्ति नहीं थी। अधिकार के प्रभाव पशुपालन का व्यवसाय भी होने लगा था। जन जास्तव में एक मरु के लोगों का समाज था जिस पर माता का पूर्ण अधिकार होता था। वह खंभों या पहाड़ियों की प्राकृतिक सीमा के भीतर एक स्थान पर रहता था। यथा समस्त एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के सिधे माता से यात्रा सेनी पड़ती थी। इस प्रकार मातृसत्ताक परिवार में माता का स्थान अष्ट था। ऐसे परिवार में प्रारम्भ में विवाह नहीं होता था एक स्त्री अनेक पुरुषों के साथ रहती थी देखी अवस्था में बच्चे का पहचानना बड़ा कठिन था कि किस पुरुष का कौन सा बच्चा है। इस प्रकार मातृसत्ताक परिवार में पिता की कोई स्थिति नहीं थी सिर्फ माता की ही स्थिति थी उसी की प्रधानता थी। इस सिद्धान्त को मासने बालों के अनुसार प्राचीन समाज 'मातृसत्ताक' था। टायलर (Tyler) ने इसी मत का समर्थन किया है। उसके अनुसार परिवार पहिल मातृसत्ताक ही थे। डिफ्रैस्ट ने माता के स्थान को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। डिफ्रैस्ट के

अनुसार परिवार माता की निरन्तर आवश्यकताओं और उसके बच्चों की सुरक्षा की आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न हुआ है। पितृसत्ताक परिवार में स्त्री अपने से भिन्न बचिर के लोभों में बली जाती है, परन्तु मातृसत्ताक परिवार में स्त्री अपने ही बचिर के लोभों में बली रहती है। इस प्रकार के परिवार में माता का निवास-स्थान परिवार का केन्द्र हो जाता है। इसमें बह-परम्परा माता के नाम में बसती है। आज मातृसत्ताक परिवार अधिकतर अतिमिश्र जातियाँ में मिलते हैं। हमारे देश में आज भी मातृसत्ताक परिवार कहीं-कहीं पर मिलते हैं। आशाम के पहाड़ी प्रदेश में जासो जन-जातियों में मातृसत्ताक परिवार पाये जाते हैं। इसमें विवाह के बाद सड़क सड़क के माता-पिता के घर रहने बना जाता है। जो कुछ भी उसका धाय होती है वह सब अपनी स्त्री की माँ को दे देता है। सड़कियाँ ही घर का सारा धन्य-वार संभालती हैं। इनके समाना मातावार की कई जन-जातियों में मातृसत्ताक परिवार पाये जाते हैं। मातावार की मायरा जन-जाति इसका उदाहरण है। जैसे जैसे कृषि में वृद्धि होती गई मातृसत्ताक परिवारों का महत्त्व कम होता गया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक कारणों से मातृसत्ताक परिवार बाद में पितृसत्ताक परिवारों में बदल गये।

### १ एक विवाह परिवार सिद्धान्त (Theory of Monogamous Family)—

मैलिनोवस्की (Malinowsky) ज़ुकरमेन (Zuckerman) तथा डार्विन (Darwin) के सिद्धान्त मानने वाले वेस्टरमार्क (Westermarck) प्राकृतिक के अनुसार प्रारम्भ में परिवार पितृसत्ताक ही नहीं वे एक विवाही भी थे। ऐसे परिवार की उत्पत्ति पुरुष के एकधिकार तथा ईर्ष्या की भावना के कारण हुई, क्योंकि कोई पुरुष अपनी स्त्री को दूसरे के पास नहीं दे सकता। डार्विन के अनुयायी वेस्टरमार्क (Westermarck) के मतानुसार निम्न स्तर के बन्दों में भी एक विवाह की प्रथा ही है। इस प्रकार समाज में सर्वप्रथम विकास के इच्छिकोष्ठ में एक विवाही परिवार रहे। आज भी सभार में एक विवाही और पितृसत्ताक परिवार विद्यमान है।

### ४ मिश्रित परिवार सिद्धान्त (Theory of Mixed Family)—

इस सिद्धान्त के अनुसार बहुत से तार्थों का विचार है कि प्राचीन काल में कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री में अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। इस प्रकार के संबंध दो प्रकार के हो सकते हैं—एक तो सामयिक तथा दूसरे समूह विवाह। समूह विवाह एक प्रकार से मिश्रित परिवार का दूसरा रूप है।

ऐसे परिवार के अन्तर्गत एक समूह की सारी स्त्रियाँ दूसरे समूह के सारे पुरुषों के साथ विवाहित समझी जाती हैं। इसका दूसरा रूप यह भी हो सकता है कि एक परिवार के सब सदस्यों का दूसरे परिवार की सब बहनों से विवाह सम्भ्रम जाता है। मिश्रित परिवार के अन्तर्गत ऐसे परिवार में यह बातला मूर्च्छित है कि कौन किसकी स्त्री है और कौन किसका पति है। ऐसा माने तो परिवार की यह किस्म बहुपति विवाह (Polyandry) तथा बहुपत्नी विवाह (Polygamy) का मिश्र-रूप है।

### ३. आर्थिक परिवार सिद्धान्त (Theory of Economic Family)

यह पुस्तक तथा स्त्री में सिय-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उसके परिणाम स्वल्प समान उत्पन्न होती है। इस प्रकार समान के पासन पोषण का प्रसन्न रूपस्थित हो जाता है। एक दूसरे का पासन-पोषण तथा देख-रेख के बिना प्रत्येक के साथ कुछ अधिकार और कर्तव्य निर्धारित हो जाते हैं। उन कर्तव्यों द्वारा एक दूसरे की इच्छा को संतुष्ट करने का प्रसन्न सका होता है। यह भी इच्छा हुआई-कितने बनाने की नहीं बरन धार्मिक होती है। धार्मिक व्यवस्था परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है क्योंकि इसकी व्यवस्था होने से परिवार ठीक रूप से स्थिर नहीं रह सकते हैं। इसीलिए मानव सब धार्मिक समस्या को ही लेकर परिवार के द्वार से बाहर निकलता या और धार्मिक भी निकलता है। इस प्रकार अपनी स्त्री अपने बच्चे की धार्मिक समस्या को हल करने के लिए परिवार की संस्था को जन्म मिला। उपरोक्त सब बातों से प्रमाणित होता है कि परिवार का जन्म धार्मिक कारकों के फलस्वरूप हुआ।

### ४. विकासवादी सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

विकासवादी मौरगन (Morgan) ने परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मिश्र सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसके अनुसार परिवार कई अवस्थाओं में होकर विकसित होता है। मौरगन (Morgan) का सिद्धान्त ऐतिहासिक भी कहा जाता है; क्योंकि उनका विचार विकासवादी पर निर्भर है।

## स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध

हमारे समाज में स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध बतमान है। इस समस्या को अनेक महापुरुषों ने सुलझाने का प्रयत्न किया है। यह बात एक की नहीं हर एक की है। वस्तुतः यह समस्या अकेले भारत की नहीं बरन् उस सब भूमि की है जहाँ 'सम्प्रदाय' फैली हुई है।

सम्प्रदाय ने हमारे ऊपर नियंत्रण प्रस्तुत किये हैं। व्यक्ति अपने को उन बन्धनों में छटपटाता हुआ पाता है। पर असल में क्या हुआ कौन है? पुरुष या माटी? माटी पिटा इस उद्देश्य से पृथ्वी का विभाह करते हैं कि उन्हें एक चिन्ता से मुक्ति प्राप्त हो जाय। हमारे समाज में स्त्री अपने पिता के घर में पसली है परन्तु वह वहाँ परायी मानी जाती है। स्त्री को तो मनु के अनुसार एक भार ही माना जा सकता है। वह पराये घर में भी एक बोझ बनकर ही जाती है। और इसके बाद वह उस नये घर को अपना कहने लगती है। वह अपनी जिंदा हूसरों पर बल देती है। पुरुष इस समाज में यह मानता है कि विवाह के पूर्व वह स्वतन्त्र था और उसके बाद उसके पाँवों में जेड़ियाँ बांधी गई हैं। वह विचार धारा का नहीं है। मध्यकाल में अफगानिस्तान के पाँव कण्ठ में बाँधकर बस दिये जाते थे। तुलसीदास ने विवाह को 'काठ में पाँव' बाँधने के समान ही माना है। प्राचीन काल में जिस विवाह का मूल उद्देश्य समान भोग अर्थात् सम-भोग माना जाता था उसका रूप कालांतर में परिवर्तित हो



बनता है। इसी इन्द्र को मनुष्य के सुख और दुःख का इन्द्र भी कह सकते हैं। मनुष्य ने अपनी प्राथमिक जगती अवस्था से लेकर आज के सम्प्रदाय के बुन तक कोई भी ऐसा समय नहीं देखा जहाँ उसका यह इन्द्र मिट गया हो। समाज के अन्तिम में कितना कितना परिवर्तन आया कितनी आर्थिक व्यवस्था बदन गई—लेकिन क्या फिर भी मनुष्य सुखी हो पाया? क्या उसके जीवन का हाहाकार मिट सका? क्या उसकी समस्याओं का समाधान हो पाया? सामाजिक विकास में जीवन ऐसा नहीं कहता। किन्तु यही मामला होगा कि मनुष्य के अन्तर और बाह्य का यह इन्द्र शाश्वत है। इसी को देखकर आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने 'प्रतीत्य समुत्पाद' का सिद्धान्त स्थापित किया था। उस अन्तिम दार्शनिक ने कितने दिन पहले ही जीवन के इस रहस्य को समझ लिया था जिसको यौग्य के दार्शनिक हीरेस ने कुछ सताव्वीं पूर्व ही अपने इन्द्रात्मक विकास के सिद्धान्त के रूप में रखा। गौतम बुद्ध भी इस निरन्तर चलते संघर्ष को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जीवन दुःख-स्वरूप है। इसका सारा व्यापार क्षणिक है। जैसे हम सुख और समृद्धि समझ कर प्रसन्न होते हैं, वह क्षणिक है। जीवन की कोई भी स्थिति शाश्वत नहीं है, सब केवल संघर्ष और निरन्तर चलने वाला इन्द्र ही सारवत् है। वस्तु का अस्तित्व तो सण-मात्र का है, फिर तो इसका प्रभाव ही जीवन को व्यक्ति करता रहता है, यह प्रभाव ही दुःख का हेतु है—यह दुःख की स्थिति सदा जीवन के साथ चलती रहती है। लेकिन बुद्ध इस स्थिति को भी स्थिर नहीं मानते थे। वह दुःख का कारण बताते थे और फिर दुःख के निवारण में भी विश्वास करते थे। तभी तो वे निर्वाण की स्थिति को जीवन के लिये साम्य मानते थे। हीनेस भी आकर्षित हो गए। वह भी तब की स्थिति में विश्वास कर रहा था—लेकिन इन्द्र को वह जीवन का प्रभाव सत्य मानता था। इसे तर्कपूर्ण कह कर वह वास्तविक स्थिति के औचित्य को स्वीकार करता था। तभी उसने कहा था कि जीवन से कभी दुःख दूर नहीं हो सकता क्योंकि जीवन के विकार जो दुःख के हेतु होते हैं, कभी नहीं मिट सकते। वह मानता था कि इन विकारों के कारण ही तो मनुष्य अशुद्ध और अशुद्ध होता है। इन विकारों के दूर करने के उसके प्रयत्न ही उसके जीवन की प्रगति है—यह विकृति की सत्ता सर्वथा तर्कपूर्ण है। विकृति और सौन्दर्य का सतत चलने वाला संघर्ष ही जीवन की गति है। इस गति के अन्तर्गत मनुष्य विभिन्न समय और स्थितियों में अनेक प्रकार के मूर्खों की स्थापना करता है। वे मूर्ख जब तक इन्द्रात्मक विकास के सहायक होते हैं तभी तक समाज में उनकी मान्यता रहती है। तभी तक उनको अष्ट समझकर आदर्श के रूप में स्वीकार किया जाता है लेकिन जब वे रुक बगकर समाज के विकास को

रोकने का प्रयत्न करते हैं तो उनका विरस्कार होता है और उनके स्वाम पर समय और परिस्थिति के अनुकूल नये मूल्यों की स्थापना होती है। इस प्रकार समय के दौर में मनुष्य अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिये अपने मूल्यों को निर्धारित करता है। परिस्थितियों के द्वन्द्व में वे मूल्य निरन्तर बदलते रहते हैं और यह प्रति स्वाभाविक भी है क्योंकि मूल्य अपने आप में साध्य नहीं हैं, वे तो मानव की प्रगति में सहायक हैं। जो व्यक्ति मूल्यों को ही जीवन का श्रेष्ठ समझ बैठता है वे विचार की परम्परा को न समझकर एक प्रकार के रुढ़िवाद में अटक हो जाते हैं। ऐसे ही मनुष्यों की कारण होती है कि पुरातनकाल में सबकुछ अष्ट और सुन्दर या वर्तमान काल में समीक्ष्य प्राप्त होता है। यह विचार निराधार है क्योंकि अष्ट और सुन्दर अपने स्वतन्त्र रूप में कुछ भी नहीं हैं वे तो समय और परिस्थिति से सापेक्षता रखते हुए मनुष्य के विभिन्न प्रकार के विचार और व्यवहार के लिये निश्चित किये हुये पाथ हैं। विचार और व्यवहार समय की गति में बदलते रहते हैं अतः यह कहना अमूर्त होगा कि अमूर्त प्रकार का विचार या व्यवहार ही अष्ट और सुन्दर है, उससे अलग सभी कुछ है।

यह साध विवेचन करने का हमारा उद्देश्य यही है कि मनुष्य का निर्धारित निया हुआ कोई भी मूल्य शास्त्र नहीं है। जब उसकी धार्मिक स्थिति में ही बाह्य के दृष्ट से प्रतिशस्त्र परिवर्तन आता रहता है तो फिर उन मूल्यों को शास्त्र मानकर परम्परा की बुराई केना पलायन की प्रवृत्ति का ही शोचक है।

जीवन-जीवन में भी इसी शास्त्र मानने वाली प्रवृत्ति ने अपनी सीमित चेतना के आधार पर पाप और पुण्य की कल्पना की है। इन्द्रात्मक विकास का सिद्धान्त इस पाप और पुण्य की शास्त्र रहने वाली कारण पर सन्तुष्ट करता है। वह ऐसे लोगों की कारण को पूरी तरह धार्मिक कहता है जो यह मानते हैं कि स्वामी का धर्म तो सदा पति की सेवा ही करना है। उसको तो पति को ही देवता तीर्थ विवाह धारि सबकुछ समझना चाहिये। पति ही उसकी मुक्ति है। पति की इस सर्वोपरि सत्ता पर सन्तुष्ट करके जो स्त्री अपनी स्वयं सत्ता को अहमम्पता में बिदबाध करती है और उसके लिये प्रयत्नशील रहती है, वह धर्मविचार और पाप की ओर उन्मुख होती है। उनके अनुसार तो स्त्री पति की दासी है। पति की सेवा करना ही उसके जीवन का साध्य है। यही उसके जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। इससे धार्मिक भी इच्छा करना पाप की प्रवृत्ति का शोचक है। पातिव्रत धर्म ही स्त्री का एकमात्र धर्म है और

यहो उसके जीवन का वह बिगड़ सत्य है जिसको स्वीकार करके वह इस लोक तथा परलोक में सब सुख भोग सकती है ।

अब निष्पन्न होकर विचार करें कि जो विचारधारा स्त्री को पति की चाही स्वीकार करके उसी में उसके जीवन की व्यवस्था का प्रतिपादन करती है, क्या एक स्वास्थ्य सत्य को सामने रखती है ? यदि यही मान लें तो इस पाति-सत्ता की धारणा के आगे से पहले समाज में जो स्त्री पुरुषों के सम्मुख रहते हैं, वे क्या सभी पापपूर्ण कहे जायेंगे । मनुष्य के विकास का सिद्धान्त तो यह बताता है कि आदिम काल में स्त्री की महत्ता पुरुष से कहीं अधिक थी । मातृ सत्ताक समाज व्यवस्था थी । उसमें स्त्री की ही इच्छा चलती थी । उस समय समाज के नियम भी ऐसे ही बने थे जिन्होंने स्त्री की प्रधानता को स्वीकार किया था । उस समय की स्त्री अपने बारे में वह कल्पना ही नहीं कर सकती थी कि वह किसी परिस्थिति में पुरुष की चाही भी बन सकती है । लेकिन फिर भी क्या उसकी वह सत्ता, वह अधिकार और उसके द्वारा बनी हुई मनोवृत्ति सभी पाप की परिभाषा के अन्तर्गत आ जाती है ? इसे यही मान सकते हैं जो एक प्रमुख समय और परिस्थितियों के बीच बने जीवन के आधारों को स्वास्थ्य मान बैठते हैं । आदिम काल के स्त्री पुरुषों की धारणा दूसरी ही थी । उस समय तो जो पुरुष स्त्री की इस महत्त्वपूर्ण सत्ता का विरोध करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की और प्रयत्नशील होता था उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था । वह पुरुष समाज के नियम को उल्लंघन करने वाला अपराधी समझा जाता था । इस समाज की व्यवस्था विभिन्न प्रकार की थी । भिन्न प्रकार के धार्मिक सम्बन्ध थे । पुरुष उस समय सत्पावन के साधनों का स्वामी नहीं था इसलिये सामन्तकाल की तरह उसकी सत्ता खोपपरि नहीं हो पाई थी । इस विभिन्न प्रकार की धार्मिक व्यवस्था से नियन्त्रित मनुष्य की चेतना में उचित और अनुचित की परिभाषाएँ बनाई थीं । उस समय सामूहिक विश्वास प्रणाली भी थी । स्त्री का कोई एक निश्चित पति नहीं होता था । वह स्वेच्छाचारिणी थी । इसी प्रकार पुरुष भी स्वेच्छाचारी थे । स्वेच्छाचार भारत में जो गन्तव्य जाति में पाया जाता था । अन्तरा इस स्वेच्छाचार को किसी प्रकार का पाप नहीं समझी थी । यह तो उसके लिये सहज था । और और जातियों में भी इस प्रकार की व्यवस्था थी । मान भी कुछ विभागों में आदिम जातिमें की समाज व्यवस्था तथा उनकी संस्कृति की खोज करते हुये इस प्रकार के स्वेच्छाचार के बिना उन जातिमें के व्यवहार में पाये हैं । अपने अपने व्यवसाय में आदिम जातियों के यौन जीवन के पक्ष को हम उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे । हमारा

विश्वास है कि यौन जीवन ने कितने ही कारों और परिस्थितियों को देखा है। और उनके अनुसार ही इसमें अनुचित और उचित के मूल्यांकन का निर्धारण हुआ है। सामन्तीय युग की भारणा को सत्य और सामर्थ्य मानकर विश्वास के सत्य को कुंठित नहीं कर सका उचित होया। हमें तो यह देखना चाहिये कि क्री पुरण की यात्रा आदिमकाल से आज तक किन परिस्थितियों के बीच हुई है और उन परिस्थितियों ने उनके जीवन पर क्या प्रभाव डाला है किन किन समस्याओं को सामने रखा है जिन्होंने हल करके क्री पुरण ने अपना पथ धारण के लिये प्रयत्न किया है। जब तक जीवन के एक चरण में समस्याओं को सुलझ कर जीवन को अधिक सुन्दर और सुखी बनाने का कार्य किया है तब तक ही विकास कम में उसकी अपेक्षा स्वीकार करके हम मनुष्य जाति के इतिहास को सही रूप में समझ सकते हैं और सभी समय समय पर आने वाली समस्याओं की विषमता को समझकर उनको हल भी कर सकते हैं।

सृष्टि के आरम्भ से ही क्री और पुरण का इन्द्र जलता आ रहा है। मार्स माक्स तो अपने बर्गयुद्ध को सबसे पहले इसी इन्द्र से आरम्भ करता है। इसी इन्द्र में अधिकतर क्री ही पराजित हुई है। इसका प्रमुख कारण पुरण के हाम में उत्पादन के साधनों का केन्द्रित हो जाना ही है। जब क्री का उत्पादन में कोई बिछेय भाग नहीं रहा तो उसकी सत्ता का ह्रास हुआ और वह केवल एक बरेलू दासी के रूप में ही रह गई। इस व्यवस्था में पुरण तो शोषक बना और क्री शोषित रही। इस व्यवस्था के आ जाने के पश्चात् दार्शनिक रूप से इसके धोखे की स्थापना भी गई। ये दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः सामन्ती युग की ही उपज हैं और पुरण ही इसके निर्माता रहे हैं। क्री का यह दुर्भाग्य ही रहा है कि उसके जीवन के सम्बन्ध में उचित और अनुचित की व्यवस्था पुरण ने की है जिसका स्वार्थ अपनी सत्ता की रक्षा करने में निहित था। सामन्ती युग के वर्चस्व प्रायः सभी क्री के अधिकारों को प्रति की वासता तक ही स्वीकार करते हैं। इन दर्शनों का समाज पर निम्नतर प्रभाव पड़ा और इस नाम में यह धारणा बैठ गई कि क्री को तो ईश्वर ने सदा पुरण की सेवा और वासता करने के लिये ही बनाया है। वेही सामन्ती संस्कार आज तक अपना प्रभाव जमाये हुए हैं सभी जगह जगह को के स्वर्णवता आन्दोलन की बहुत आलोचना होती है। परम्परावादी वर्ग और सम्प्रदायों के मर्तों को सामने रखकर क्री को पाप की ओर प्रवृत्त करने वाली एक मानते हैं। सभी जे माना के रूप में माना गया है। उसकी कृपणा सदा इसी रूप में भी गई है कि वह पुरण को अपने पथ से भ्रष्ट करती है। उसके जीवन की शाखा में बाधा बन कर खड़ी हो जाती है। सभी पहले पहल युद्ध ने संघर्ष में

स्त्रियों को स्वीकार नहीं किया था। तभी मोरछमाच की को माया जल लय भ्रमे थे। उसके विपरीत बामाचार का वर्त्मन वा जो की की शक्ति की पूजा में ही जीवन की साधना समझता था। दोनों ही रूपों में स्त्री को अपमानित हीना पड़ा। उसकी सत्ता को स्वतन्त्र रूप में पुरुष ने स्वीकार नहीं किया, मही स्त्री के लिए सबेरे दुःख का विषय रहा है।

आज यही समस्या स्त्री के सामने है। वह पुरुष के सुख का साधन-मात्र नहीं है, वरन् उसका भी स्वतन्त्र अस्तित्व है। वह और पुरुष अपने जीवन को सुखी और सुन्दर बनाने के लिए एक दूसरे के ऊपर आश्रित है। किसी का भी स्थान दूसरे से हीन नहीं है। भ्रष्टाचारपूर्ण वैज्ञानिकों की यह बारम्बार निर्मूल है कि प्रकृति ने स्त्री को कमजोर बनाया है इसलिये पुरुष के संरक्षण में उसका रहना प्रकृति की व्यवस्था के अनुरूप ही है।

हमारा उद्देश्य स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का विकास की विभिन्न व्यवस्थाओं में अध्ययन करना है—

- (१) आदिम काल।
- (२) सामन्तीय युग।
- (३) पूँजीवादी व्यवस्था।
- (४) नई समाजवादी व्यवस्था इत्यादि।

इनके अन्तर्गत स्त्री पुरुष के जीवन को अध्ययन करते समय विभिन्न प्रकार की यौन समस्याएँ हमारे सामने आयेगी। समस्याओं का देशकाल की स्थिति के अनुरूप अध्ययन करके यौन-जीवन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विचारधारा का प्रतिपादन करना हमारा उद्देश्य है। इस प्रकार यदि अनेक प्रकार के जातिगत तथा सम्प्रदायगत भ्रमों का निवारण करके मनुष्य को एक नई चेतना हम दे पाये तो हम अपने ध्येय को सफल मानेंगे।

हमारा सबसे अधिक विरोध तो उस कड़िवाही विचारधारा से है जो समस्या को हल करने की बजाय उसकी धार्मिक से धार्मिक समझौती जाती है। वह मनुष्य द्वारा निर्मित सत्ता को धार्मिक जैसा समझ कर उसकी देश काल से अपेक्षा की स्वीकार ही नहीं करती। ऐसी कड़िवाही विचारधारा सदा ही प्रगति के लिये बाधक सिद्ध हुई और सदा होगी। इसी विचारधारा के बोध भारत में वर्ण व्यवस्था को शासक मानकर उसका समर्थन करते हैं। वे समझते हैं कि स्वयं ब्रह्मा ने ही इन वर्णों का निर्माण किया है, इसलिये इनका विरोध करना इनको कड़ि कड़ना साक्षात् ब्रह्मा की व्यवस्था का विरोध करना है। चूंकि पुरुष-मूल में ब्राह्मण को ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न

हुआ बताया गया है इसलिये बाह्यण सर्वश्रेष्ठ है और सब छोड़ा । उनकी श्रेष्ठता का विरोध करना और वस्तु की समानता की बात करना और नास्तिकता और पाप है । यह इन्हीं कठिनातियों की विचारमात्र है । ये कठिनाती ही सीता को बुधबुधान्तर तक घावर्ष देवों के रूप में कल्पना करते हैं, और साथ ही राम को सदा भर्माश-मुबपोत्तम स्वीकार करते हैं । लेकिन क्या कभी समय होकर इन्होंने सोचने का प्रयत्न किया कि जिस उपस्थिति देवों सीता ने सदा राम का साथ दिया सदा अपने पति को देवता समझकर जिसने उसकी घावर्षता की, उसी के साथ राम ने सम्मान भी किया था । एक बोधी के कहने-मान से कि उबल के घर में बाकर सीता भ्रष्ट हो गई होगी उन्होंने उसका तिरस्कार कर दिया ? बाहर इस बात के पीछे क्या सत्य है । क्या यहाँ भी यह स्पष्ट रूप में प्रतीत नहीं होता कि पितृसत्ताक युग में बाह्य बहुत कितना भी स्वर्णिम और घावर्ष क्यों न हो श्री के अधिकार पुण्य की अपेक्षा कम थे । पुण्य का श्री के ऊपर पूर्ण अधिकार था । वह अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ व्यवहार कर सकता था । राम को भर्माश-मुबपोत्तम या भयवान समझ कर हम यह सत्य न भूलें कि वे भी अपने पुत्र की परिस्थितियों से बड़ से और उसी के अनुसार उनकी चेतना थी । ऐशकाम से परे उनका कोई भौतिक रूप था हम पर केवल कठिनाती ही विचार कर सकते हैं, विकास का समर्थक उसको कभी स्वीकार नहीं कर सकता ।

कठिनाती इसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्म के बारे में भी राम के ऊपर किसी प्रकार का शेष नहीं रहते । ठीक है, शायद तो राम को हम भी नहीं ठहरो लेकिन हम तो इसी आधार पर उनको बोधी नहीं मानते कि उन्होंने उस समय के सामाजिक नियम के रतार्थ ही सम्पूर्ण का ब्रह्म करने के लिये तबबार उठाई थी । बाह्यणों की बनाई भर्माश के निम्न सम्पूर्ण ने धृष्ट होकर भी उपस्था करना प्रारम्भ कर दिया था इनसे बाह्यणों को डर हुआ था कि कहीं उनकी बनाई सत्यता भी वह भर्माश न टूट जाये जिसमें वे और लज्जित मिथकर बैस्य और धृष्टों पर घावर्ष करते हैं । तभी तो वे धाकर राम के दरबार में पुकारे थे । लज्जित राम ने बाह्यणों की बात को समझकर ही सम्पूर्ण को मारने के लिये तबबार उठाई थी । तब क्या यह कहें कि उसमें राम का स्वार्थ निहित नहीं था ? धर्म या लेकिन उस समय के लज्जित रामा के लिये यह प्रति आवश्यक था । अपने पुत्र की परिस्थितियों के बीच वह इतना ही सोच सकता था । धर्मव्यवस्था की घावर्ष कहने वाली मानवजातों विचारमात्र को सभी मनुष्यों की समानता में विचार करती है, कभी राम को स्वीकृति उस युग में

उसकी मर्यादा के बाहर, या ही नहीं सकती थी। अतः इससे यही स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक पुत्र की सीमाएँ होती हैं और उन सीमाओं से ही उस पुत्र के व्यक्ति बने रहते हैं। उन्हीं के अन्तर्गत उनका अध्ययन करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो सचा सत्य और न्याय का हाथी मुचिष्ठिर अपनी पत्नी शीपरी के प्रति कभी ऐसा अभ्यास नहीं करता जैसा उसने पुत्रा केसवे समक किया था। क्या शीपरी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था कि मुचिष्ठिर ने उससे बिना पूछे ही उसको बाँध पर जबा दिया। शीपरी के साथ बासी का सा व्यवहार करने का मुचिष्ठिर को क्या अधिकार था ! लेकिन उस समक की परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं कि स्त्री का बासी मानना किसी प्रकार बुरा नहीं समझा जाता था। उसके ऊपर पुत्र्य का सभी स्थितियों में आचन रह सकता था। वही महाभारतकाल में स्त्री के भाग्य पर निर्णय दिया है। तब क्या मुचिष्ठिर किसी प्रकार शीपरी ठहराये जा सकते हैं। इस पुत्र के दृष्टिकोण के अनुसार उनको अभ्यासी कहा जा सकता है लेकिन उस पुत्र में तो कर्म के ज्ञाता भी उनको बर्बरता ही कहकर पुकारते थे। उनके बारे में यही भारसा थी कि बीकन में कभी उन्होंने अस्तव्य और अभ्यास के पक्ष पर पैर नहीं बढ़ाया। मनुष्य के व्यवहार के औचित्य और अनौचित्य का उसके पुत्र की सीमाओं के भीतर ही निश्चय होता है और तभी मान्य होता है कि अमुक व्यक्ति का व्यवहार अपने पुत्र की सीमाओं के भीतर समाज को प्रगति की ओर ले जाने में कहीं तक सहायक हो पाया। इन्हीं पुत्र की सीमाओं की सापेक्षता में मानवजीवन का अध्ययन करना हमारा उद्देश्य है।

हमें निम्न दृष्टि से यह देखना है कि अमुक विचारवादी कितने समक तक समाज को भागे बढ़ाती रही कम तक वह मनुष्य का कल्याण करती रही और कब वही कबि बनकर गतिरोध पैदा कर गई। जो पाण्डित्य की चारणा स्त्री का बासी की प्रवृत्ति तक ले जाई, एक समय स्त्री के कल्याण के लिये ही उठी थी। महाभारत में द्रुपदकेतु की कहानी उसके लिये सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। द्रुपदकेतु के समय में कामाचार था। कोई पुत्र किसी भी स्त्री के साथ रमछ कर सकता था। पति पत्नी के बीच किसी प्रकार के सम्बन्ध मार्ग रूप में स्थापित नहीं हो पाये थे। तब एक दिन द्रुपदकेतु की माँ अपने पति के पास बैठी थी, इस समय कामानुर होकर एक पुत्र्य प्राया और उसने उस स्त्री को उठ कर उससे रमछ करने की इच्छा प्रकट की। वह स्त्री अपने पुत्र की सामने बैठे देख मबरा सी गई। द्रुपदकेतु को भी यह बुरा लगा। उसका पिता समाज के नियम की विषयता के भीतर डूटा हुआ कुछ भी नहीं बोला, तब द्रुपदकेतु

ने यह मर्यादा स्थापित की थी कि स्त्री के साथ रमण करने का अधिकार केवल पति को ही होगा। एक पति को छोड़ कर दूसरे के साथ बिचरने वाली स्वेच्छाचारिणी स्त्री वा अपनी पत्नी को छोड़कर और स्त्रियों के लिये सामा मिल होने वाले पुरुष पापी होंगे।

इस कहानी से यह धनुमान मया सकते हैं कि पातिव्रत की इस व्यवस्था ने स्त्री को किस घोर अपमान की अवस्था से बचाया था। उसने उसके सम्मान की रक्षा भी की। उसी से उसको एक पुरुष का उत्तम प्राप्त हुआ था। उस पातिव्रत स्त्री के कल्याण के लिये धाया था। इससे पहले बलघानी पुरुष स्त्री को पकड़ कर अपनी काम-वासना की तृप्ति कर लिया करता था। पातिव्रत की मर्यादा स्थापित होने से यह सम्भव नहीं हो पाया था। स्त्री की स्थिति अधिक सुखपूर्वक हो गई। पातिव्रत के धाने से स्वेच्छाचार प्रायः छुट होता जाता गया। वह एक कि कुछ ही समय में उसे पाप समझकर त्याग्य समझ गया। क्या करस था कि जो स्वेच्छाचार स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता का पोषक था स्त्री ने लिये ही बलान बनकर बड़ा हो गया। इसका कारण पुरुष की सत्ता का बढ़ जाना था। उत्पादन के धानन पुरुष के हाथ में था जाने से उसकी शक्ति स्त्री से अधिक बढ़ गई। उसकी तुलना में स्त्री के अधिकार कम हो गये फिर समाज में भी स्त्री की महत्ता कम हो गई थी पुरुष का उससे कम भी प्राय मिट चुका था। इन परिस्थितियों के बीच पुरुष ने स्वेच्छाचार के हाथ स्त्री की घारी स्वतन्त्रता को छीन लिया। स्त्री घरीर में भी पुरुष से कमजोर होती है, फिर उत्पादन के साधन हाथ से निकल जाने पर धार्मिक दृष्टि से भी वह कमजोर हो गई, पुरुष ने गुरम्व ही अपनी निरंकुशता उस पर लाव दी। उसको अपनी नियमवासना की तृप्ति का साधन बना लिया। वह स्त्री जो पहले पुरुष के साथ स्वतन्त्र रूप से रमण करने में एक स्वतन्त्र पौरव का धनुमन करती थी गई परिस्थितियों के बीच विरुद्ध हो गई, तभी पातिव्रत की व्यवस्था ने उस स्वेच्छाचार का विरोध करके जो के कल्याण का पथ प्रपस्त किया। इसका ही धार्मिक कारण था जो हम धाने 'बीज' और 'अन्न' का विवेचन करते समय स्पष्ट करेंगे।

यह यह पातिव्रत बनना कठिणस्त हो गया है कि इसने धार्मिक मर्यादा का रूप पाकर स्त्री को बहाराधीनता के सम्यर बन्ध एक शायी ही बना दिया है। पति ही स्त्री के लिये मुक्ति है, उसके मताना उसके जीवन का कुछ भी बहस्य नहीं है, वह तो केवल पुरुष के सुख का साधन मात्र है, इन कारणों से पातिव्रत को वह रूप दे दिया जिससे स्त्री के अधिकार निरस्त धिन्ते बने



। एक बार स्त्री को पुरुष के साथ बैठकर यज्ञ करने का अधिकार था। लोगों ने सोचकर किसी साम्य के सिद्धे प्रयत्नशील रहते थे लेकिन कालान्तर में पुरुष की शक्ति स्त्री के जीवन का साम्य बन जाने पर यह अधिकार भी छिन गया। तो बरसू काम करना और पति की सेवा करना ही उसके जीवन की साम्यता गई। उसको सिमित बनाने तक की आवश्यकता नहीं समझी जाने लगी। इस प्रकार के सामाजिक कार्य में काम लेना तो उसके किसी साम का था ही नहीं। इस तरह धीरे-धीरे स्त्री का जीवन अपने सामाजिक रूप से घर की आरसीपाटी के भीतर ही सिमटता चला गया और वह बहुरासी के रूप में गई।

आज फिर प्रश्न आया है कि स्त्री के सिधे यह गई बिना क्या है बिना क्या हो सके। वही आज जीवन-जीवन की समस्या है। आज यूरोप और भारत सभी जगह पश्चिम और पूर्व में स्त्री के स्वातन्त्र्य की पुकार उठ रही है लेकिन बिचार तो हमें यह करना है कि यह स्वातन्त्र्य किस प्रकार की हो ? इसका रूप क्या होना ? परम्परावादी इसको स्लेन्डर की ओर प्रेरित करने वाली स्वातन्त्र्य कह कर इसका विरोध करते हैं, तो क्या यह स्त्री की स्वातन्त्र्य उसको स्लेन्डर की ओर प्रेरित करती है ? क्या इसमें स्त्री अपना सामाजिक आधार बना कर पुरुष की शक्ति को विस्तृत ठुकरा देगी ? क्या व्यवस्था के अन्तर्गत पुरुष और स्त्री का एक दूसरे पर आसन पूरी तरह हो जायगा ? और यदि रहेगा तो इसका रूप क्या होना ? नये सन्तानों के बीच स्त्री और पुरुष के जीवन का सत्य क्या होना ? परिवार के स्वरूप में और पारिवार्य की आरम्भ पर आधारित परिवार व्यवस्था में क्या अन्तर होना ? ये समस्याएँ ही हमें इस पुस्तक को लिखने और प्रेरित कर रही हैं। स्त्री और पुरुष के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों का अध्ययन करने के पश्चात् हम पाठक के सामने इन प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करेंगे लेकिन वे उत्तर जीवन-जीवन की सारी समस्याओं को सुलझायेँगे ऐसा हम नहीं करते, फिर भी हमारा लक्ष्य पुरुष विरोध के दृष्टिकोण से विषय का अध्ययन करना नहीं है, हम तो स्त्री और पुरुष दोनों के दृष्टिकोण का समन्वय करने पर प्रयत्न में प्रस्तुत कर रहे हैं। विषय का वैज्ञानिक अनुसंधान हमारे परिचय का मुख्य है क्योंकि हमारा विश्वास है कि जल या सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर जीवन-जीवन की समस्याओं की विवेचना और कोई निश्चित हल प्रस्तुत करना पड़ानी पक्ष को ही सामने रखना विषय पर सर्वांगीण रूप से तो सभी विवेचन हो सकता है जब सभी हलों

सदा सम्प्रदायों के सीमित चर्यों का अपने सापेक्ष रूप से अध्ययन करके और  
 लक्ष्य रहकर एक हल प्रस्तुत किया जाय । चाचा हैं पाठक इस विषय की  
 सम्मीरता पर विचार करके स्त्री और पुरुष के बीच सदा है चलते भाये इस  
 हस्त का सही रूप समझेंगे और अपनी इस और सम्प्रदाय-भक्त सङ्गठित मनोवृत्ति  
 को दूर हटा कर मानव के कल्याण की याचना को अपनी विचार प्रणाली में  
 स्थापन देंगे ।

## विश्वासों का जन्म और सामाजिक प्रभाव

घाब बीसवीं सताब्दी में बैठकर जब हम अपनी दृष्टि बीते हुए युग को मार केरते हैं तो सहसा ही हमें एक बात पर आश्चर्य होता है कि घाब से करीब बस लाख वर्ष पूर्व प्राणी ने मनुष्य रूप में इस पृथ्वी पर अपना विकास कर लिया था और तभी से उसकी बेतना निरन्तर प्रकृति के हस्त में रहकर अपना प्रसार करती जा रही है, लेकिन हम मनुष्य के कुछ हजार वर्ष पूर्व से लेकर घाब तक के इतिहास को कमबख्त रूप से जानते हैं। उससे पहले के जीवन के विभिन्न कर्मों तथा विकास-क्रम के बारे में अनुमान ही लगाया पड़ता है। तथ्य मिल भी जाते हैं लेकिन वे इतने सिमित होते हैं कि उनके आधार पर किया हुआ इतिहास का विश्लेषण कुछ सम्बेहपूर्ण ही रहता है। भारतीय के कमबख्त इतिहास के बारे में ही विचार करें तो ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध के समय से गुरु ज्ञाना ठीक तरह जलती है, उससे पहले वेद-काल उपनिषद् काल आदि के सम्बन्ध में विज्ञान अपना धनग-धनग विचार रखता है। पश्चिम के इतिहासकार तो ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व को ही जन्मेद की रचना का जन्म मानते हैं और फिर गौतम बुद्ध के समय तक घाते-घाते बी बी वर्षों में ही राम के युग, महाभारत युद्ध उपनिषद् काल आदि सबकुछ को सम्मिलित कर लेते हैं। दूसरे इतिहासकार इन मत का विरोध करते हैं। उनके पास भी अपने तथ्य हैं। हमने भी भारतीय परम्परा की खोज करते समय

अपने मत की पुष्टि के लिये अनेक तथ्य उपस्थित किये हैं और अपने तर्कों द्वारा दूसरे मतों का लक्षण भी किया है लेकिन फिर भी इतना कहना सामान्य है कि प्राचीन युग का अत्यन्त इतिहास खोजने का इतिहासकार का दम्भ व्यर्थ है क्योंकि इस समाजगत है कि उस प्रागैतिहासिक काल से लेकर उस समय तक सब से इतिहास की श्रुति का बल पड़ती है, किन्तु साहित्य को बुझा होना । किन्तु ही ऐसे तथ्य लोप हो चुके होंगे, जिनके होने पर सम्भव था कि हम उस अन्धकारमय प्रागैतिहासिक काल के सम्बन्ध में अपनी कुछ दृष्टि ही धारणा बताते । जो माहजजोबकी और हुरम्पा की खुदाई से पहले क्या यही मत एक धार्मिक विश्वास के रूप में भारत में प्रचलित नहीं था कि सृष्टि का आदिकाल तो वैदिककाल है । इतना सबकुछ होने पर भी तो आज बहुत से लोग यह विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने संसार की रचना करते समय सबसे पहले ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया अतः वेद धर्म से लाखों वर्ष पुराने हैं ।

वैज्ञानिक लोग के समान में इस तरह के अनेक मत प्रचलित हो जाया करते हैं । उदाहरण के लिये जे. डार्विन ने विकास के सिद्धान्त (Theory of Evolution) को खोज निकाला, तब मनुष्य के सामने अपने विकास के सम्बन्ध में एक नया ही चित्र उपस्थित हुआ । सृष्टि की उत्पत्ति तथा धर्म उसकी दृष्टि के बारे में भी डार्विन ने एक नया ही दृष्टिकोण रखा । नहीं तो इससे पहले लोग अपने अपने साम्प्रदायिक विश्वासों में बद्ध रह कर सृष्टि के बारे में विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ किया करते थे । लेकिन वे कल्पनाएँ विभिन्न सामाजिक स्थिति में मनुष्य ने बनाई थीं अतः अब पर उस विशेष सामाजिक स्थिति का प्रभाव स्पष्ट दिखाता है । चूँकि वे धार्मिक जग्यों में मिली हुई हैं इसलिए यह विश्वास करना नितास्त अर्थवैज्ञानिक है कि वे सृष्टि के सम्बन्ध में किसी प्रकार के वास्तव सत्य का प्रतिपादन करती हैं ।

हम कहना चुके हैं कि स्त्री और पुरुष का अन्तः प्रारंभ प्राचीन है । अन्तः प्रारंभ यह अन्तः प्रारंभ ही समय से चला आ रहा है जब मनुष्य अपनी पशु-प्रवृत्ति में रहता हुआ प्रकृति से सम्पर्क किया करता था । वह अन्तः प्रारंभ पशु-प्रवृत्तियों के जीवन में भी दृष्टिगोचर होता है लेकिन चूँकि मनुष्य सबसे अधिक सभ्य प्राणी है इसलिए उसके जीवन का एक निश्चित विभाजन है और उस विभाजन में वह अन्तः प्रारंभ भी अनेक रूपों में प्रकट होता है । यद्यपि स्त्री पुरुष अपने पारम्परिक स्वार्थों के कारण सदा एक दूसरे के साथ रहे हैं लेकिन फिर भी सदा के लिये परस्पर ही सम्पर्क बना रहा है । अभी भी स्वामिनी बनकर रही है ताकि उसका स्वामि विर जाने से पुरुष स्वामी बन गया है । जिस समय स्त्री और पुरुष

की बँसी भी स्थिति रही है उस समय के साहित्य पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ा है। यदि पुरुष की सत्ता स्वामी के रूप में स्वीकार कर ली गई है तो यह निश्चित है कि उस समय के साहित्य में पुरुष ही स्वामी के रूप में मिलता है और की उसकी अनुयायिनी के रूप में दिखाई देती है। उस समय की कवना उसी बिज को तो स्वीकार करती है। सृष्टि के सम्बन्ध में विभिन्न जगों में जो भी कल्पनार्थ मिलती है उनमें पुरुष प्रधान है।

सबसे पहले हम सृष्टि के सम्बन्ध में हिन्दुओं के पौराणिक विश्वास को रखते हैं।

ब्रह्मपुराण के प्रारम्भ में ही निमिषारम्भ वाली मुनि व्यास-शिष्य मोमहर्षि से पूछते हैं—हे साधुसिरोमसे ! आप पुराण उन्मूलकों कास्त्र, इतिहास तथा ऐकताओं और वैत्यों के जन्म-कर्म एवम् चरित्र सभी कुछ जानते हैं। वेदकास्त्र, पुराण, महाभारत तथा मोक्ष कास्त्र में कोई भी बात ऐसी नहीं है जो आपकी बात नहीं हो।

हे महायते ! बताइये, कि वह समस्त जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? भस्म में इसकी क्या रचा होनी ? स्थावर-जङ्गमरूप संसार सृष्टि से पहले कहाँ मौजूद था ? और फिर कहाँ मौजूद हुआ ?

मोमहर्षि ने कहा—ओ भित्त, सत्त्वस्वस्व तथा कारण भूत अम्बल प्रकृति है, उसी की प्रधान कहते हैं। उसी से पुरुष ने इस विश्व का निर्माण किया है। प्रमित देवकी ब्रह्माजी ही पुरुष हैं। वे समस्त प्राणियों की सृष्टि करने वाले तथा भवमान नाशक के साक्षि हैं। प्रकृति से महत्त्व महत्त्व से अहंकार तथा अहंकार से सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतों के जो मेर हैं वे भी उन सूक्ष्म भूतों हैं ही प्रकट हुए हैं। यह समाप्त कर्म है। तदनन्तर स्वयम्भू भवमान नाशक ने नाश प्रकर्ष की प्रथा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले ब्रह्म की सृष्टि की। फिर ब्रह्म में धरणी शक्ति का आधान किया। ब्रह्म का दूसरा नाम 'नार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भवमान नर से हुई है। वह ब्रह्म पूर्वकाश में भवमान की धरणी हुआ इसलिए वे नाशक कहलाते हैं। भवमान ने जो ब्रह्म में धरणी शक्ति का आधान किया उससे एक बहुत विद्यास सुवर्णवद धरणी प्रकट हुआ। उसी से से स्वयम्भू ब्रह्मा भी उत्पन्न हुए। सुवर्ण के समान अग्निमान भवमान ब्रह्मा ने एक वर्ष तक उस धरणी में निवास करके उसके को टुकड़े कर दिए। फिर एक टुकड़े से वह लोक और दूसरे से भूमोक बनाया। उन दोनों के बीच आकाश की रक्षा। ब्रह्म के ऊपर तीसरी हुई पृथ्वी को स्थापित किया। फिर बरों बिछाए निश्चित की। साथ ही काम पथ बाणी क्रम कोच मोर

रति की सृष्टि की। इन भावों की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जी ने सात प्रजापतियों को अपने सम से उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि धनि धन्निरा पुनस्त्य बुधश्च वसु तथा असिष्ठ। पुराणों में ये सात ब्रह्मा निर्दिष्ट किए गये हैं।

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने अपने रोप से स्रग् को प्रकट किया। फिर पूर्वजों के भी पूर्वज समस्तुमार को उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियों से समस्त प्रजा तथा स्याद्वा राजे का प्राकृर्मीक हुआ। उस सात महर्षियों के सात बड़े बड़े शिष्य बंध हैं, वेकसा भी उनके शर्यार्ग हैं।

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने विष्णु, ब्रह्म भैव रोहित इन्द्रबनुप, पञ्ची तथा धम्य वस्तुधो की सृष्टि की। फिर यज्ञों की सिद्धि के लिये ऋग्वेद मनुर्वेद तथा सामवेद प्रकट किये। इसके पश्चात् धार्य्य वैवताभी की उत्पत्ति प्रवाई जाती है। छोटे बड़े सभी ब्रूत जपवान ब्रह्मा के यज्ञों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार प्रजा की सृष्टि करने पर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब प्रजापति अपने शरीर के दो भाग करके धावे से पुत्र्य और पाये से स्त्री हो गये। पुत्र्य का नाम मनु हुआ। स्त्री भयोभिजा शतकपा वो वो वसु को परती रूप में प्राप्त हुई थी। उस स्त्री ने दस हजार वर्षों तक धरपस्त कुम्पर तपस्या करके परम तेजस्वी पुत्र्य को पतिभ्य में प्राप्त किया था। वे ही पुत्र्य स्वाम्भुव मनु कहलाते हैं। वैराज पुत्र्य भी उन्ही का धाम है। शतकपा ने वैराज पुत्र्य के घट से कीर प्रियवत और उत्तानपाद को जन्म दिया। कीर से काम्पा नामक धृष्ट कम्पा उत्पन्न हुई जो कर्म प्रजापति की धर्मपत्नी हुई।

कम्पा के गर्भ से चार पुत्र हुए—समार कुलि विराट् और वसु। प्रजा पति धनि ने राजा उत्तानपाद को मोर के लिये। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी कुल्ला के गर्भ से द्रव, कीर्तिमान, धामुप्मान तथा वसु नाम के चार पुत्र पैदा किये। द्रुव से उनकी पत्नी दाम्मु ने सिष्टि और धम्य नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। सिष्टि ने अपनी पत्नी सुद्धाया के सम से रिपु, रिपु-रूप और, कुम्भ तथा कृत्वेजा, ये पाँच पुत्र उत्पन्न किये। रिपु से कृत्वे ने चतुप माय के तेजस्वी पुत्र का जन्म दिया। चतुप के उनकी पत्नी पुम्परिल्ली से, जा यद्वात्या प्रजापति मोरता को कम्पा थी वाक्षुप मनु उत्पन्न हुए। वाक्षुप मनु से वैराज प्रजापति की कम्पा नहृवा के गर्भ से दस महावनी पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं—दुष्ट, पुत्र, शतकम्प तपस्वी मत्पराक्, रवि धर्मिमुत्त अतिराज सुधम्प तथा धर्मिम्पु। पुत्र से धमेया ने धंय गुपता, स्वायु, ऋग्वीर तथा नव नाम के छ. पुत्र उत्पन्न हुए।

की बेंसी भी स्थिति रही है उस समय के साहित्य पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ा है। यदि पुरुष की सत्ता स्वामी के रूप में स्वीकार कर ली गई है तो यह निश्चित है कि उस समय के साहित्य में पुरुष ही स्वामी के रूप में मिलता है और वही उसकी अनुवामिनी के रूप में दिखाई देती है। उस समय की कल्पना उसी विश्व को ही स्वीकार करती है। सृष्टि के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों में जो भी कल्पनाओं में मिलती हैं उनमें पुरुष प्रधान है।

सबसे पहले हम सृष्टि के सम्बन्ध में हिन्दुओं के पौराणिक विश्वास को देखते हैं।

ब्रह्मपुराण के प्रारम्भ में ही नैमिषारण्य वाली मुनि व्यास-विष्व सोमहर्षण से पूछते हैं—हे साधुविरोमसे ! आप पुराण तन्त्र, अर्थात् शास्त्र, इतिहास तथा वेदार्थों और ईश्वरों के जन्म-कर्म एवम् चरित्र सभी कुछ जानते हैं। वेदशास्त्र पुराण महाभारत तथा मोक्ष शास्त्र में कोई भी बात ऐसी नहीं है जो आपको ज्ञात नहीं हो।

हे महाशय ! बताइये, कि वह समस्त जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? अस्मिन् में इसकी क्या रथा होगी ? स्वाधर-वज्रमय संसार सृष्टि है। पहले कहाँ नील था ? और फिर कहाँ नील होया ?

सोमहर्षण ने कहा—जो नित्य, सत्स्वक्य तथा कारण भूत अमर्यक्त प्रकृति है, उसी को प्रधान कहते हैं। उसी से पुरुष ने इस विश्व का निर्माण किया है। प्रमित देवता ब्रह्माजी ही पुरुष हैं। वे समस्त प्राणियों की सृष्टि करने वाले तथा भगवान् नारायण के अभिमत हैं। प्रकृति से महत्त्व, महत्त्व से अहंकार तथा अहंकार से सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतों के जो भेद हैं वे भी उन सूक्ष्म भूतों से ही प्रकट हुए हैं। यह सनातन धर्म है। तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायण ने ताना प्रकार की प्रथा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले जल की सृष्टि की। फिर जल में अपनी छवि का आधान किया। जल का दूसरा नाम 'तार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् तार से हुई है। वह जल पूर्वकाय में भगवान् का ध्यान हुआ इसलिए वे नारायण कहलाते हैं। भगवान् ने जो जल में अपनी छवि का आधान किया उससे एक बहुत विद्याल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ। उसी में वे स्वयम्भू ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए; सुवर्ण के समान अमर्यक्त भगवान् ब्रह्मा ने एक वर्ष तक उस अण्ड में निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिए। फिर एक टुकड़े से यह लोक और दूसरे से मूलोक बनाया। उन दोनों के बीच आकाश को रखा। जल के ऊपर तैरती हुई पृथ्वी को स्थापित किया। फिर वहाँ बिछाए निश्चित की। रात्रि ही जल पत वाली काम काम और

रति की सृष्टि की। इन भावों की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जी ने सात प्रजापतियों को अपने मन से उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि धनि धक्षिण पुमस्त्य पुमह, ऋतु तथा वसिष्ठ। पुराणों में ये सात ब्रह्मा निरिच्छत किए गये हैं।

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने अपने रोप से रत्न को प्रकट किया। फिर पूर्वजों के जो पूर्वज सनत्कुमार को उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियों से समस्त प्रजा तथा स्याह्म स्त्री का प्रादुर्भाव हुआ। उक्त सात महर्षियों के सात बड़े बड़े विषय बंध हैं, देवता भी उनके अन्तर्गत हैं।

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने विद्युत् रश्मि रोहित इन्द्रधनुष पक्षी तथा अन्य वस्तुओं की सृष्टि की। फिर यज्ञों की सिद्धि के लिये अग्नेय बभ्रुर्वैश तथा सायंबल प्रकट किये। इसके पश्चात् साम्य देवताओं की उत्पत्ति बताई जाती है। छोटे बड़े सभी भूत समस्त ब्रह्मा के यज्ञों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार प्रजा की सृष्टि करने पर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब प्रजापति अपने शरीर के दो भाग करके घाबे से पुरुष और घाबे से स्त्री हो गये। पुरुष का नाम मनु हुआ। स्त्री अयोनिजा उत्पत्ति को भी मनु को पत्नी-रूप में प्राप्त हुई थी। उस स्त्री ने वस ह्वार बर्षों तक शरणस्थ हुंकर उपस्था करके परम तेजस्वी पुरुष को पतिरूप में प्राप्त किया था। वे ही पुरुष स्वामन्वुष मनु कहलाये हैं। वैराज पुरुष भी उन्हीं का नाम है। शतत्या ने वैराज पुरुष के घण से बीट, शिखर और उत्तानपाद को जन्म दिया। शीर से काम्या नामक भ्रूण उत्पन्न हुई जो कर्म प्रजापति की अर्धपत्नी हुई।

काम्या के गर्भ से चार पुत्र हुए—समार कुक्षि विरुद्ध और प्रभु। प्रजा पति धनि ने राजा उत्तानपाद को योद से लिया। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूर्यता के गर्भ से प्रभु कीर्तिमान धाम्युमान तथा बभ्रु नाम के चार पुत्र पैदा किये। प्रभु से उनकी पत्नी धाम्यु ने स्तिष्टि और अन्य नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। स्तिष्टि ने अपनी पत्नी सुप्रभा के गर्भ से रिपु, रिपु-मन्त्र और वृक्ष तथा वृक्षता ये पाँच पुत्र उत्पन्न किये। रिपु से कृही ने वसुप नाम के तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वसुप के उनकी पत्नी पुष्करिणी से जो महारत्ना प्रजापति बीरता की कन्या थी वासुप मनु उत्पन्न हुए। वासुप मनु से वैराज प्रजापति की कन्या महता के गर्भ से दश महारत्ना पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं—भूत, पुत्र शतधूम्र तपस्वी मत्स्यनाक, कवि धर्मिगुन धर्मिराज सुधूम्र तथा धर्मिधूम्र। पुरु से धर्मयो ने धर्म सुमना स्वाहु, ऋतु, धर्मिरा तथा मय नाम के छ पुत्र उत्पन्न हुए।



की बेसी भी स्थिति रही है उस समय के साहित्य पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ा है। यदि पुरुष की सत्ता स्वामी के रूप में स्वीकार कर ली गई है तो यह निश्चित है कि उस समय के साहित्य में पुरुष ही स्वामी के रूप में मिलता है और की उसकी अनुयायिनी के रूप में दिखाई देती है। उस समय की कल्पना उसी बिज की तो स्वीकार करती है। सृष्टि के सम्बन्ध में विभिन्न जगों में जो भी कल्पनाएँ मिलती हैं उनमें पुरुष प्रधान है।

सबसे पहले हम सृष्टि के सम्बन्ध में हिन्दुओं के पौराणिक विश्वास को रखते हैं।

ब्रह्मपुराण के प्रारम्भ में ही नैमिषारण्य वासी मुनि व्यास-शिष्य भोमहर्षि से पूछते हैं—हे साधुशिरोमणे! आप पुराण उन्म स्रष्टा वास्तव, इतिहास तथा ऐक्याओं और ईश्वरों के जन्म-कर्म एवम् चरित सभी कुछ जानते हैं। वेदसास्त्र पुराण महाभारत तथा मोक्ष सास्त्र में कोई भी बात ऐसी नहीं है जो आपको ज्ञात नहीं हो।

हे महामते। बताइये, कि यह समस्त जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? अन्वित में इसकी क्या रचा होयी? स्वाधर-वज्रमय संसार सृष्टि में पहले कहाँ नील ना? और फिर कहाँ नील होना?

भोमहर्षि ने कहा—जो नित्य, सर्वस्वरूप तथा नारत भूत अमरत प्रकृति है, उसी की प्रधान कहते हैं। उसी से पुरुष ने इस विश्व का निर्माण किया है। अमरत तैत्तिरी ब्रह्मा की ही पुरुष हैं। वे समस्त प्राणियों की सृष्टि करने वाले तथा भगवान् नारायण के आश्रित हैं। प्रकृति से महत्तम महत्तम से अहंकार तथा अहंकार से सब सूक्ष्म-भूत उत्पन्न हुए। भूतों के जो जेब हैं वे भी उन सूक्ष्म भूतों से ही प्रकट हुए हैं। यह जगत्तम सर्व है। तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायण ने माना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले जन की सृष्टि की। फिर जन म अपनी शक्ति का आश्रय किया। जन का दूसरा नाम 'नार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नर से हुई है। वह जन पूर्वजन्म में भगवान् का भयन हुआ इसलिए ने नारायण कहाते हैं। भगवान् ने जो जन से अपनी शक्ति का आश्रय किया, उससे एक बहुत विद्याम सुवर्णमय अमर प्रकट हुआ। उसी में से स्वयम्भू ब्रह्मा भी उत्पन्न हुए; सुवर्ण के समान कान्तिमान भगवान् ब्रह्मा ने एक वर्ष तक उस अमर में निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिए। फिर एक टुकड़े से यह लोक और दूसरे से भूलोक बनाया। उन दोनों के बीच आकाश की रचा। जन के ऊपर तेरती हुई पृथ्वी को स्थापित किया। फिर सबों बिछाए निश्चित की। सात ही काल पत पाली, काय भोज और

रति की सृष्टि की। इन भावों की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जी ने सात प्रजापतियों को अपने मन में उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुमस्त्य, पुमह, अमु तथा वसिष्ठ। पुराणों में ये सात ब्रह्मा निरिक्त किए गए हैं।

इनके परचात ब्रह्मा जी ने अपने रोष से रूद्र को प्रकट किया। फिर पूर्वजों के भी पूर्वज सनत्कुमार को उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियों से समस्त प्रजा तथा प्यारह रथों का प्रादुर्भाव हुआ। उक्त सात महर्षियों के सात बड़े बड़े दिव्य बंध हैं, देवता भी उनके अन्तर्गत हैं।

इसके परचात ब्रह्मा जी ने विद्युत् वज्र में रोहित इन्द्रधनुष पक्षी तथा अन्य अस्तुओं की सृष्टि की। फिर यज्ञों की सिद्धि के लिये ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद प्रकट किये। इसके परचात साम्य देवताओं की उत्पत्ति बताई जाती है। छोटे बड़े सभी भूत भवधान ब्रह्मा के अङ्गों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार प्रजा की सृष्टि करने पर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब प्रजापति अपने छपेर के दो भाग करके भागे से पुरष और भागे से स्त्री हो गये। पुरष का नाम मनु हुआ। स्त्री अयोनिजा धतरूपा यौ जी मनु की परनी-रूप में प्राप्त हुई थी। उन स्त्री ने इस ह्वात्त बर्षों तक धारमन्त हुम्कर तपस्या करके परम तेजस्वी पुरष को पतिरूप में प्राप्त किया था। वे ही पुरष स्वायम्भुव मनु कहलाये हैं। वैराज पुरष भी उन्हीं का नाम है। धतरूपा ने वैराज पुरष के भग से बीर, प्रियव्रत और उत्तानपाद को जन्म दिया। शेर से काम्पा नामक अष्ट कन्या उत्पन्न हुई जो कर्म प्रजापति की बर्गपत्नी हुई।

काम्पा के गर्भ से चार पुत्र हुए—समार, कुलि, विष्णु और प्रभु। प्रजापति अत्रि ने राजा उत्तानपाद को मोक्ष से लिया। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सुव्रता के गर्भ से ध्रुव कीर्तिमान धामुष्माण तथा अमु नाम के चार पुत्र पैदा किये। ध्रुव से उनकी पत्नी धाम्मु ने विष्णु और मरु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। विष्णु ने अपनी पत्नी मुद्राया के गर्भ से रिपु, रिपु-रूप और, वृकल तथा वृकलेजा ये पाँच पुत्र उत्पन्न किये। रिपु से बृहती ने जसुप नाम के तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। जसुप के उनकी पत्नी पुष्परिप्ती से जो महारथ प्रजापति बीरता को कन्या की जसुप मनु उत्पन्न हुए। जसुप मनु से वैराज प्रजापति की कन्या महर्षना के गर्भ से इस महर्षी पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं—कुत्स पुत्र धातुष्म तपस्वी उत्पन्न, कवि धमिमुत्त धठिराज सुधुष्म तथा धमिमन्तु। पुत्र से धम्यो ने धय सुमना स्वातु, अमु, योगिन् तथा मय नाम के छ पुत्र उत्पन्न हुए।

धर्म से सुग्रीव ने ब्रह्म नामक पुत्र पैदा किया। ब्रह्म के उत्पादन से अविर्भाव को बड़ा श्रेष्ठ हुआ, अतः प्रजापतियों की रक्षा के लिए उन्होंने उसके हाथ का संभल किया। उससे महाराज प्रभु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियों ने कहा—ये महादेवस्त्री नरेख प्रजा को प्रसन्न रखेगी तथा महान् यज्ञ के चार्गी होंगी।

ब्रह्म कुमार पृथु ने ही इस पृथ्वी का पालन किया। उन्होंने के नाम पर इस ज़रती का नाम पृथ्वी पड़ा है। उन्होंने इस पृथ्वी के सब प्रकार के घनाक बुद्धे थे। प्रजा की जीविका करने वाली धरम से उन्होंने देवताओं, पितरों, यानों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं आदि के साथ पृथ्वी का बोधन किया।

उपमुक्त वर्तन में पुरुष की महत्ता ही अधिक है। ब्रह्मा ने अपने मन से सात प्रजापतियों को उत्पन्न किया। पुराणों में उन्हें सात ब्रह्मा के रूप में स्वीकार किया। इन सात ब्रह्माओं ने समस्त प्रजा और प्यारह खों का प्रादुर्भाव किया, लेकिन फिर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तो क्षेत्र के रूप में स्वीकाराई। ब्रह्मा ने अपने शरीर से ही उसकी उत्पत्ति की। उस स्त्री ने कठोर तपस्या करके स्वादन्मुखमनु को अपने पतिरूप में पाया और फिर इन दोनों के मिलन से प्रजा की वृद्धि होने लगी। इस वर्तन में स्त्री का होने वही रूप मिलता है जो पातिव्रत की परम्परा में स्वीकृत है और जिसे उसके अनुसार नष्ट माना जाता है। पुरुष ही निर्माता के रूप में धारण पाया है। पितृसत्ताक समाज में पुरुष के साथ जो क्षेत्रक का रूप बना हुआ है वह अत्यन्त रूप से होने यहाँ मिलता है। स्त्री क्षेत्र है उसके अभाव में ही तो प्रजा की वृद्धि नहीं हो पाई थी। जब क्षेत्रक ने क्षेत्र तैयार कर लिया तो असीम कार्य पूरा होने लगा।

यदि सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपमुक्त पौराणिक कल्पना को सत्य मान लिया जाये तो इसके साथ यही मानना होगा कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही पातिव्रत स्त्री के जीवन का आदर्श था। बृष्ण तपस्या करके ही वह पति को प्राप्त करती थी। एक बार पति को प्राप्त करके सदा उसके साथ रहना और उसकी सेवा करना ही उसके जीवन का गौरव था। उसी साधना में उसके जीवन की सार्थकता थी। सन्तानोत्पत्ति ही उसका पवित्र धर्म था। स्त्री और पुरुष के जीवन के बीच यह एक व्यवस्था है लेकिन क्या यह मानना उचित होगा कि सृष्टि के आदि काल में यही व्यवस्था आदर्श रूप में स्थापित हो गई थी और क्योंकि आदि काल में इसको सर्वोच्च बताया गया है इसलिए इसके अभाव में जितने प्रकार की भी व्यवस्थाएँ स्त्री और पुरुष के बीच हुई हैं, वे भी त्याग्य और पापपूर्ण हैं।

पुरुषोत्तम की कल्पना को ऐतिहासिक वास्तवता देने के पश्चात् ही ऐसा सोचना उचित हो सकता है। जामिन् के विकास-सिद्धान्त के सामने जाने पर और उसके प्रस्तुत किये हुए अनेक तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक रूप से दृष्टि का विकास नम समयमाने के पश्चात् पौराणिक कल्पनाओं को सत्य मानना पूरी तरह से असंभव है। इन्हें तो के ही सत्य मान सकते हैं जिसकी कल्पना का साम्प्रदायिक बड़ता के साथ पूरी तरह साधारण्य हो चुका होया। इसी प्रकार अनेक देवताओं के सम्बन्ध में भी धार्मिक जगत् में कहानियाँ भाती हैं लेकिन वहाँ भी श्री और पुरुष के बीच के सम्बन्ध इसी पातिव्रत के आदर्श को लेकर बसते हैं। उन कहानियों में पुरुष स्वामी है। श्री उसकी अनुयायिनी ही है। सूर्य इन्द्र विष्णु तथा शिव आदि जिसने भी देवता दिखाई देते हैं उनकी एक एक पत्नी है जो पूरी तरह से पातिव्रत के आदर्श का पालन करती है। शिव की पत्नी सती ने तो ब्रह्मे जन्म में भी पार्वती बनकर शिव की ही अपना पति बनाया। इसी प्रकार लक्ष्मी भी सदा विष्णु के प्रति अपनी पतिमति का परिचय देती है। इन्द्राणी ने भी पातिव्रत के आदर्श को रखा। जिस समय इन्द्र के बीछे ब्रह्महत्या मानी श्री और उसके भय से वह कमल की खड़ी के भीतर जा छिपा था उस समय इन्द्राणी अपने पति के विरह में व्याकुल होपई थी। पति के न होने पर उसने बहुत को कभी भी पति रूप में स्वीकार नहीं किया था। पति को खोजते के लिये उसने देवता और मुनियों को चेला था और जब इन्द्र ब्रह्महत्या से मुक्त होकर अपने पूर्वपद पर आया था तभी इन्द्राणी को सम्झी प्रसन्नता हुई थी। इस प्रकार अम्बिका की कहानी भी इसी आदर्श के अन्तर्गत आती है। प्रजापति की सात कन्याओं का अम्बिका के साथ विवाह हुआ था। उन सात में से अम्बिका रोहिणी को सबसे अधिक चाहता था और उदा उसके पास ही रहता था। प्रजापति की ब्रह्मती कन्याएँ अपने आपको तिरस्कृत मानकर अपने पिता के पास गईं और कहने लगी—हे पूज्य वर ! हमारे पति केवल रोहिणी पर ही स्नेह रखते हैं, हमारी तरफ़ कभी दृष्टि उठाकर देखते भी नहीं। आप उन्हें समझाइये। पति के तिरस्कार जाने से भी अधिक श्री के लिए कीमता शरत्त दुःख हा लगता है।

प्रजापति ने अम्बिका से घाटी बात बड़ी और उसे अपने कर्त्तव्य का प्यार दिखाया। अम्बिका ने प्रजापति से वायदा कर लिया कि वह अबस ही सभी पत्नियों को समान सम्मान कर प्यार करेगा लेकिन फिर भी रोहिणी के प्रति उसका आकर्षण उतना ही बना रहा और अन्य पत्नियों को तिरस्कृत होकर फिर अपने पिता के पास आना पड़ा। इस प्रकार तीन बार प्रजापति भी के कन्याएँ अपने पिता के पास गईं और प्रजापति ने अम्बिका को उदा पातिव्रत

धर्म से सुनीचा ने बेल नामक पुत्र पैदा किया। बेल के पर्याचार से ऋषियों को बड़ा क्रोध हुआ, अतः प्रजापतियों की रक्षा के लिए उन्होंने उसके हाथ का संघटन किया, उससे महापुत्र प्रभु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियों ने कहा—वे महादेवस्त्री नरैष्ठ प्रजा को प्रसन्न रखेंगे तथा महान यज्ञ के भागी होंगे।

बेल कुमार पृथु ने ही इस पृथ्वी का पालन किया। उन्होंने के नाम पर इस जगती का नाम पृथ्वी पड़ा है। इन्होंने इस पृथ्वी से सब प्रकार के घनाश्व दुहे वे। प्रजा की जीविका करने इसी उद्देश्य से उन्होंने बैकशाघों, पितरों, शालवों, गन्धर्वों तथा अप्सरसों आदि के साथ पृथ्वी का दोहन किया।

उपमुक्त वर्णन में पुरुष की महत्ता ही अधिक है। ब्रह्मा ने अपने मन से सात प्रजापतियों को उत्पन्न किया। पुराणों ने उन्हें सात ब्रह्मा के रूप में स्वीकार किया। इन सात ब्रह्माओं ने समस्त प्रजा धीर प्यारह खों का प्रादुर्भाव किया, लेकिन फिर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तो क्षेत्र के रूप में स्वीकार्य। ब्रह्मा ने अपने शरीर से ही उसकी उत्पत्ति की। उस स्त्री ने कठोर तपस्या करके स्वायम्भुवमनु को अपने पतिव्रत में पावा धीर फिर उन दोनों के मिलन से प्रजा की वृद्धि होने लगी। इस वर्णन में स्त्री का हमें बड़ी रूप मिलता है जो पातिव्रत की परम्परा में स्वीकृत है। धीर जिसे उसके अनुसार मष्ट माना जाता है। पुरुष ही निर्माता के रूप में माने जाता है। पितृवृत्तक समाज में पुरुष के साथ जो श्रेष्ठ का रूप लगा हुआ है वह अष्ट रूप में हमें यहाँ मिलता है। स्त्री क्षेत्र है उसके अभाव में ही तो प्रजा की वृद्धि नहीं हो पाई थी। जब श्रेष्ठ ने क्षेत्र तैयार कर भिक्षा से समीप कार्य पूरा होने लगा।

परि सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपमुक्त पौराणिक कल्पना को सत्य मान लिया जाये तो इसके साथ यही मानना हीना कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही पातिव्रत स्त्री के जीवन का आदर्श था। दृष्टकर तपस्या करके ही वह पति को प्राप्त करती थी। एक बार पति को प्राप्त करके सदा उसके साथ रहना धीर उसकी सेवा करना ही उसके जीवन का नीरव था। उसी साधना में उसके जीवन की सार्थकता थी। सन्तानोत्पत्ति ही उसका पवित्र धर्म था। स्त्री धीर पुरुष के जीवन के बीच यह एक व्यवस्था है लेकिन क्या यह मानना उचित होगा कि सृष्टि के आदि काल में ही यह व्यवस्था आदर्श रूप में स्थापित हो गई थी धीर चूँकि नैतिक जगत् में इसको सर्वोच्च बताया गया है इसलिए इसके असाधारण प्रकार की भी व्यवस्थाएँ स्त्री धीर पुरुष के बीच हुई हैं, वे भी त्याग्य धीर पापपूर्ण हैं।

फिर ईश्वर उस धारमी को उस बाग की देखभाल करने के लिए उसमें से क्या भी उस धारमी की कि इस बाग के हर एक पेड़ के फल बहु या सज्जा हैं लेकिन धारमी धीरे धीरे के बाग के पेड़ के फल जिस दिन भी उसने खा लिए उसी दिन उसकी निश्चित मृत्यु हो जायेगी ।

यह कहने के पश्चात् ईश्वर ने कहा यह ठीक नहीं है कि धारमी इस बाग में प्रवेश करे । मैं उसके लिए एक साथी पदा करूँगा । फिर उसी पृथ्वी में से ईश्वर ने पशु-पक्षी पदा किए और उन्हें धारमी के पास लाकर कहा इनके नाम रख । धारमी ने जो भी नाम रखे उसी नाम से धारमी एक पशु-पक्षी जाने जाते हैं ।

पशु-पक्षी पदा करने के पश्चात् भी ईश्वर ने देखा कि धारमी प्रवेश करता है, उसका कोई साथी नहीं है । साथी पदा करने के विचार से ईश्वर ने एक दिन धारमी को पहरी नींव में बाग दिया । जब वह सो गया तो उसकी पत्नी को एक हठी निकाल कर उसकी धारमी बनाई और उसको धारमी के पास लाया । उसे देखकर धारमी ने कहा—‘यह तो मेरे धारमी का ही प्रभु है इसलिए यह धारमी के नाम से जाना जायेगी । इसीलिए धारमी अपने माता-पिता को भी छोड़कर धारमी से अपना समस्त सम्पत्ति छोड़ेगा । वे एक ही धारमी के दो भाग हैं । मैं दोनों एक नाम में बिम्बुल मंगे वे लेकिन फिर भी एक दूसरे को तरफ देखकर उनके समस्त विभीषण प्रचार का लज्जा का भाव नहीं जाना का ।

जो बीजबन्धु ईश्वर ने उस नाम में पदा किए थे, इनमें सौं सबसे अधिक प्रभाव था । वह धारमी धारमी से कहने लगा—क्या ईश्वर ने तुमने इस नाम के पेड़ों का कोई भी फल खाने के निमित्त बना कर दिया है ?

धारमी ने कहा—नहीं ईश्वर की आज्ञानुसार हम प्रत्येक पेड़ के फल खा सकते हैं; लेकिन बीजबन्धु मे धारमी धारमी के बाग के पेड़ का फल खाने के लिए ईश्वर ने हमें बना कर दिया है क्योंकि उनके खाने से हमारी निश्चित मृत्यु हो जायेगी । इसीलिए ईश्वर ने कहा है कि इस पेड़ के फलों को तो छुना भी उचित नहीं है ।

धारमी की बात सुनकर सौं ने कहा—यह तुम्हारा मूल है । इनके बड़का भी नाम धारमी बना हो सकता है । ईश्वर ने तुम्हारे माप बात ऐसी है । उसे यह मय है कि उस पेड़ के फल खाकर धारमी के बाग हो जाने में नहीं तुम देखाओं का स्वाम ग्रहण नहीं कर लो । इसीलिए उसने यह मय दिखाया है । विश्वास करो उस पेड़ का फल खाने से तुम्हारे मृत्यु नहीं हो सकती—बलि

धर्म का ध्यान दिमाग विचको प्रार्थना मानकर स्त्री अपने पति को ही देवता मान लेती है, फिर पति का भी यह दर्शन हो जाता है कि वह अपनी पत्नी के प्रति समुचित स्नेह दिखाने से किन बन्धन के द्वारा बराबर हम मर्यादा का उत्सर्जन करने जाने के कारण प्रजापति ने उसे धाप दे दिया । फिर बन्धन के प्रार्थना करने पर वह धाप हटा, तब बन्धन ने अपनी सभी पत्नियों के प्रति बराबर प्रेम बिखाना प्रारम्भ किया ।

इसी प्रार्थना को लेकर भैरवराज मुनि के पिता विश्वनाथ स्वर्गात् सूर्य और संध्या की कहानी बनती है । हम सभी कहानियों में स्त्री के सामने बड़ी पातिष्ठ का प्रार्थना रखा गया । पति के बिना स्त्री का जीवन व्यर्थ है । पति के द्वारा तिरस्कृत होने से बड़ा दुःख स्त्री के जीवन में हुआ नहीं है । उसके जीवन की सार्थकता तो इसी क्षण में पति की सेवा करने में नहीं है बल्कि बन्धनान्तर तक पति की सेवा करने में है । पुरुषकार ने उस स्त्री को अत्यन्त ही दोगा बन्धन में बिधित किया है जिसके प्रति पति का प्रेम नहीं है । उसका दृष्टि कोण तो सर्वत्र पुरुष को ही स्त्री की शक्ति समझने में ही निहित रहा है । पुरुष ही स्त्री का रक्षक है । स्त्री की अपनी कोई शक्ति नहीं है तभी तो पृथ्वी नाम का रूप धारण करके देवों के अत्याचार से पीड़ित होकर लोकपितामह ब्रह्मा के पास आकर रक्षा के लिए प्रार्थना करती है ।

स्पष्ट रूप से देखा जाय तो पुरुषकार ने पति पत्नी के बीच एक प्रकार के प्रार्थना सम्बन्ध की कल्पना करनी है और उसी के अन्तर्गत देवी देवताओं की कथाओं को बाँधकर यह बताने का प्रयत्न किया है कि ब्रह्म देवताओं के बीच भी पातिष्ठ को ही स्त्री के लिए अष्ट वर्ग माना गया है अष्ट मनुष्य मात्र के लिए आरवत रूप में यही सम्बन्ध प्रार्थना रूप से मान्य होता चाहिए ।

ईसाई मतावलम्बी भी सृष्टि के प्रारम्भ से इसी प्रार्थना सम्बन्ध की कल्पना करते हैं । उनकी दृष्टि में तो स्त्री और भी हीन हो जाती है । पाप और मूर्खता उसके चरित्र के साथ जुड़ जाते हैं । बाइबिल की पहली पुस्तक में आदम और हव्वा (Adam and Eve) के सम्बन्ध में वर्णन आया है । ईसाइयों की विश्वास है कि इस पृथ्वी पर सबसे पहले ईश्वर ने आदम को पैदा । यही पूर्व पुरुष है । सभी मनुष्य उसी के वंशज हैं ।

बर्तुन इस प्रकार है और ईश्वर ने एडन (Eden) में पूर्व की तरह एक बाग खड़ा किया और वहाँ उस आदमी को रखा जिसे उसने बनाया था । उस बाग में हर एक तरह के अच्छे पेड़ उगाये और बाग के बीचों-बीच में जिम्बरी और ज्ञान का वृक्ष लगा दिया ।

फिर ईश्वर उस आदमी को उस बाग की देखभाल करने के लिए उसमें से गया और उसे धावा भी कि इस बाग के हर एक पेड़ के फल यह खा सकता है लेकिन अष्टाई और बुराई के ज्ञान के पेड़ के फल जिस दिन भी उसने खा लिए उसी दिन उसकी निश्चित मृत्यु हो जायेगी ।

यह कहने के पश्चात् ईश्वर ने कहा यह ठीक नहीं है कि आदमी इस बाग में धकेला रहे । मैं उसके लिए एक साथी पेशा कर ना । फिर उसी पृथ्वी में से ईश्वर ने पशु-पक्षी पेशा किए और उन्हें आदम के पास लाकर कहा इनके नाम रख । आदम ने जो भी नाम रखे उसी नाम से आदम तक पशु-पक्षी जाने बाटे हैं ।

पशु-पक्षी पेशा करने के पश्चात् भी ईश्वर ने देखा कि आदम धकेला है, उसका कोई साथी नहीं है । साथी पेशा करने के विचार से ईश्वर ने एक दिन आदम को पहरी नींद में कास दिया । वह बड़ सी दवा तो उसकी पसली को एक हड्डी निकाल कर उसकी धीरस बनाई और उसको आदम के पास लाया । उसे देखकर आदम ने कहा—'यह तो मेरे धीरस का ही धातु है इसलिए यह धीरस के नाम से जानी जायेगी । इसीलिए आदमी अपने बाता पिता को भी छोड़कर धीरस से अपना अनिष्ट सम्हाल जायेगा । वे एक ही धीरस के दो भाग हैं । वे दोनों उस बाग में बिस्फुल मंसे ब सकिन फिर भी एक दूसरे की तरह बैठकर उनके अन्दर किसी प्रकार का मन्त्रा का भाव नहीं आता था ।

जो बीजबन्धु ईश्वर ने उस बाग में पेशा किए थे, इनमें साँप सबसे अधिक चतुर था । वह आकर धीरस से कहने लगा—क्या ईश्वर ने तुमसे इस बाग के पेड़ों का कोई भी फल खाने के लिये मना कर दिया है ?

धीरस ने कहा—'गहाँ, ईश्वर की आज्ञानुसार हम प्रायेक पेड़ के फल खा सकते हैं; लेकिन बीचोंबीच में अष्टाई और बुराई के ज्ञान के उस पेड़ का फल खाने के लिए ईश्वर ने हमें मना कर दिया है । क्योंकि उसका खाने से हमारी निश्चित मृत्यु हो जायेगी । इसीलिए ईश्वर ने कहा है कि इस पेड़ के फलों को तो खाना भी उचित नहीं है ।

धीरस की बात सुनकर साँप ने कहा—यह तुम्हारी मूर्खता है । हमसे बड़कर भी भय धीरस क्या हो सकता है । ईश्वर ने तुम्हारे साथ बाग खेती है । उसे यह मय है कि उस पेड़ के फल खाकर अन्ध बुरे का ज्ञान हा जानें तो कहीं तुम देखभालों का स्थान ग्रहण नहीं कर ना । इसीलिए उसने यह भय दिखाना है । विस्वास करो उस पेड़ का फल खाने से तुम्हारा मृत्यु नहीं हो सकता—बलि



उससे तो तुम्हारे मस्तिष्क का प्रत्यक्ष प्रारंभ हो जायेगा और सत्य और प्रत्यक्ष का तुम्हें ज्ञान हो जाएगा ।

साँप की नाटों में घाबर, उस घोरत ने उस पेड़ का फल तोड़ लिया और कुछ उसमें से स्वयं खाकर बाकी भाग्य को भी खाने के लिए दे दिया । भाग्य ने भी उसे खाया । फल को खाते ही उसको यह ज्ञान हुआ कि वे भोजन हैं और उसी समय उनकी अपनी इस अवस्था पर लक्ष्मी होने लगी । उन्होंने पत्तियों से अपने शरीर को ढक लिया ।

उसी समय उन्हें ईश्वर की आवाज सुनाई दी । भाग्य और लक्ष्मी ने अपने आपकी पेटों के पीछे छिपा लिया । ईश्वर ने पुकारा—भाग्य ! कहाँ हो तुम ?

उसने कहा—स्वामी ! मैंने आपकी आवाज सुन ली है लेकिन मैं भगा हूँ इसी लक्ष्मी के कारण मैं आपके सामने नहीं आता ।

ईश्वर ने चौंक कर कहा—किसने कहा तुम्हें कि तू भगा है ? क्या तुने उस ज्ञान के पेड़ का फल खा लिया है ? क्या तुने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर जाला है ।

इस पर भाग्य ने कहा—हे स्वामी ! जिस घोरत को आपने मुझे दिया था । उसी ने मुझे वह फल खाने को दिया था । मैं उसे खा गया ।

वह सुनकर ईश्वर ने उस घोरत से कहा—यह तुने क्या किया ?

घोरत ने कहा—साँप ने मुझे बोझा दिया है । उसने मुझे सही रास्ते से हटाया है । उसके कहने से ही मैंने उस फल को खाया है, स्वामी !

इस पर ईश्वर ने कड़ होकर साँप से कहा—क्योंकि तुने यह पाप किया है इसलिए तुम्ह पर ही मेरा सारा ध्यान गिरे । तू पेट के बल जमीन पर निछेदा और जीवन भर मिट्टी खाता रहेगा । तुम्हें और इस प्रीत्य की प्रीत्य में सदा दुःखनी बनी रहेगी । वह तेरे सिर को कुचलती और तू उसके पैर में काटेगा ।

फिर ईश्वर ने घोरत की तरफ मुड़कर कर कहा—तेरे ऊपर भी महान दुःख गिरेगा । सदा दुःखी रहकर ही तू अपनी प्रीत्य की प्रीत्य करेगी । सदा तू अपने पति की हत्या की बासी रहेगी । वह तेरे ऊपर शासन करेगा ।

इसके पश्चात् उसने भाग्य से कहा—क्योंकि तुने मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके इस घोरत के कहने से इस पेड़ के फल को खाया है इसलिए मैं तुम्हें पाप देता हूँ कि तू अपने पूरे जीवन भर दुःखी रहकर इसको खाता रहेगा । इससे नष्टि पैदा होगी । तू जमीन से खोदकर बड़े पायेगा और मछली बन कर तू पानी से बचा कर ही अपनी रोटी खा सकेगा । उस समय तक जबकि तू

उसी मिट्टी में ॥ मिला जाये जिसमें से पैदा हुआ है तेरी जिम्मेदारी परेष्ठानियों में बटेगी ।

घादम ने सबकुछ गुप्तकर अपनी पत्नी को हुज्जा के नाम से पुकारा । वही हुज्जा सभी पशुओं की जगली है ।

इस्लाम महाकलम्बी भी बाइबिल की इसी कथा पर विरवात करते हैं । कुरान की दूसरी मुरे में इसकी धोर संकेत है ।

यहूदियों में तो यह विश्वास प्रचलित है ही ।

यदि उपयुक्त विश्वासी को ईश्वरीय वाक्य मानकर सृष्टि के सम्बन्ध में प्रामाण्य मान लिया जाय तो हमने यही प्रतीत होता है कि खी तो सदा पति की सेवा करने के लिए ही इस पृथ्वी पर जन्म लेती है । इसके प्रतिरिक्त उनकी किसी प्रकार की स्वतन्त्रता की पुकार अधार्मिक है क्योंकि ईश्वर ने पहले ही खी पुरुष के बीच सम्बन्ध को एक मर्यादा स्थापित कर दी है । क्योंकि खी मूर्ख है और दूसरे के प्रलोभन में आ जाती है इसलिए ही तो ईश्वर ने उसने कहा था कि पति सदा उसके ऊपर शासन करेगा । उसकी इच्छा ही उसके लिए मान्य होगी ।

ईसाई धर्म के प्रचारक सेन्पॉल ने भी पत्नियों से यही कहा था— पत्नियो ! तुम अपने पतियों के उसी तरह आधीन हो जाओ जैसे मगवान के आधीन होती हो ।

सेन्पॉल के मत का आधार बाइबिल का उपयुक्त कथन ही है । इसी प्रकार परबुद्धी वर्ग में पति की प्रभुता स्वीकार करते हुए उनकी आज्ञा की अवहेलना करने वाली स्त्री को वाक्य कहा गया है । इससेवक में पुनर्जागरण काल के पश्चात् जब खी भी अपनी स्वतन्त्रता के लिये मगवान से लड़ना करने लगी तो मिस्टन को फिर उसे हुज्जा का वही वाक्य याद दिलाया गया जो उसने आदम से कहा था ।

हुज्जा ने कहा था—हे मेरे लपटा धीर विवाता अम्बान् की ऐसी धागा है कि जो तुम आदेश शोक में बिना किसी प्रकार का विचार उपस्थित बिदे उगता पामन कर ली । तुम मेरे लिये अमजान और कामूब हो । खी के लिए इससे अधिक न जानना ही सबसे अधिक आनन्ददायी बात है खी में उसकी प्रशंसा है ।

सभी स्त्रियों पर खी के सामने पुरुष को मगवान एहमाज आधार, रक्षा चाहि मानने का आदेश है । धर्म इस मर्यादा को शासन और ईश्वर कहकर खी के सामने अस्तुन करते हैं । उनके लिये उनके पास कम-धन्यों के प्रमाण हैं; लेकिन विचार तो यह करना है कि क्या वास्तव में यह आदेश बेबी

है ? क्या सृष्टि के प्रारम्भ से ही ईश्वर ने पुरुष और स्त्री के लिये यही मर्यादा स्थापित कर दी है ।

हमारा मत है कि सृष्टि की उत्पत्ति और उसके साथ स्त्री पुरुष के प्रादुर्भाव सम्बन्धों की मर्यादा के विषय में जो भी विश्वास धार्मिक ग्रन्थों में रहे है, वे केवल नस्यना-मान हैं । उनको वैज्ञानिक मानना भूल है । बाइबिल के सिद्धान्त में उनकी धर्मवैज्ञानिकता को पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है । अब यह विश्वास नहीं किया जाता कि ईश्वर ने छ. दिन में ही इस संसार को बनाकर सातवें दिन विश्राम किया था और सारी सृष्टि में अनुप्य ही ईश्वर का सर्वप्रिय प्राणी है । बाइबिल की कहानी को काव्यरूपक के रूप में ही माना जा सकता है और वह भी यही तक कि अनुप्य अपनी बाइबिल व्यवस्था में भ्रम था । उसमें किसी प्रकार सच्चा कर्मभाव नहीं था । अच्छे और बुरे को भी वह भ्रमिक नहीं पहचानता था । यह स्त्री और पुरुष दोनों के ऊपर लागू होता है । फिर मर्यादा ही उसे इतना ज्ञान हो गया कि स्त्री में पुरुष की स्वामी मान लिया और वह प्रादुर्भाव एक मर्यादा के रूप में सुरक्षित हो गया, यहाँ ईसाई मत विकास के सिद्धान्त को न मानकर यही स्थापित करता है कि नव्यावस्था से लेकर पातितव्य के प्रादुर्भाव तक का स्त्री पुरुष के बीच के सम्बन्ध का विकास ईश्वर के इच्छा से सुरक्षित हो गया और उस क्षण से आज तक तो किसी प्रकार के विकास का प्रश्न ही नहीं उठता । ईश्वरी वाक्य तो अटल है, उसके साथ विकास का प्रश्न उठाकर उसकी शान्ति सत्ता पर झंका करना धर्म की मर्यादा को चुनौती देना है यही कारण है कि ईसाई महापुरुषों तथा उनके साथ धर्म धार्मिक मतों में विश्वास करने वाले लोग बाइबिल के विकास के सिद्धान्त को धर्म के लिये सदा चुनौती ही समझते रहे हैं ।

यदि धार्मिक विश्वासों की वास्तविकता पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाय तो यही मासुम होता है कि ये धार्मिक विश्वास पुरुष ने ही बनाये हैं और बनाने भी उस समय हैं जबकि उसकी सत्ता को स्त्री ने स्वामी के रूप में स्वीकार कर लिया था । पुरुषों में जो सृष्टि का वर्तमान प्राण है वह विप्लववादी समाज के हजिकोस को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है । इस प्रकार की नस्यना बहिष्कार के पश्चात् ही की गई थी, नहीं तो वेद के निर्माण काल में तो स्त्री को इतनी महत्ता थी ही नहीं गई थी । उस समय तो इन्द्र ही सबसे अधिक पूज्य देवता था और उससे भी पहले या बराबर जिस की सर्वत्र उपासना होती थी । पुत्रप्राप्ति के द्वारा प्रस्तुत किये हुए सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन में न तो इन्द्र के लिए किसी प्रकार का स्थान दिया गया है

घोर म बरक़्त के लिए । यही बात प्रत्यक्ष रूप से यह व्यक्त करती है कि वैदिक काल में इस प्रकाश की धारणा को कोई स्थान नहीं मिला था । बरक़्त के सर्व-पुण्य वैभवा हो जाने तक पितृसत्तात्मक समाज अपना सुरङ्ग रूप जमा चुका था लेकिन बरक़्त से पहले भी सर्व-पुण्य एक वैभव भी । वह घटित है जो बरक़्त को माता बही जाती है । घटित की मायता ही मातृसत्तात्मक समाज की धोर इतिवृत्त करती है । बाद में पितृसत्तात्मक समाज में उसी घटित के बारे में यह कल्पना की गई कि वह बरक़्त की पुत्री है । इस प्रकार धार्मिक विश्वासों के पैदा होने और बढ़ने की एक कहानी है । विभिन्न परिस्थितियों के प्रत्यक्ष से विश्वास निरन्तर अपना रूप बदलते जाते हैं अतः इनको धारण मानना या किसी प्रकार विषय के ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए इनको सात्वत आधार मानना भूल होनी । उपर्युक्त मतों को उद्घुष्ट करने का हमारा यही उद्देश्य है कि अधिकतर परम्परावादी धर्मग्रन्थों का उदाहरण लेकर जो कल्पना और पतन का निर्णय किया करते हैं । वे विकास की धोर से धार्मिक मूल्य और मर्यादा का ही बीज बोया करते हैं । प्रश्न तो यह है कि वह मर्यादा क्या है ? क्या यह कोई ऐसी स्थिर वस्तु है कि समय और परिस्थिति में किसी प्रकार की लोपता रहती ही नहीं है ? इस तरह मर्यादा की स्थिरता मानने वाले लोग तो फिर यही एक विश्वास करने लग जायेंगे कि दुनिया में कुछ बदलता ही नहीं है । जैसा भी रूप अपनाव में एक बार इस दुनिया को दिया था वही अवतक जमा आ रहा है और प्रत्येक काल तक इसी प्रकार चलता चला जायेगा । ऐसी धारणायें निर्मूल हैं । तथ्य जगत् कभी साब नहीं देते । दुनिया में सबकुछ बदलता है, सभी का पारस्परिक विकास होता है । यदि धार्मिक बीजों की सहाय्य की सुचना हम वैदिक काल के मनुष्य से करें तो वो निम्न रूप पायेंगे । इसी प्रकार मनुष्य की प्रत्येक समस्या, उसके जीवन का प्रत्येक पक्ष विकास रूप में अपना रूप बदलता रहता है । धार्मिक मतों के द्वारा स्थापित पातिव्रत के धार्मिक के पीछे और धार्मिक धर्म और पुरुष के बीच अनेक तरह के सम्बन्धों का एक इतिहास है और उन सम्बन्धों की अपनी अपनी परिस्थितियाँ हैं जिनसे वे पैदा हुए हैं । उन परिस्थितियों का यही रूप से अध्ययन करके ही धर्म और पुरुष के सम्बन्धों की समस्या पर हम बृहत् रूप से विचार कर सकेंगे । किसी भी एक स्थिति को धार्मिक रूप में मान कर उसको मर्यादा बना देने से काम नहीं चलना । इस तरह के धार्मिक ही विषय के स्पष्टीकरण में सबसे अधिक बाधा जाते हैं । इनको छोड़कर हमें इतिहास का आधार मिला होगा उनी हैं जीवन के धार्मिक

विकास पर प्रकाश डाला जा सकता है, नहीं तो धार्मिक विश्वास से बने हुए सोच को एक मर्यादा से आगे नहीं बढ़ने की किसी प्रकार के भ्रम्य अधिकारों की भाँति को समाचार के रूप में स्थापित करेंगे। धार्मिक विश्वास की के प्रति कोई अधिकार भी नहीं करते। हमारा ही कहानी से ईसाई प्रारम्भिक पाप (original sin) का सम्बन्ध की के साथ जोड़कर उसे ही पापिनी के रूप में मानते हैं। क्योंकि उसने आदम को बहुत दूर देकर उसे ईश्वर के बचाने का मार्ग से मिराया था, इसलिए उसे सदा पुण्यों को अपने पक्ष में विनिमित्त करने वाली के रूप में समझा जाता है। इस प्रकार के विश्वास की के प्रति कहीं तक स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार अरबुली वर्ष उड़ी की को पक्ष कटता है जो अपने पति की प्रकृति मान लेती है, बाकी सभी को आदम के रूप में विनता है। क्या यह एकापी पक्ष नहीं है, जो स्त्री को बाकी के रूप में ही स्वीकार करके एक मर्यादा की स्थापना कर देना चाहता है। मर्यादा की बात यहाँ तक आगे बढ़ती है कि फिर तो चाहे पति कितना भी चर्चवादी और प्रत्यावादी हो लेकिन की के जीवन को मुक्ति तो उसकी सेवा करने में ही है। इस प्रसंग में मार्क्सवैय पुराण में आई एक कहानी को मैं सामने रखता हूँ—

प्रतिष्ठापनपुर में एक कौशिक नामक ब्राह्मण था। वह पूर्व जन्म में क्रिष्ण पापों के कारण कोढ़ी हो गया। ऐसे कुण्ठित रोग से मुक्त होने पर भी उनकी पत्नी बेवता की भाँति उसको पूजा करती थी। उसके पैरों में तन मलती थी। अपने हाथ से महलाठी थी इतना ही नहीं उसके बूढ़ बच्चे मन-मूढ और रक्त भी वह स्वयं ही पीकर खाफ करती थी। इस सबके बचने में उसका पति अपना अपनी स्वभाव होने के कारण उसको सदा फटकारता रहता था।

एक दिन कौशिक ने अपने घर की छिड़की से एक लपकती बेवता को सड़क पर आते हुए देखा। उसके रूप पर आसक्त होकर उसने अपनी पत्नी से कहा—  
प्रिये! तुम किसी तरह मुझे इस बेवता के पास ले जानो। मेरा मन इसकी ओर आकर्षित हो रहा है। उसके रूप को देखकर मेरे हृदय में नामवाचना आग उठी है।

कौशिक में उठने की भी शक्ति नहीं थी उस उसकी सीमावर्तीमिनी पतिव्रता पत्नी ने उसे अपने कंधे पर उठा लिया और पीरे पीरे वह बेवता के घर की ओर चलने लगी। धीरे-धीरे रात थी। रास्ते में ही महर्षि माण्डव्य सूत्री पर बैठे हुए थे। धीरे-धीरे में उस स्त्री का वह नहीं बीजा और जैसे ही वह उस सूत्री के पास होकर निकली तो कौशिक का पेट उसमें टकरा गया और महर्षि के शरीर में उस सूत्री के जन्म होने पर वह हुआ, इस कारण वह होकर

महर्षि ने साप दिया—जिस सूर्य में भी इस समय धाकर मुझे यह पीड़ा पहुँचाई है वह सूर्योदय होते ही इस पृथ्वी से उठ जायेगा ।

महर्षि का यह साप सुनकर कौशिक की वह पतिव्रता पत्नी एक साप प्रायेण में भा गई और उसने कहा—‘महर्षि ! आपने बिना सोच समझे ही प्रायेण में धाकर यह साप दिया है, लेकिन फिर भी मेरे पति के जीवन की रक्षा करने की शक्ति मुझ में है । यदि मैंने आजीवन पतिव्रत धर्म का पालन किया है तो मैं कहती हूँ कि अब सूर्योदय नहीं होगा ।

उस पतिव्रता नारी के इस जन्म के प्रभाव से सूर्योदय नहीं हुआ । सूर्योदय न होने के कारण संसार का सारा कार्य रुक गया यह होना बन्ध हो गया, देवता अपना काम न पाने के कारण व्याकुल होने लगे । उन्होंने महर्षि पति की पत्नी अनसूया से कहा—‘हे देवी ! सूर्योदय न होने के कारण संसार के सब प्राणि सभी धार्मिक कार्य रुक गये हैं आप कोई ऐसा प्रयत्न करिये कि फिर से संसार का सारा कार्य सुचारु रूप से चलने लगे ।

इसके साथ ही देवताओं ने कौशिक की पतिव्रता पत्नी के अटल व्रत की सारी बात बता दी । अनसूया ने कहा—देवताओं ! पतिव्रता का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता इसलिए मैं उस साप्ती को मनाकर दिन की सृष्टि कर दूँगी । मुझे ऐसा उपाय करना है जिससे फिर पहले की भाँति दिन रात की व्यवस्था चलती रहे और उस पतिव्रता के पति का भी नाश न हो ।

वह कहकर अनसूया कौशिक की पत्नी के पास गई और उसे हर प्रकार से समझाकर बोली—‘वस्थाप्री ! तुम देवता और मनुष्यों के क्रमवर्ती के सिधे सूर्य को उदय होने दो । उस समय तुम्हारे पति की मृत्यु हो जाने पर मैं उन्हें फिर अपने पतिव्रत के बल पर पुनर्जीवित कर दूँगी ।

कौशिक की पत्नी अनसूया की बात मान गई और उसने सूर्योदय की आज्ञा दे दी । सूर्योदय हुआ उसी क्षण कौशिक निर्जीव होकर पथ्य पर गिर पड़ा । इसके पश्चात् अनसूया ने अपने पतिव्रत के बल पर उसको पुनर्जीवित किया और एक वृष्टि की कड़ी के स्थान पर एक सुन्दर नवयुवक बनाकर उसने कौशिक को उसकी पत्नी के सामने खड़ा कर दिया ।

वह है पतिव्रत की शक्ति ! स्त्री की यही तो सबसे बड़ी शक्ति है जिसके बल पर एक बार तो वह मृत्यु तक को भी चुनौती देकर रोक सकती है । पुण्यव्रत ने तो वही पत्नी को इनका भी अधिकार देना उचित नहीं समझा है कि वह पति के व्यवहार पर किसी प्रकार का तर्क भी कर सके । इनसे तो यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यदि पुरुष बेरिपागाभी हो तो भी स्त्री का

पूर्ण विश्वास के साथ उसकी सेवा करनी चाहिए। यही उसका अधिकार है। यह स्त्री के लिये बाँधी गर्वादा की अन्तिम सीमा है, लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि जब ब्रह्मा ने अपने शरीर को अरावर के दो भागों में बाँटकर स्त्री और पुरुष की सृष्टि की तो फिर स्त्री और पुरुष के लिये अलग अलग प्रकार के मिशनों की सृष्टि क्यों की। जिस प्रकार पुरुष वैश्यागामी होकर भी अपनी पत्नी की पूर्ण भक्ति की अपेक्षा रखता है, उस तरह क्या स्त्री भी ऐसे पति से विमुक्त होने का अधिकार रख सकती है। पुरुषकार के मत में ऐसी स्त्री कुलदा और पतित हो जायेगी। यदि कौणिक की परनी उस अभिचारी पति के व्यवहार पर क्रोध होकर उसका विरस्कार करती तो सम्भवतया पुरुषकार उसकी आत्मा में इतनी शक्ति नहीं बिखारा कि वह सुबोध को भी रोक सके।

इन सभी धार्मिक विश्वासों से यही स्पष्ट होता है कि धार्मिक मर्यादों के पीछे व्यक्ति और वर्गों के स्वार्थ रहे हैं। एक प्रकार के इन्द्र के भीतर से इन विश्वासों का जन्म हुआ है, इसलिए हम तो विषय को निष्पक्ष दृष्टि से सभी धर्ममूलक कर सकेंगे जब उस इन्द्र को अपनी वास्तविक स्थिति में देखें जिनमें से इन मर्यादों ने जन्म लिया है। कोई भी धार्मिक विश्वास वास्तव नहीं है, जैसे ईश्वर और देवता आदि को सम्मिश्रित करके प्रयत्न हर समय धर्म-सिद्धकों ने यही किया है कि अपनी बात को शास्त्र बना दें। हमें निरन्तर बसते इस परिवर्तन के क्रम में ही प्रत्येक धार्मिक और मूल्य को देखना चाहिए और फिर यह निर्दिष्ट करना चाहिए कि हमारी अपनी परिस्थितियों के बीच स्त्री और पुरुष के बीच किस प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिए।

यह हम सभी प्रकार बख चुक है कि धार्मिक विश्वास के रूप में प्राणी के विकास के विषय में की गई कल्पना किसी प्रकार का वैज्ञानिक आधार नहीं रखती। एक हजार ईसवी से पहले ईसाई मतानुयायी केवल यही विश्वास करते थे कि यह संसार केवल ईसा से एक हजार वर्ष बाद तक ही बनेगा, इसके पश्चात् सभी कुछ नष्ट हो जायेगा लेकिन जब संसार पूर्ववत् बनता रहा तो यह भ्रम हल हो गया। इसी प्रकार वे भ्रम संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिक विश्वास के रूप में जीवित हैं। अभीसर्गी धर्माधीन में विकास के सिद्धान्त के जाने से इन सभी विश्वासों को एक गहरा चक्का लगा था, सभी इजिप्ट में डिक्टोरिया काम के कुछ धार्मिक कर्मियों के सामने प्रवेश सा सा दिया था। वे कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि हमारे जैसे सभी मनुष्यों के पूर्वज बन्दर भी तो धाकृति वाले बनमायुम थे। इस विचार ने हर जगह एक चान्ति सी पटा कर दी थी। जिस तरह की हसबल पेसीजिरो के इस मिथ्यात्व ने मन्त्रा भी की कि पृथ्वी स्थिर नहीं है बल्कि घूर्णन स्थिर है और पृथ्वी उसके

चारों ओर बहुर जगाती है उसी प्रकार की कलकली बारिश के सिद्धांत से मच गई थी। तभी धार्मिक विश्वासों के रूप में पसले व्यापकों पर हांका की जाने लगी और मूर्तियों की छिद्र से लोभ प्रारम्भ हो गयी। परम्परा और साम्प्रदायिकता के स्थान पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण ने जन्म लिया।

प्राचीन समाज की स्थिति के बारे में पश्चिम के बिडान मोरगन (Morgan) ने काफी सोच-बीन की है। उसी ने उस प्रागैतिहासिक काल का क्रमबद्ध एक चित्र उपस्थित किया है। उसने मनुष्य जीवन के इतिहास को तीन युगों में बाँटा है—

- (१) बर्गली अवस्था (Savagery)
- (२) बर्बर अवस्था (Barbarism)
- (३) सभ्यता का युग (Civilization)

इन तीनों के भीतर भी वह एक क्रम प्रस्तुत करता है। निम्न मध्य और उच्च के रूप में प्रत्येक स्थिति का हमें विभाजन कर लेना चाहिए। बर्गली अवस्था का निम्नतम रूप मनुष्य का यह मिलता है कि वहाँ उसमें और पशु में कोई अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता।



## भेतिबत्ता का सामाजिक आधार

पूरा जीवन के विषय में कोई विषमता का कारण व्यक्ति का ध्यान है। वह नहीं जानता कि भारतीय काम से लेकर मनुष्य ने किम किम परिस्थितियों के बीच चलकर अपने जीवन का विकास किया है। वह यह भी नहीं जानता कि बिन प्रादुर्भावों को लेकर वह वर्म की दुहाई देता है, वे साक्ष्य नहीं हैं, बल्कि विभिन्न परिस्थितियों के बीच मनुष्य द्वारा निर्मित हैं।

वर्म और संस्कृति की पुकार करने वाले लोग कितना कम समझते हैं कि वर्म और संस्कृति क्या होती है। एक बार एक सम्मेलन करने लगे कि पश्चिम के संसार में इतना अधिक अभिचार पैसा हुआ है, फिर भी कितना कुछ होता है कि भारतीय हमारे पश्चिम वालों का अनुकरण करते हैं। क्या हमारी संस्कृति की कभी वे तुलना कर सकते हैं? वहाँ की बाबाक भीरों हमारे यहाँ की भार्गव महिमाओं की तुलना कैसे कर सकती है? वहाँ की एक बार जिससे विवाह कर लेती है, कुछ समय पश्चात् उसको तमाकू लेकर उससे अपरिचित ही बन जाती है लेकिन भारतीय महिला कितना भी कुछ सहकर पति को देवता समझकर उसकी सेवा करती है, क्या वह भार्गव की गरिमा पश्चिम की स्त्री प्राप्त कर सकती है?

महामारत में पाराधर की एक कथा घातो है। उन्होंने एक बार

एक बीबर की कबारी कन्या मरत्यवस्था के साथ सहवास किया था और उस कबारी कन्या ने गर्भ से कृष्णप्रायम (बेबम्यास) जैसे महर्षि पैदा हुए थे, जिन्होंने हिन्दुओं के सबसे प्राचीन धर्म-ग्रन्थ वेद का व्यास किया है, क्या पाराशर का यह व्यवहार धर्म धार्मिक व्यवहार कहा जायेगा ? उस समय इसे कुछ नहीं माना गया था । (यद्यपि कुम्भी का ऐसा ही धाचरण भण्डा नहीं माना गया था ।) धार्मिक को यदि इस-काम से व्यस्य करके देखा जाये तो कुछ भी नहीं है । यह तो परिस्थिति से सापेक्षता रखता हुआ उसी के अनुसार ही तो अपना विकास करता है ।

धार्मिक के जीवन में इसी धार्मिक और मर्यादा के कारण ही सारी विषमता है । जब तक व्यक्ति अपने ज्ञान का इतना विस्तार नहीं कर लेता कि वह विभिन्न परिस्थितियों के बीच उठते विभिन्न कपो और धार्मिकों को पहचान न ले, वह इस जड़ता से कभी नहीं बच सकता । उसके मस्तिष्क में अवश्य ही इसके प्रभाव में एक गतिरोध सा रहेगा । धार्मिक जितने भी पुण्यजनवादी हैं वे उन्हीं यही कहकर तो पुकारते हैं कि प्राचीन काल का सा धार्मिक जीवन अब नहीं रहा । सतयुग तो पूरी तरह सत्य और पुण्य का युग था जिसमें कभी मनुष्य के मस्तिष्क में पाप उठता ही नहीं था; लेकिन कलियुग में धार्मिक-धार्मिक के धार्मिक धार्मिक नष्ट हो गये और अब सत्य के स्थान पर झूठ और कलह ने जगत् और अपना साया फैला रखा है । इस सारी उन्नति और प्रगति की वास्तविकता बताने की दृष्टि से ही यौन जीवन का यह प्राचीन रूप बालना चाहिए वह मनुष्य प्रायः पशु प्रवृत्ति में रहता हुआ ही अपना जीवन बिताया करता था । अधिकतर धार्मिकवादी और मर्यादावादी तो उस युग को स्वीकार ही नहीं करते । सम्भवतः इससे उनके हृदय को बहुत मना है लेकिन सत्य किसी को झुठला और धर्मिकता पर निर्भर नहीं रहता । सत्य समाज के सम्प्रदायों में से कम से कम तो धार्मिक की धार्मिक व्याख्या की जाती है और उसे धार्मिक रूप दे दिया जाता है । प्रायः संसार में यही परिपाटी चलती है । सौ वर्ष पहले ही मनुष्य को अपने उस प्राचीन स्वरूप का ज्ञान हुआ था जिसके बारे में वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था । अब उस यह ज्ञात हुआ कि एक समय वह भी मनुष्यता में पशुओं की तरह इस पृथ्वी पर बिचरता करता था तो उसके धार्मिक को बहुत मना । कोमल रूपनाथों का महल उन्नत ऊँच होकर बिखर गया । अब वह कैसे कह दे कि उसका पूर्वज तो परम उपस्थी मनुष्य के ? विकास के सिद्धान्त ने धार्मिकों को पूर से बने हुए भ्रम-जाल को तोड़ दिया और अब वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास का अध्ययन बना । पहले मनुष्य-परम्परा से मोम

उन्हीं धार्मिक कहानियों को चुनते और उन पर विश्वास करते जैसे चाहे थे । तथ्यों के बारे में उन्होंने कभी तर्क उठाया ही नहीं था लेकिन उसीसर्वी सतायी से तर्क उठाने लगे । इस घटावकी को ही विश्व-चेतना का पुनर्जागरण काम कहना चाहिए । आरबिम ने विश्वरे तथ्यों को इकट्ठा करके एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया । गौरवन जैसे विद्वान ने प्राचीन समाज के बारे में जोन बीन प्रारम्भ कर दी । अनेक विद्वानों ने आकर विविध स्थानों में रहने वाली प्राचिन बातियों के जीवन का अध्ययन भी किया है और उनके बीच पसती विविध प्रकार की प्रथाओं को देखा है । यूननसम्बन्धों के बारे में भी उन्होंने पता समाय है और वहाँ भी उनके सामने अनेक प्रकार के रूप चाहे हैं, तब यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है कि प्राचीन काल में न तो भाव का सा पातिव्रत का आदर्श था और न भाव की ही पुरुष की सर्वोपरि सत्ता थी ।

अपने प्रारम्भिक काल में मनुष्य प्रायः अचरन्ता रहता था । पशुओं के समान उसका जीवन था । या तो वह पेड़ों पर रहता था या बुझमें बनाकर उनके अन्तर अपने आपको छिपाने का प्रयत्न करता था । उस समय वह अनेक हिंस पशुओं से डरता था इसलिए कभी अकेला नहीं रहता था । समूह में रहने की उसकी प्रवृत्ति का यही कारण था । वेद में भी इसकी ओर संकेत मिलता है । यदि मैं लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में अशक्ति अकेला था उस समय उसको मय हुआ और उसने अपनी सुरक्षा के लिये समाज बनाया । इस समूह में स्त्री और पुरुष दोनों ही रहते थे । उस समय भाव को तरह स्त्री अपनी अचरन्ता अवस्था पर संतुष्ट नहीं होती थी । प्रोफेसर मैलिनोवस्की (P Malinowski) ने मैलेनेसिया (Melanesia) की प्राचिन बातियों का अध्ययन किया वहाँ जियाँ केवल अपनी योनि और निठमों को ढँकती हैं, बाकी सतक सारा शरीर खुला रहता है । इसलिये उस प्राचीन अवस्था के बारे में यह सोचना तर्क विच्छ नहीं है कि जियाँ एक समय नग्न अवस्था में रहती थी । यदि वे अपने शरीर को ढकती थी थी तो किसी प्रकार के नग्ना के भाव के कारण नहीं ढकती थी बल्कि सर्वाँ और बरसात से अपने शरीर को बचाने के लिए ही यह करती थी । उसी प्रकार पुरुष करते थे । प्राचिन्टर वे पशुओं का छिपार करके या काम मूल फल आकर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे । पशु को मारकर उसकी आध उभेड़ कर उसको छोड़ दिया करते थे या पेड़ों की फल मिलाकर शरीर को ढक लेते थे । वे सोच पैठो करना नहीं जानते थे । यहाँ तक कि कुछ काल तक तो उनको अग्नि भी प्राप्त नहीं हुई थी जिस पर वे काम और मूल प्राचि को पका कर खा सकें । बाद में आकर

उन्हें पकायक पदों की रणक से परा हुई अग्नि का ज्ञान हुआ और तब से उनके जीवन में एक नया ही अध्याय प्रारम्भ हो गया ।

और पुरुष बराबर का परिधम करके ही उस समय अपना मोहन प्राप्त करते थे इसलिए मात्र की तरह यह प्रश्न नहीं उठता था कि चूँकि पति अपनी पत्नी का भरपूर पोषण करता है इसलिए वह भार्या कहलाती है और इसी कारण भार्या की एक मर्यादा है—पति उसके लिए देवता के समान है । उस समय दोनों की पुरुष अधिकतर स्वतन्त्र रहते थे । एक दूसरे की परतन्त्रता नहीं उठाता था । द्विचार करके जो कुछ भी वे चाते थे या कर्ममूल फल चाहि जो कुछ भी इच्छा करके लाते थे उसे मिल बाँटकर खा लेते थे । व्यक्ति की मर्यादा कोई सम्पत्ति उस समय नहीं होती थी । उसके दो कारण हैं । एक तो व्यक्ति अपने आपको धकल में इतना अवस्था समझता था कि वह जिस पशुओं से अपने जीवन की रक्षा नहीं कर सकता था और आवश्यक रूप से उसे समूह बनाकर रहना पड़ता था । दूसरे वह व्यक्ति ने व्यक्ति परिधम करके जो केवल अपने मोहन के लिये ही पर्याप्त सामग्री जुटा पाता था । व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार के साथ ही तो परतन्त्रता चापण अध्याय चाहि को सम स्या उठती है उस समय वह नही था, तभी उस युग को प्रादिम साम्यवादी युग कहा जाता है ।

लेकिन यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि उस अवस्था में जब मनुष्य बिलकुल पशुओं का ही जीवन बिताता था और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार भी नहीं पैदा हुआ था तो भी क्या और पुरुष के बीच सत्ता और अधिकार के लिये किसी प्रकार का संघर्ष नहीं था ? क्या दोनों एक ही समान बराबर पर थे । अधिकतर इतिहासकार तो प्राचीनकाल में मानुसत्तारमक समाज की बाने करते हैं जिसके अन्तर्गत माता का अधिकार बढ़ा था । माता के रूप में और पुरुष की अपेक्षा ज्यादा अधिकार रखती थी । पुरुष उसको आज्ञा मानता था और उसकी महत्त्वपूर्ण सत्ता का उचित सम्पत्ता देकर ही उस समय समाज के लिये नियम बने थे । सम्पत्ति के अधिकार को माता को ही प्रमुखता देकर बनाये गये थे—तब क्या यह मानें कि और पुरुष के ऊपर महत्ता प्राप्त करने की स्थिति आदिमकाल से धीरे धीरे स्थिति है या उन्हीं परिस्थितियों के बीच यह पैदा हो गई थी ।

और प्रमुखता आदिमकाल में ही स्थापित हो गई थी । यद्यपि प्रादिम इतिहास में दोनों के अधिकार प्रारम्भ में बराबर थे फिर भी कुछ अन्तर्गम कारणों के कारण पुरुष ने और को अपने आपने अधिक महत्ता दी । जैसे सामा-

एकदम हम पशुओं के बीच देखते हैं कि मादा नर से शारीरिक शक्ति में कम होती है, इसीलिए नर हमेशा मादा पर शासन ही करता है। पशुओं के जीवन को निकट से देखकर यह पुरा निश्चाय होता है कि अवश्य ही प्रकृति ने स्त्री को पुरुष की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से कमजोर बनाया और यदि यह नहीं भी मानें तो उसके साथ प्रसन्न धावि का सम्बन्ध होने के कारण वह सदा पुरुष से कमजोर ही होती है। फिर क्या कारण है कि पुरुष ने स्त्री को ही अपने आपसे अधिक महत्ता दी ?

जर्मनी का शार्पनिक नीत्से कहता था कि प्रकृति ने स्त्री को पुरुष की अपेक्षा सभी दृष्टियों में हानि बनाया है इसलिये समाज में आवश्यकता की र पुत्र पैदा करने की है। जिस समाज में कम्यारों का जन्म अधिक होता है वह ह्रास की समाज है। नीत्से ने पशुओं और आनकम के स्त्री पुरुषों का जीवन देखकर ही अपना यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

यह कहना कि नीत्से और मनु समाज के एक प्रकार की भूल है। मनु ने स्त्री को पुरुष द्वारा रक्षित तो अवश्य बताया है परन्तु उसने स्त्री को घर में पुरा महत्त्व दे दिया है और स्त्री का दर्जा यही इतना गिरा हुआ नहीं है, जितना नीत्से ने। नीत्से ने स्त्री केवल प्रजनन का साधन-माध्यम है। मृतानियों घरों, और तुकों में स्त्री का दर्जा काफी गिरा हुआ था। यह सत्य है कि मुहम्मद ने स्त्री का दर्जा घर में काफी उठाने का प्रयत्न किया था, लेकिन वह बस्तुतः उठ नहीं। इस दृष्टि ने पितृसत्ता के इतिहास में ही कई बार स्त्री के अधिकार बढ़े हैं और कई बार घटे हैं। यह समाज के वर्गीय सम्बन्धों पर निर्भर रहा है कि कब उसने अपने अधिकार छोड़े हैं कब पाये हैं। भारत में सामंती व्यवस्था के उदय के समय उसने कुछ आजादी पायी थी लेकिन सामंती व्यवस्था के उदय के उदय के उदय होता गया उसके अधिकार भी घटे गये। पूँजीवादी व्यवस्था के उदय ने भी स्त्री को तुलनात्मक रूप से अधिक अधिकार दिये हैं।

यद्यपि विकास के सिद्धान्त के आने पर यह मानना किसी तरह सम्भव नहीं है, और न होना ही चाहिए, कि हमारे आदिम पूर्वज पशु के समाज थे लेकिन फिर भी पशु और आदिम मनुष्य की चेतना में बहुत अन्तर था। पशु व्यवस्था से मुक्त हुए उस आदिम मनुष्य में विचार शक्ति थी जो पशुओं में अविद्यमान होती ही नहीं और बल्कर जैसे जानवरों में होती थी है तो बहुत मोड़ी होती है। मनुष्य प्रारंभ से ही निरन्तर अपने आपको तथा अपने भास-पास की परिस्थितियों को समझने का प्रयत्न करता रहा है। जब स्त्री के दर्जा से समाज बड़ा हुई भी तो उसे ही इतना अधिक कीतुल्य हुआ था कि उसने इसके साथ

स्वीकार करके कि चूँकि बच्चा स्त्री के गर्भ में पैदा होता है इसलिये स्त्री ही उसे अपने दस्त घोर माँ से बनाती है और जब तक गर्भावस्था में वह रहता है तब तक घग्गर उसको पालती रहती है फिर बाहर अपना दूध पिलाकर उसको पालती है इसलिये बच्चे पर पूर्णतया उसी का ही अधिकार है। वही उसका निर्माण करती है। घग्गर घोर बाहर वही उसको खाना देकर उसका पालन-पोषण करती है इसलिये माता के रूप में यह स्त्री ही प्रमुख स्थान रखती है। क्योंकि पुरुष अभी यह कल्पना ही नहीं कर सकता था कि वह अपने शरीर से किसी दूसरे पुरुष को पैदा करे। स्त्री के साथ मदी रूप प्रचुर शक्ति व ही पुरुष को कीमती में काम दिया।

पुरुष के इसी अज्ञान ने उसे स्त्री का आधिपत्य स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। यह मातृमतात्मक समाज की वह प्रारम्भिक स्थिति थी जब स्त्री घोर पुरुष दोनों के रूप में बँटकर नहीं रहते थे।

कुछ विद्वान इस मन का विरोध करते हैं। उनका विश्वास है कि स्त्री घोर पुरुष प्रारम्भ में दोनों के रूप में रहते थे सम्मेलन भी इन दोनों तक ही सीमित था। कामाचार की स्थिति अनुपपन्न समाज में कभी नहीं आई थी। बाद में बनकर इसी बोझ के सम्बन्ध को पालित और एक पालित के रूप में मर्दाहित कर दिया गया।

यह धारणा पूरी तरह निर्मूल है क्योंकि बिन पशु-पक्षियों के जीवन का अध्ययन करके घोर इनके साथ मनुष्य के जीवन की तुलना करके वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उनी सम्बन्ध में एस्पिनास (Aspinas) ने लिखा है पशुओं के बीच कुछ सामाजिक प्रवृत्ति का उद्भव रूप है, लेकिन यह भी देखा जाता है कि उस कुछ के बीच जोड़े के रूप में परिवार भी होते हैं। उन्हें देखकर यह निश्चित होता है कि परिवार बनाने की प्रवृत्ति का उद्भव होत ही परिवार और कुछ के बीच एक प्रकार का अन्तर्बिरोध था कहा हुआ क्योंकि कुछ बनाने की प्रवृत्ति घोर परिवार बनाने की प्रवृत्ति एक दूसरे की विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं।<sup>१</sup>

हिस पशुओं के रूप के कारण मनुष्य प्रारम्भ से समूह बनाकर रहता था। हम बात को समी दृष्टिहासकार मानते हैं। फिर वह कैसे विश्वास कर लिया था कि मनुष्य का प्रारम्भ से ही परिवारों के रूप में विकास हुआ और उनी प्रकार उसके बीच-सम्बन्ध रहे। इस तरह के प्रयास तो उन्ही लोगों के होते हैं जो अपने पूर्वजों को इस सामाजिक स्थिति में देखकर अज्ञित होत हैं घोर उस स्थिति पर पर्दा डालने के लिये हम तरह की तर्क-वितर्क करने किया करते हैं।

प्राथमिक मनुष्य की चेतना इस प्रकार के मुख्य और पाप की धारणा से नहीं बँधी हुई या जिस प्रकार हमारी बँधी हुई है। उसके विवाह ही दूसरे प्रकार के थे। उस समय भूमि सम्मोह के साथ न तो किसी प्रकार लज्जा का भाव जुड़ा हुआ था और न उस प्रकार के सम्बन्धों को पाप माना जाता था। यौन-सम्बन्धों के साथ पाप-गुण्य की धारणाएँ तो बाद में जुड़ी हैं। बाद में समाज में स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को लेकर मर्यादा और नियम बने हैं। उसी समय से एक प्रकार की विषमता पैदा हो गई है। फ्रायड कहता है कि जिस समय से मनुष्य के यौन सम्बन्धों को किसी सीमाओं के भीतर मर्यादित कर दिया गया और उनके साथ पाप-गुण्य की धारणाएँ लगायी गईं उसी समय से गप्पाक में पायलपन (Neurosis) की बीमारी उत्पन्न हुई है। उससे पहले मनुष्य कभी पापच नहीं हुआ करते थे। फ्रायड के मतानुसार यौन-सम्बन्ध ही मनुष्य की मूलभूत चेतना के आधार हैं।

फ्रायड ने वास्तव में संकेत की ही सबकुछ माना है। इससे यह प्रवरण स्पष्ट होता है कि फ्रायड भी मर्यादा और धार्मिक के युग से पहले एक ऐसे युग की कल्पना करता है जब मनुष्य अपने यौन-सम्बन्धों में पूरी तरह स्वतन्त्र था। मौरगन (Morgan) ने धर्मशास्त्र की प्राचीन धारणियों का अध्ययन करके यह पूरी तरह सिद्ध कर दिया है कि उस समय बहिन और भाई एक ही पुत्र या पुत्री के माता और पिता हो सकते थे। उनके आपस के विवाह को किसी तरह पाप नहीं समझा जाता था। इसी प्रकार अनेक स्त्रियों पर प्राप्त लप्यों के आधार पर यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि उस प्राचीन स्थिति में पिता अपनी ही पुत्री के साथ विवाह करके पुत्र उत्पन्न कर लेता था।

पिता के रूप में पुरुष की पहचान तो बहुत बाद में हुई है। जब भी इस प्रकार की स्वतन्त्रता यौन-सम्बन्धों में थी तो इससे पहले का समय तो और भी अधिक स्वतन्त्रता का रहा होगा। मारतनर्य बंसी देव में वहाँ मर्यादा और धार्मिक की अधिक दुहाई दी जाती है, मनु की कहानी पढ़ते समय हम एक ऐसे मनुष्य के चरित्र में पाते हैं जिसने अपनी पुत्री हन्य के साथ विवाह करके मनुष्य धारि को पैदा किया था। कुछ लोग इसे पौराणिक कल्पना ही मानेंगे लेकिन क्या इस पर विचार नहीं करना चाहिये कि यदि यह स्थिति नहीं रही होती तो क्या पुरातनकार इसकी कल्पना कर पाता ? फिर मर्यादा के भीतर बड़ चेतना के रहते हुए भी इस प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा तो बड़ी कर सकता है जो उस स्थिति में मनुष्य के विवाहों का बुरा ही आधार बूझने की क्षमता रखता हो। भारतीय इतिहास का अध्ययन करते समय हम किन्तु ही प्रभार

के यौन-सम्बन्धों को देखते हैं, यदि सभी को एक ही धारणा के ऊपर रखने की चेष्टा करें तो बड़े-बड़े महर्षियों को धनाधारी और दुष्ट कहना पड़ेगा। सबसे बड़ी बात तो समझने की यह है कि हम अपने आपको एक ही धारणा के साथ बाँधकर इतना बड़ क्यों बना लें। एक सच्चे विचारों की तरह धनेक सम्बन्धों को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अन्तर्गत रखकर क्यों नहीं देखें तब यह पाप पुण्य की संकुचित धारणा भी इस रूप में चेतना को कुठित नहीं करेगी जैसे साधारण धारणा को करती है। धारण्यकता इस बात की है कि हम अपने ज्ञान का विस्तार करें और देखें कि इस सारी पाप-पुण्य की धारणा का प्रभाव क्या है और किंचित प्रकार यह यौन-सम्बन्धों के साथ जुड़ गई।

उस मातृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था और नियमावली के अन्तर्गत मनुष्य केवल अपनी माता या बसन्ती को पहचानता था क्योंकि उसके गर्भ से पैदा होता था लेकिन पिता के बारे में यह निश्चित करना असम्भव था कि प्रमुख व्यक्ति ही प्रमुख सम्मान का पिता है क्योंकि एक स्त्री धनेक पुरुषों के साथ सम्भोग-सम्बन्ध स्थापित करती थी। बैकोफिन (Bachofen) ने अपनी पुस्तक 'माता का अधिकार' (Mother Right) में इसी मत का प्रतिपादन किया है। बैकोफिन मौरगन से पहले उन विद्वानों में थे जिन्होंने पहले पहल उस प्रागैतिहासिक काल के यौन-सम्बन्धों की खोजबीन की थी। उसने उस स्थिति के सम्बन्ध में अपने इन निष्कर्षों की स्थापना की है—

(१) अपने आधिकारिक मनुष्य-समाज में मुख्य सम्भोग्य बलता था। उस समय केवल स्त्री और पुरुष का ही पैर था। पिता माता भाई बहिन के रूप में सम्बन्धों की स्थापना नहीं हुई थी। वह स्त्री पुरुष के बीच बसते हुए का प्रारम्भिक रूप था।

(२) उस स्थिति में केवल माता का ही ज्ञान हो सकता था क्योंकि उसके गर्भ से बालक जन्म लेता था। पिता के सम्बन्ध में कोई नहीं जानता था। वहीं से माता का प्रमुख अधिकार मान्य हो जाता है। पुरुष उस समय पिता के रूप में नहीं जाने जाते थे। सबसे पहले पुरुष को अपनी माता का ही ज्ञान हुआ इसलिए उसने अद्वितीय शक्ति वाली माता के अधिकारों को अपने आपसे ऊपर रखा।

(३) माता के रूप में स्त्री की इस प्रमुखता ने ही चारों तरफ प्राचीन जातियों के बीच मातृ सत्ता की स्थापना की।

मनुष्य समाज में माता की मान्यता का यह एक मुख्य कारण था। यद्यपि स्त्री पारिरीक बल में पुरुष से कमजोर होती है, लेकिन फिर भी पुरुष ने उसको



प्रभुसत्ता थी, इसका यही कारण है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य विचारशील प्राणी है। जब से मनुष्य रूप में उसका विकास इस पृथ्वी पर हुआ है तभी से उसने अपने आपको तथा अपने चारों ओर की प्रकृति को समझने की चेष्टा की है। अग्नि और मृत्तु के सिद्धान्त भी उसने अपनी उस प्राथमिक चेतना के आधार पर बनाये हैं। बादल गरजना, बिजली चमकना बर्षा होना आदि प्रकृति की सारी क्रियाएँ उसे कीतूहल में जानती रही है और उसने उन सबको समझने की चेष्टा की है। सभी के सम्बन्ध में उसकी विभिन्न प्रकार की धारणाएँ हैं। पशु और मनुष्य में यही अन्तर है। इसी विचारशीलता के कारण उसने स्त्री से अधिक शक्तिशाली होने पर भी उसके अधिकार को प्रभुसत्ता थी। यह बहुत दिनों तक यह नहीं समझ पाया कि स्त्री के गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है, उसमें उसका भी कोई भाग होता है। बच्चा पैदा होने के सम्बन्ध में उसकी तो कुछ विभिन्न प्रकार की ही धारणा थी।

मैसिनोमस्की ने सचरी पश्चिमी मैसिमेधिया की प्राथमिक जातियों का अध्ययन किया है। जब उसने वहाँ के लोगों से पूछा कि स्त्री के गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है, उसके बारे में उनका क्या विश्वास है तो उन्होंने बताया कि माता ही अपने रक्त और मांस से बच्चे को पैदा करती है। उस समय वैदिक काल की तरह पुरुष पूरी तरह बागसक होकर यह नहीं कहता था कि हे पुत्र। तेरा शरीर मेरे शरीर में से ही पैदा हुआ है। तेरी धारणा मेरी धारणा में से उत्पन्न हुई है। तेरा रक्त और मांस मेरा रक्त और मांस ही है। उनका विश्वास तो ठीक हमके स्मिटीट का। वे तो माता को ही इस दृष्टि से देखते थे।

हमारे यहाँ तक यही धारणा प्रचलित रही और फिर इसके साथ धार रहना चाहिए कि यह मातृ अधिकार मनुष्य के उस मुक्त सम्भोग के समय से लेकर उस समय तक चला जबकि जोड़ों के रूप में परिवार की स्थापना हो चुकी थी। मैसिनोमस्की ने ट्रौब्रियान्ड जाति के बीच इसी प्रकार के परिवारों को पाया। वहाँ पुरुष और स्त्री पति पत्नी के रूप में रहते हैं लेकिन फिर भी पिता की अपेक्षा माता का अधिकार अधिक है। कुछ विद्वान यह सोचते हैं कि जिस समय एक पुरुष एक स्त्री का पति बन गया और समूह टूट कर परिवारों के रूप में विभक्त हो गया उसी समय से पितृसत्ता का उदय हुआ और मातृसत्ता पूरी तरह समाप्त हो गई लेकिन यह धारणा गलत है। ट्रौब्रियान्ड (Trobriands) जाति के बीच इस प्रकार के पारिवारिक सम्बन्ध होने पर भी मातृसत्ता की ही मान्यता है। मूल रूप में इनका भी यही धारणा है। पहली स्थिति से धन की स्थिति में केवल यह अन्तर भ्रमण हो गया कि स्त्री के गर्भ

५ होते ही एक ऐसे पुरुष को देनता है जो उसकी माता का पति

होता है लेकिन वह उसे पिता कभी नहीं मानता है। यही स्त्री की घड़ी भी प्रमुख सत्ता रहने का मूल कारण है। बच्चा हमेशा उस पुरुष को अपनी माता का पति समझता है। अपनी पिता नहीं और इसका मुख्य कारण यही है कि अभी तक उस समाज के पुरुषों को यह मान्य नहीं है कि उनका भी समाजोत्पत्ति में कुछ भूमिका है। वे तो यही मानते हैं कि जब तक बच्चा स्त्री के पेट में भीतर रहता है तब तक वह उसको अपने घाते से पालती है और जब बाहर निकल आता है तब अपने छीर से निकला दूध पिना कर चामती है, इस तरह वह अपने ही दूध से बच्चा का निर्माण करती है। भाई और बहिन एक ही माँ और एक के बने होते हैं क्योंकि वे एक ही माता के गर्म से जन्म लेते हैं, फिर समाजोत्पत्ति के सम्बन्ध में वे कुछ ऐसी दृष्टियों की भी कल्पना करते हैं और उस पर पूरी तरह विश्वास करने अपने आपको तो केवल स्त्री के नाम सम्मोह करके मान्य प्राप्त करने वाले के पिता और अधिक कुछ भी नहीं समझते।

मैनिंगहस्की ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन बंगाली जातियों का जीवन-जीवन' (The Sexual Life of Savages) में ट्रुविमान के इन्हीं ऐसी विश्वास के बारे में लिखा है। यह ट्रुविमान लोग अभी तक असभ्य माने जाते हैं। छीर के विभिन्न घंटों तथा उनकी प्रक्रिया के बारे में उनके क्या विश्वास थे और फिर ऐसी दृष्टियों से वे अपने जीवन का सम्बन्ध किस प्रकार जोड़ते थे बाद में बनकर यही विश्वास किस तरह पुनर्जन्म के रूप में परिणत हो गया। फिर पहले उस समाज के विश्वास हैं जो अपनी आदिम अवस्था से काफी धीरे धीरे आई हैं, उस प्रारम्भिक काल के मनुष्यों के कई विभिन्न विश्वास रहे होंगे।

छीर-विज्ञान के सम्बन्ध में उन आदिम जातियों की अपनी सूक्ष्म जानकारी नहीं है लेकिन फिर भी मुख्य बातों को वे जानते हैं। भाव तो डॉक्टरों से मनुष्य तथा अन्य जीवों के छीर की पूरी बीड़-झड़ करके प्रत्येक अवस्था के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली है। लेकिन इन जातियों के अपने वे ही पुराने विश्वास हैं।

वे स्त्री और पुरुष के निम्नलिखित घंटों को जानते हैं—योनि, जिसके लिए वे बीला (bila) शब्द का प्रयोग करते हैं, सिङ्ग जिसको वे क्विला (Kwila) कहते हैं, पण्डकोट, जिन्हें वे पुवाला (Puwala) कहते हैं और सिङ्गाकार योनि के अन्दर का भाग जिसे वे कैसेसा (Kasasa) कहते हैं। सिङ्ग के घाते के भाग को वे माताला क्विला (Matala Kwila) कहते हैं और जिस घात की पत्थरी

प्रमुखता थी, इसका यही कारण है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य विचारशील प्राणी है। जब कि मनुष्य रूप में उसका विकसित इस पृथ्वी पर हुआ है तभी से उसने अपने आपको तथा अपने चारों ओर की प्रकृति को समझने की चेष्टा की है। जन्म और मृत्यु के सिद्धान्त भी उसने अपनी उस आदिम चेतना के आधार पर बनाये हैं। बाइबल सरबता जिसको समझना बर्पा होना आदि प्रकृति की सारी क्रियाएँ उसे कीतूहल में आसरी रही है और उसने उन सबको समझने की चेष्टा की है। सभी के सम्बन्ध में उसकी विभिन्न प्रकार की धारणाएँ हैं। पशु और मनुष्य में यही अन्तर है। इसी विचारशीलता के कारण उसने स्त्री कि अधिक शक्तिवाली होने पर भी उसके अधिकार को प्रमुखता दी। यह बहुत दिनों तक यह नहीं समझ पाया कि स्त्री के गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है, उसमें उसका भी कोई भाग होता है। बच्चा पैदा होने के सम्बन्ध में उसकी तो कुछ विभिन्न प्रकार की ही धारणा थी।

मैलिनोवस्की ने सत्तरी पश्चिमी मैलेनेसिया की आदिम जातियों का अध्ययन किया है। जब उसने वहाँ के लोगों से पूछा कि स्त्री के गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है, उसके बारे में उसका क्या विश्वास है तो उन्होंने बताया कि माता ही अपने रक्त और मांस से बच्चे को बढ़ाती है। उस समय वैदिक काल की तरह पुरुष पूरी तरह आपसक होकर यह नहीं कहता था कि हे पुत्र ! तेरा शरीर मेरे शरीर में से ही पैदा हुआ है। तेरी आत्मा मेरी आत्मा में से उत्पन्न हुई है। तेरा रक्त और मांस मेरा रक्त और मांस ही है। उनका विश्वास तो ठीक इसके विपरीत था। वे तो माता की ही इस दृष्टि से देखते थे।

इसारेणें वर्षों तक यही धारणा प्रचलित रही और फिर इसके साथ साथ रहना चाहिए कि यह मातृ अधिकार मनुष्य के उस मुक्त सम्मोह के समय से लेकर उस समय तक बना जबकि लोगों के रूप में परिवार की स्थापना हो चुकी थी। मैलिनोवस्की ने ट्रोब्रियाण्ड जाति के बीच इसी प्रकार के परिवारों को पाया। वहाँ पुरुष और स्त्री पति पत्नी के रूप में रहते हैं लेकिन फिर भी पिता की अपेक्षा माता का अधिकार अधिक है। कुछ विद्वान यह सोचते हैं कि जिस समय एक पुरुष एक स्त्री का पति बन गया और समूह टूट कर परिवारों के रूप में विभक्त हो गया तभी समय से पितृसत्ता का उदय हुआ और मातृसत्ता पूरी तरह समाप्त हो गई लेकिन यह धारणा गलत है। ट्रोब्रियाण्ड (Trobrianda) जाति के बीच इस प्रकार के पारिवारिक सम्बन्ध होने पर भी मातृसत्ता की ही मान्यता है। भूल रूप में इसका भी वही कारण है। वही स्थिति से अब की स्थिति में केवल यह अन्तर अलग हो गया कि स्त्री के गर्भ से वास्तव पैदा होते ही एक ऐसे पुरुष को देवता है जो उसकी माता का पति

होता है लेकिन वह उसे पिता कभी नहीं मानता है। यही स्त्री की प्रती भी प्रमुख सत्ता रहने का मूल कारण है। बच्चा हमेशा उस पुरुष को अपनी माता का प्रति सम्मत्ता है। अपने पिता नहीं और इसका मुख्य कारण यही है कि अभी तक उस समाज के पुरुषों को यह मान्य नहीं है कि उनका भी सम्मानोत्पत्ति में कुछ भाग है। वे तो यही जानते हैं कि जब तक बच्चा स्त्री के पेट में भीतर रहता है, तब तक वह उसको अपने जाने से पालती है और जब बाहर निकल आता है तब अपने स्त्रीर से निकला दूध पिना कर पालती है, इस तरह वह अपने ही दूध से बच्चा का निर्माण करती है। माई और बहिन एक ही चीज और एक के बने होते हैं क्योंकि वे एक ही माता के गर्भ से जन्म लेती हैं, फिर सम्मानोत्पत्ति के सम्बन्ध में वे कुछ बेशी शक्तियों की भी कल्पना करती हैं और उस पर पूरी तरह बिश्वास करके अपने आपको तो केवल स्त्री के नाम सम्मोह करने आनन्द प्राप्त करने वाले के सिवाय और अधिक कुछ भी नहीं समझते।

मैक्समोवस्की ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन बंगाली जातियों का यौन-जीवन (The Sexual Life of Savages) में ट्रोबियाण्ड के इन्हीं बीबी बिश्वास के बारे में लिखा है। यह ट्रोबियाण्ड लोग अभी तक असभ्य माने जाते हैं। स्त्रीर के विभिन्न घनों तथा उनकी प्रक्रिया के बारे में उनके क्या बिश्वास थे और फिर उनकी शक्तियों से वे अपने जीवन का सम्बन्ध किस प्रकार जोड़ते थे बाद में बतकर यही बिश्वास कि उस तरह पुनर्जन्म के रूप में परिणत हो गया। फिर पहले उस समाज के बिश्वास हैं जो अपनी धार्मिक व्यवस्था से काफी घाये बर आई है, उस प्राथमिक काल के मनुष्यों के कई विभिन्न बिश्वास रहे होंगे।

स्त्रीर-विज्ञान के सम्बन्ध में उन धार्मिक जातियों की इतनी सूक्ष्म जानकारी नहीं है लेकिन फिर भी मुख्य धर्मों को वे जानते हैं। धात्र तो डॉक्टरों के मनुष्य तथा अन्य जीवों के स्त्रीर की पूरी चीड़-फाड़ करके प्रत्येक अवयव के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली है लेकिन इन जातियों ने अपने वे ही पुराने बिश्वास हैं।

वे स्त्री और पुरुष के निम्नलिखित धर्मों को जानते हैं—यौनि जिसके लिए वे बीला (wila) शब्द का प्रयोग करते हैं, निङ्ग जिसको वे क्वीला (Kwila) कहते हैं, पण्डकोय जिन्हें वे पुवाला (Puwala) कहते हैं और निङ्गाधर यौनि के अन्दर का भाग जिसे वे कसेसा (Kasasa) कहते हैं। निङ्ग के घाये के भाग को वे मातला क्वीला (Matala Kwila) कहते हैं और जिस काल की पत्थरी

परत से बह डका रहता है, उसे वे कनिक्विना नवीला (Kanivinda Kwila) कहते हैं। स्त्री के अण्डर के अण्डों को वे बाम (Bam) के नाम से पुकारते हैं जिनमें गर्भाशय और नाम सम्मिलित है। अण्डर की बीजियों (Ovaries) के लिए उनके पास कोई शब्द नहीं है।

उनका विश्वास है कि स्त्री और पुरुष की कुछे श्रियाँ केवल दो कामों के लिए हैं। एक तो दोनों की सम्मोच का आनन्द प्रदान करने के लिए और दूसरे मूत्र धारि को शरीर से बाहर निकालने के लिए। मूत्र का सम्बन्ध वे गुर्बों (Kidneys) के साथ नहीं जोड़ते हैं। उनका तो विश्वास है कि पेट से सीधी एक नली मूत्र की बीसी के नीचे उतरती है और वहाँ से जाने वाली मूत्र को श्रियों तक पहुँचाकर बाहर निकालने का काम करती है। तो सोचते हैं कि जो पानी हम पीते हैं वही उस नली के द्वारा बहकर बाहर निकल जाता है। यह चला पार करने में ही उस पानी का रंग बदल जाता है।

कामोत्त बना पैदा होने के सम्बन्ध में उनका विश्वास बहुत कुछ प्राकृतिक मनोवैज्ञानिक विश्वास से मिलता जुलता है। वे प्राँियों को कामोत्त बाहर करने का स्वाम मानते हैं। काम-वासना इन्हीं प्राँियों से ही प्रारम्भ होती है। पहले हम किसी सुन्दर स्त्री को देखकर उसके साथ सहवास करने की इच्छा करते हैं। हमारी यह इच्छा 'मोटूना' (motuna) एक प्रकार की छिप छिप भस्तिष्क में पहुँचती है और फिर वहाँ से यह सारे शरीर में फैल जाती है। हाथ पाँव धारि सभी पर इसका असर पड़ा जाता है। अन्त में यह कुर्बों में केन्द्रीभूत हो जाती है। इन कुर्बों को कुछ गर्में लिङ्ग से मिलाती हैं। जब यह काम-वासना लिङ्ग तक पहुँच जाती है तो उसको उत्त बना मिलती है। इस तरह प्राँियों से लेकर लिङ्ग तक यह कामोत्त बना कुछ ही धारों में अपना प्रसार कर लेती है। इस दृष्टि से वे प्राक्लिम लोग प्राँियों को ही कामवासना पैदा करने का प्रमुख स्वाम मानते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि यदि कोई प्राक्लिम प्राँि बन्द करके बड़ा हो जाये तो उसके भीतर किसी प्रकार की कामोत्त बना पैदा नहीं हो सकती। लेकिन इस विश्वास का वे यह कहकर अर्थ भी कर बैठे हैं कि अँिरे में जब प्राँि अपना काम नहीं कर पाती तब भी कभी कभी कामोत्त पैदा हो जाती है। श्रियाँ जब अँिरे में अपने पास के पेटिकोट (Petticoat) उतरती हैं तो उनके अण्डर सहवास की इच्छा सहसा ही जाग उठती है। इस तरह प्राँियों के असाध वे भस्तिष्क की उस चेतना की भी अभिप्राय कर बैठे हैं जो प्राँियों की अपेक्षा न करती हुई पूर्वानुभवों की याद पर निर्भर रहकर अँिरे में भी सबकुछ बेचती रहती है।

इसे देखने पर यही प्रतीत होता है कि प्रादिम जाति के लोग प्रायः पुरे और मुहूर्त्तियों को एक ही नाम से सम्बन्धित समझते हैं। प्राँवों से कामवाचना प्राप्त होती है, नमी के द्वारा वह मस्तिष्क में पहुँचती है फिर नुरों में जाकर केन्द्रीभूत होती है और वहाँ से उसी नमी द्वारा इन्द्रियों तक पहुँचती है। इन्द्रियों को उससे उत्पन्न बना मिलती है और तब स्वप्न प्रारम्भ होता है। स्त्री और पुरुष के स्वप्न रज और वीर्य को वे मोमोला (Moola) के नाम से पुकारते हैं। वीर्य का स्थान वे नुरों को ही मानते हैं। पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज के साथ वे किसी प्रकार का प्रजनन-क्रिया का सम्बन्ध नहीं बाँधते। उनका तो सीधा-सादा यही विश्वास है कि इस स्वप्न से प्राण मिमता है, बस इसके सिवा इसका कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रादिमवासी इन सारे धर्मों को मिलाकर इनके सामूहिक रूप की तुलना पेड़ से करते हैं। जिस प्रकार पेड़ की जड़ तना और चोटी का हिस्सा होता है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में इन्द्रियाँ, नुरे और चोटी-स्वप्न भाँगे होती हैं।

प्रादिमवासी नुरों को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं, क्योंकि उन्हें ही वे शरीर की सारी शक्ति का केन्द्र मानते हैं। उन्हीं के भीतर वे वीर्य की स्थिति मानते हैं। धर्मकोशों के सम्बन्ध में तो वे कमल इतना ही जानते हैं कि प्रकृति ने उन्हें तो इसमिए शरीर में स्थित किया है, जिससे इनके साथ मिलकर तिस का आकार सुन्दर और सुडील मान्य हो। जब उनसे यह कहा गया कि वीर्य इन्हीं धर्मकोशों के भीतर स्थित रहता है तो वे सिर हिलाते हुए कहने लगे कि यह कभी नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री के धर्मकोश न होने पर भी उसकी मोति से स्वप्न होता है, इससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि वीर्य धर्मकोशों में स्थित न रहकर नुरों के धर्मर स्थित रहता है। प्रादिमवासी वीर्य और रज में कोई विशेष धर्मर नहीं समझते हैं।

स्नेह और प्रेम को वे प्राँवों में स्थित मानते हैं। पेड़ की लकड़ा और शाखा के साथ प्रेम की भावना का सम्बन्ध जोड़ना उनकी उत्पन्न धनुर्भूति के ऊपर ही निर्भर है। इन सम्बन्ध में प्राँवों को वे पीछे गिनते हैं। वे कहते हैं कि हम उन्हीं लोनों की ओर देखने की इच्छा करते हैं, जिनसे हम चाहते हैं—जैसे मित्र माता-पिता बन्धु आदि और जब हमारी प्रेम और स्नेह का भावना तीव्र हो जाती है तब हम उनको बाँहों में बाँधकर पेट से चिपकाने का प्रयत्न करते हैं। इनके विश्वास का यही आधार है।

प्रादिम-धर्म के साथ स्त्री की मोति से बहते हुए रज का सम्बन्ध वे प्रजनन के माध्यम मानते हैं, लेकिन कुछ सदेहास्तर रूप में ही

परत से यह बका रहता है, उसे वे कैनिकिनेसा कबीसा (Kanivineela Kwila) कहते हैं। स्त्री के अण्डर के अण्डों को वे बाग (Bam) के नाम से पुकारते हैं जिसमें गर्भाशय और गान सम्मिलित हैं। अण्डर की बैबियों (Ovaries) के लिए उनके पास कोई शब्द नहीं है।

उनका विश्वास है कि स्त्री और पुरुष की बुद्धिजिवाँ केवल दो कार्यों के लिए हैं। एक तो बेटों को सम्मोय का आनन्द प्रदान करने के लिए और दूसरे मूत्र आदि को शरीर से बाहर निकालने के लिए। मूत्र का सम्बन्ध वे मुर्खों (Kidneys) के साथ नहीं जोड़ते हैं। उनका तो विश्वास है कि पेट से सीधी एक नली मूत्र की बोखी के भीतर उतरती है और वहाँ से घासे गयी मूत्र को इन्धियों तक पहुँचाकर बाहर निकालने का काम करती है। तो सोचते हैं कि जो पानी हम पीते हैं वही उस नली के द्वारा बहकर बाहर निकल जाता है। यह रास्ता पार करने में ही उस पानी का रंग बदल जाता है।

कामोत्त बना पैदा होने के सम्बन्ध में उनका विश्वास बहुत कुछ प्राकृतिक मनोवैज्ञानिक विश्वास से मिलता जुलता है। वे धाँसों को कामेच्छा बाहुल्य करने का स्थान मानते हैं। काम-वासना इन्हीं धाँसों से ही प्रारम्भ होती है। पहले हम किसी सुन्दर स्त्री को देखकर उसके साथ सहवास करने की इच्छा करते हैं। हमारी यह इच्छा 'बोदूना' (wotuna) एक प्रकार की छिप छिप मस्तिष्क में पहुँचती है और फिर वहाँ से यह धारे शरीर में फँस जाती है। हाथ पाँव आदि सभी पर इसका असर पड़ जाता है। अन्त में यह पुरों में केन्द्रीभूत हो जाती है। इन पुरों को कुछ नामें सिक्क से मिलाती हैं। जब यह काम-वासना सिक्क तक पहुँच जाती है तो उसको उत्त बना मिलती है। इस तरह धाँसों से लेकर सिक्क तक यह कामोत्त बना कुछ ही बसों में अपना प्रचार कर लेती है। इस दृष्टि से वे आदिम लोग धाँसों को ही कामवासना पैदा करने का प्रमुख स्थान मानते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि यदि कोई धाँसी धाँसे बन्ध करके बड़ा ही बाये तो उसके भीतर किसी प्रकार की कामोत्त बना पैदा नहीं हो सकती। लेकिन इस विश्वास का वे यह कहकर खण्डन भी कर देते हैं कि धँबेरे में जब धाँसे अपना काम नहीं कर पातीं तब भी कभी कभी कामोत्त बना बाहुल्य हो जाती है। रिबर्न जब धँबेरे में अपने बाय के पटीकोट (Petticoat) उतारती है तो उनके अण्डर सहवास की इच्छा सहसा ही बाय उठती है। इस तरह धाँसों के धमाका वे मस्तिष्क की उस बेतना की भी नदस्नता कर लेते हैं जो धाँसों की अपेक्षा न करती हुई पूर्वजिन्मों की बाध पर निर्भर रहकर धँबेरे में भी सबकुल देखती रहती है।

इसे देखने पर यही प्रतीत होता है कि प्रादिम जाति के लोग प्रायः गुर्वे और मुह्य इन्द्रियों को एक ही नाम से सम्बन्धित समझते हैं। प्राँवों से कामवासना जाग्रत होती है ममी के द्वारा वह मस्तिष्क में पहुँचती है फिर मुहों में जाकर केन्द्रीभूत होती है और वहाँ से उसी ममी द्वारा इन्द्रियों तक पहुँचती है। इन्द्रियों को उससे उत्तजना मिलती है और तब स्वप्न प्रारम्भ होता है। स्त्री और पुरुष के स्वप्न एक ही चीज की ओर मोमोला (Mama) के नाम से पुकारते हैं। कीर्त्य का स्थान वे मुहों को ही मानते हैं। पुरुष के कीर्त्य और स्त्री के रज के साथ वे किसी प्रकार का प्रथम-किया का सम्बन्ध नहीं जाँचते। उनका तो सीधा-साधा यही विश्वास है कि इस स्वप्न से आनन्द मिलता है, बस इसके सिवा इसका कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रादिमवासी इन चारों चीजों को मिलाकर इनके सामूहिक रूप की तुलना पेड़ से करते हैं। जिस प्रकार पेड़ की जड़ ठना और चोटी का हिस्सा होता है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में इन्द्रियाँ, गुर्वे और चोटी-स्वप्न प्राँवें होती हैं।

प्रादिमवासी मुहों को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं, क्योंकि उन्हें ही वे शरीर की चारी शक्ति का केन्द्र मानते हैं। उन्हीं के भीतर वे कीर्त्य की स्थिति मानते हैं। अश्वकोष्ठों के सम्बन्ध में तो वे केवल इतना ही जानते हैं कि प्रकृति ने इन्हें तो इनलिए शरीर में स्थित किया है, जिससे इनके साथ मिलकर निष का आकार मुह्य और मुहोम मासूम हो। जब उनसे यह कहा गया कि कीर्त्य इन्हीं अश्वकोष्ठों के भीतर स्थित रहता है तो वे घिर हिसाते हुए कहने लगे कि यह कभी नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री के अश्वकोष्ठ न होने पर भी उसकी योनि से स्वप्न होता है, इससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि कीर्त्य अश्वकोष्ठों में स्थित न रहकर मुहों के अन्दर स्थित रहता है। प्रादिमवासी कीर्त्य और रज में कोई विशेष भेद नहीं समझते हैं।

स्नेह और प्रेम को वे प्राँवों में स्थित मानते हैं। पेड़ की लकड़ा और हाथों के साथ प्रेम की भावना का सम्बन्ध जोड़ना उनकी उत्कृष्ट अनुभूति के रूप में ही निर्भर है। इस सम्बन्ध में प्राँवों को वे पीछे पिनते हैं। वे कहते हैं कि हम उन्हीं प्राँवों की ओर देखने को इच्छा करते हैं, जिसको हम चाहते हैं—जैसे मित्र माता-पिता बन्धु प्रादि, और जब हमारी प्रेम और स्नेह की भावना तीव्र हो जाती है तब हम उनको बाँहों में बाँदकर पेट से चिपकाने का प्रयत्न करते हैं। उनके विश्वास का यही आधार है।

माँझ-धर्म के साथ स्त्री की योनि में बहते हुए रज का सम्बन्ध वे प्रजनन के साथ समाने ता हैं, लेकिन कुछ अन्यैवाचर्य रूप में ही



पाते हैं। निश्चित रूप से वे नहीं जानते कि जब यह बहुत-बहुत बन्द हो जाता [ और फिर प्रतिमास नहीं बहुतों की स्त्री को गर्भवती मानना चाहिए। फिर भी कुछ प्रादिमवासियों की तरह ट्रीबियाय्ब इस रस्त को इतना नहीं मानते कि स्त्री को प्रकट गर्भवती में आकर रहने के लिए बाध्य करें। कुछ प्रादिमवासी इस समय स्त्री को बहुत दूर रखते हैं लेकिन वे जोब उसके पास ही एक टोपकी में रखते हैं। वे इस समय स्त्री के साथ सम्मोग नहीं करते।

प्रादिमवासी शरीर के विभिन्न अंगों के बारे में इतना जानते हुए भी इतना कम जानते हैं। उनके बीच शरीर विज्ञान की वह जानकारी नहीं है जो आज हमारे बीच है, फिर इसमें सबसे विशेष बात यह है कि वे बीर्य और रक्त आदि सब के बारे में जानते हुए यह नहीं जानते कि इनके मिलने से स्त्री गर्भ होती होती है। जैसे प्राच्य के डाक्टर जानते हैं कि 'स्वर्ग और धोबन' के मिलने पर गर्भ स्थित होता है, उस तरह वह वे प्रादिमवासी इतना भी जान जाते हैं बच्चे पैदा करने में पुरुष का भी कुछ हाथ है तो सामान्य मातृसत्ता इतने लोगों तक कभी स्थित नहीं रह पाती, क्योंकि जिस प्राथमिक स्थिति पर स्त्री का अधिकार टिका हुआ था, वह कभी की इन ट्रीबियाय्ब लोगों के बीच खत्म हो गयी है, अब तो परम्परा के रूप में माता का अधिकार बच रहा है। उसका अधिकार के नियम भी माता को ही प्रमुखता देकर बनाये गये हैं। मातृसत्तात्मक मानव किन्तु प्राथमिक परिस्थितियों के बीच पैदा हुआ था और प्राये विकासक्रम इस तरह बना जिसने पितृसत्ता को जन्म दिया, इसके सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

पुरुष और स्त्री के इन्द्र को प्राथमिक परिस्थितियों ने बहुत प्रभावित किया। इनको पूरी तरह समझे बिना इस इन्द्र के विकास का अध्ययन सम्भव है।

प्रादिमवासी जन्म के सम्बन्ध में किस प्रकार की आस्थाएँ रखते थे और इस तरह वे प्रत्येक बात में जिसको वे पूरी तरह समझ नहीं पाते वे बीबी स्थितियों का सम्बन्ध जोड़ते थे।

मैलेनेसिया के प्रादिमवासी जन्म का सम्बन्ध मृत्यु से जोड़ते हैं। वे ध्यात्मा समान ही एक तत्व में विश्वास करते हैं जो मृत्यु के साथ ही मनुष्य के शरीर निकल जाता है। यह तत्व ही फिर शरीर आरंभ करके मनुष्य-जन्म में इस ज़मीन पर जन्म लेता है।

जब मनुष्यमर जाता है तो यह ध्यात्मा *Tuma* (Tuma) नामक स्वर्ग

पर जाती है। उस स्थान पर मरने के पश्चात् सभी मनुष्यों को धारमाए पहुँचती है। वहाँ यह धारमा धारमिक धान्दपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। यह धान्द पृथ्वी पर प्राप्त धान्द से कई गुना अधिक होता है। धारमा को धारिम बासी बैलोमा (Baloma) कहते हैं। ज्योंही यह बैलोमा यह देखता है कि उसके शरीर पर बाल पक रहे हैं, झुरियाँ पड़ने लगी हैं, उसी समय यह अपना यह बीर्य सत्तार कर नवा क्य बारण कर लेता है। फिर यह चिकना बिना क्य नामा शरीर प्राप्त कर लेता है। उसके बाल काले हो जाते हैं। इस तरह धान्दपूर्ण जीवन बिताकर जब फिर यह अपनी बीर्यवस्था में आता है तो फिर उसी प्रकार परिवर्तन कर जाता है। इस तरह बैलोमा त्यूमा (Baloma Tuma) नामक लोक में सदा अपने सुख और स्वस्थ रूप में रहता है। बुढ़ावस्था की बास्तु व्यथा उसको कभी नहीं सताती। जीवन जीवन के कुमार की तरह बीतता जाता है। पृथ्वी पर इस प्रकार धान्दपूर्ण जीवन सम्भव नहीं होता क्योंकि वहाँ तो बीर्यवस्था बीत जाने पर बुढ़ावस्था के दुःख आकर मन को व्यथित करते हैं, लेकिन त्यूमा में चित्त सदैव प्रसन्न रहता है।

फिर जब बैलोमा इस तरह जीवन परिवर्तन करता हुआ बहुत दिनों तक त्यूमा में रह जाता है तो उससे ऊँचकर पृथ्वी पर जाने की इच्छा करता है। तब वह विष्णु के रूप में स्त्री के गर्भ से पैदा होता है।

धारिमबासी पृथ्वी लोक के समान ही त्यूमा को एक वृक्ष लोक समझते हैं। वहाँ जीवन की गतिविधि प्रायः पृथ्वी के समान ही चलती है, लेकिन एक विशेष अन्तर होता है। धारिमबासी त्यूमा में सदा बीर्यवस्था और धान्द की कल्पना करते हैं। वहाँ किसी प्रकार का दुःख होता ही नहीं। हिन्दुओं के बीच स्वर्ग भी कल्पना ठीक ऐसी ही होती है। स्वर्ग में मनुष्य सदा सुख रह कर जीवन का धान्द भोगता है। वहाँ रोग और दुःख नहीं हैं। उसी तरह की कल्पना धारिमबासियों की है। इस धान्दपूर्ण जीवन को काटते हुए बैलोमा ऊँच जाता है तब वह पृथ्वी के इस संवर्षपूर्ण जीवन को प्राप्त करने की कामना करता है। हमारे स्वयं य देवताओं का बात रहता है। वे कभी उससे ऊँच कर पृथ्वी पर जाने की कामना नहीं करते; बल्कि कर्मनाम हैं। मुक्त होकर ही तो प्राणी स्वर्ग प्राप्त करता है। इस तरह के उदाहरण भारतीय ग्रन्थों में अनेक मिलते हैं, जब किन्हीं महापुरुषों का स्वर्ग से पतन हुआ है और उन्हें आकर फिर पृथ्वी पर अपना जीवन प्रारम्भ करना पड़ा है। राजा ययाति को स्वर्ग से देवताओं ने विदा दिया था। इसी प्रकार ययाति के पिता नहुष का भी पतन हुआ था, लेकिन इस पतन के घम्य कारण थे। महाभारत के कारण इनके

मुष्म नष्ट हो पड़े थे। इसलिए इनका पतन हुआ। स्वर्ग के पुनः से उन्नत कर पृथ्वी पर जन्म लेने की इच्छा करने वाले किसी महापुरुष की कथा भारतीय ग्रन्थों में नहीं मिलती। इसलिये प्राक्प्रवासियों के व्यूमा और हिन्दुओं के स्वर्ग का भेद स्पष्ट समझ लेना चाहिये। फिर इसके साथ प्राक्प्रवासियों का यह विश्वास भी विचारणीय है कि व्यूमा में जादूगर भी रहते हैं। वे ही कामा जादू करके बेलोमा को कभी कभी कमजोर कर देते हैं, या बीमार बाध देते हैं, इससे उन्नत कर बेलोमा पृथ्वी पर आने की इच्छा करता है। जादूगर इस बेलोमा को किसी भी जादू करके मार नहीं सकता। उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। वह तो स्थान बदलता है। व्यूमा से उठकर सृष्टि के रूप में वह पृथ्वी पर स्थित हो जाता है। व्यूमा में स्थित यही प्रात्मार्य (Belomas) पृथ्वी पर उतरती रहती है और इस तरह सृष्टि का काम करता है। जन्म और मृत्यु की समस्या को द्वैविध्यात् इसी तरह हल करते हैं। वे सोचते हैं कि मनुष्य की प्रात्मा कुछ समय के लिये व्यूमा में बनी जाती है लेकिन फिर नीटकर उसे वहीं आना होता है। वह जाकर स्त्री के गर्भ में स्थित हो जाती है और फिर वही जन्म लेती है।

व्यूमा से चलकर स्त्री के गर्भ में जाकर बेलोमा किस तरह स्थित हो जाता है इसके बारे में असंग-अलग-अलग विश्वास प्रचलित हैं लेकिन इस पर सभी समान रूप से विश्वास करते हैं कि प्रत्येक बालक जो इस पृथ्वी पर जन्म लेता है, पहले व्यूमा में अपना जीवन व्यतीत कर लेता है और फिर सृष्टि रूप में जाकर मिलता है। इस तरह प्राक्प्रवासी इस सृष्टि से पहले व्यूमा की कल्पना करते हैं। वहाँ पृथ्वी पर खरिद जा रहा करने से पहले प्रात्मार्य रहती है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में इन प्राक्प्रवासियों की विभिन्न धारणाएँ हैं, उनके बारे में भी हम लिखेंगे। इससे पहले बेलोमा की स्त्री के गर्भ तक की यात्रा पर विचार करना चाहिये।

(१) ओमराकाना (Omarakana) में जाकर मेलनीबस्की ने वहाँ के प्राक्प्रवासियों से पूछा तो उन्होंने बताया कि बेलोमा जब भी अपनी पूर्व स्थिति छोड़कर नवीन स्थिति धारण करता है तो वह नमकीन पानी के एक कूप के किनारे जाता है और उसमें स्नान करके फिर जीवनावस्था प्राप्त कर लेता है।

टोमवाया लेकवेबुलो (Tomwaya Lakwabulo) नाम के एक जादूगर ने जो अपनी धर्मदृष्टि से द्यूमा को भी देखता था, बताया कि बेलोमा एक झरने पर जाता है, जिसे सोपिबिना (Sopiwinna) नाम से पुकारते हैं और

वहाँ बैठकर वह अपने शरीर को नमकीन पानी से जोता है और उससे उसके शरीर की स्थिति बदल जाती है। वृद्धावस्था के बहने फिर वह पीबनावस्था प्राप्त कर लेता है। इस तरह सभी बैसोमा स्वस्थ और सुख हो जाते हैं। मृत्यु में जब इस पृथ्वी पर शिशु रूप में जन्म लेने की उनकी इच्छा होती है तो फिर उन्हें उसी नमकीन पानी में स्नान करना पड़ता है। स्नान करने के पश्चात् वे समुद्र की गहरों के साथ बहने लगते हैं और पृथ्वी की ओर उनकी यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

उनके बारे में आदिमवासियों का विश्वास है कि वा तो वे बहते नद्यों पर बैठकर जाते हैं या कालियों पत्तियों या समुद्र के लीप-बौबों आदि के रूप में बैठकर जाते हैं। जब वे द्यूया के किनारे जाकर पानी पर बहने लगते हैं तो वा वा, वा करके रोते हैं। ठीक छिपुओं की तरह उनके रोने की आवाज सुनाई देती है। साधारणतया उनकी इस आवाज को कोई सुन नहीं पाता है क्योंकि द्यूया से पृथ्वी की तरफ जाने के बीच की स्थिति को कोई भी आदिम नहीं देख पाता लेकिन मामाहों के दूर समुद्र में जाकर वह आवाज सुनी है। इनके इस तरह बहने पर ही आदिमवासियों की यह विश्वास दृढ़ हो गया है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि वे आत्माएँ अपने आप द्यूया से बहती हुई इस पृथ्वी तक नहीं जाती बल्कि एक दूसरी शक्ति इनको लाती है। वे इस प्रकार इसका वर्णन करते हैं—

बच्चा एक बहुत दूर नद्वर बैठकर बसता है। दूसरी आत्मा (spirit) जो उस शरीर के जिसके बर्ष से बच्चा पैदा होने वाला होता है) जाता या पिता की आत्मा होती है, उस बच्चे को ले लेती है। वह साकर उसे उस स्त्री के सिर पर रख देती है। ज्योंही वह बच्चा उसके सिर पर जाता है, उस स्त्री के सिर में दर्द होने लगता है। उसका भी भवमाने लगता है और सिर पेट में भी उसके दर्द शुरू हो जाता है। सिर पर से बच्चा पेट में उतर जाता है और तब वह निश्चित रूप से गर्भवती हो जाती है।

वह कहती है धन बच्चा मेरे पेट में जा गया है। जब आत्माओं के साकर उस बच्चे को मेरे पेट में रख दिया है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि स्त्री के माता-पिता की आत्माएँ बच्चे को वा तो किनो मकड़ी की प्याली में रखकर लाती हैं, या गरियन की टोकरी में रखकर वे उसे उस स्त्री के सिर तक लाती हैं। कुछ भी हो, इनका समो

मानते हैं कि बच्चे के जन्म का कारण स्त्री और पुरुष का सहवास नहीं है बल्कि जब बीसोमा (Baloma) ज्यूमा से लेकर बच्चे को माता के सिर पर लाता है और वह बच्चा उसके पेट में सतर जाता है वही उस बच्चे का जन्म होता है। ज्यूमा से बच्चे को लाने वाली यह आत्मा मुख्य होती है। कभी-कभी स्वप्न में स्त्री को यह पहले ही दिखाई दे जाती है।

एक आदिमवासी ने ओसिनोवस्की को बताया था कि स्त्री कहती है मैं स्वप्न में अपनी माता को देखती हूँ। उसका चेहरा मुझे दिखाई देता है।

उस समय वह स्त्री जागकर प्रसन्न होते हुए कहती है—आह! मेरी माता मेरे लिये बच्चा ला रही है।

इस तरह आदिमवासियों में यह विश्वास रूढ़ होकर बैठ गया है कि माता या पिता की आत्मा बच्चे को ज्यूमा से लेकर जाती है और स्त्री को देती है। तब वह गर्भवती होती है और उसे मायूम होता है कि उसके पेट में बच्चा या बच्चा है। स्वप्न देखकर स्त्रियाँ कभी कभी यह भी बता देती हैं कि किसकी आत्मा बच्चे को लेकर आई है।

ओमरकाना (Omarakana) के सरदार ने बताया था कि उससे पहले सरदार की आत्मा ही उसे ज्यूमा से पृथ्वी पर लाई थी। ओसिनोवस्की ने काफी लोगों से इस सम्बन्ध में पूछा था तो अधिकतर उसने माता या माता के सम्बन्धियों की आत्माओं को ही बच्चों को लाने वाला पाया।

आदिमवासियों का वही विश्वास है। स्त्री के माता या पिता के किसी सम्बन्धी की आत्मा बच्चे की आत्मा को लाकर उसके सिर पर रखती है तो उस स्त्री के शरीर में एक साफ जून बीजना छूट हो जाता है और वह सिर में धाकर इकट्ठा हो जाता है, फिर वहाँ से बच्चे की आत्मा को लेकर वह नीचे उतरता है और पेट में लाकर उस बच्चे को स्थित कर देता है। पेट का जून ही फिर उस बच्चे का पोषण करता है, यही कारण है कि जब स्त्री गर्भवती हो जाती है तो माहवारी के रूप में उसकी योनि से बहने वाला रक्त बन्ध हो जाता है और वह पेट में इकट्ठा होकर बच्चे के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। स्त्री माहवारी रुकने पर निश्चित रूप से यह जान जाती है कि उसके गर्भ में बच्चा या बच्चा है।

इस विश्वास के साथ ही आदिम-वासियों का एक दूसरा विश्वास धीरे धीरे। कुछ लोग मानते हैं कि बच्चे की आत्मा को कोई दूसरी आत्मा लेकर नहीं जाती बल्कि वह तो अपने आप ही समुद्र की लहरों से साफ बहती हुई पृथ्वी की ओर आ जाती है। बहती हुई धारा में आकर वह किनारे पर रुक जाती

है। उस स्नान पर घीर भी धारमार्ये भाकर हफ्दूटी हो जाती हैं। जब स्त्रियाँ वहीं नहाने में लिये जाती हैं तो वे धारमार्ये उनके अन्दर ब्रुस जाती हैं और तभी से स्त्रियाँ गर्भवती हो जाती हैं। उनका विश्वास है कि दूधमा के चारों ओर बच्चों की धारमार्ये पत्तियों व डामों घीर लट्ठे धादि पर बठी रहती हैं इसलिए जब या तो लेब हुआ के कारण या ग्बार के कारण कासी पत्तियाँ डाल लट्ठे धादि किनारे पर हफ्दूटे हो जाते हैं तो सड़कियाँ इस डर से पानी के अन्दर नहीं ब्रुसती कि कहीं बच्चों की धारमार्ये उनके अन्दर प्रवेश करके उनकी गर्भवती न बना दें। द्रौहिण्यग्न के बीच कर्वाटी लड़की का गर्भवती बन जाना अच्छा नहीं समझा जाता।

कुछ गाँवों में ता सोम किनारे से बड़े में पानी भर लात हैं और उस बड़े को लाकर उस की के घर में रख देते हैं जो गर्भवती होना चाहती है। यह विश्वास किया जाता है कि यदि बड़ा उसके घर पर रख रखा रहा तो बच्चे की धारमा उससे निकलकर स्नान के समय उस स्त्री के गर्भ में बनी जायेगी और इस तरह की गर्भवती हो जायेगी। फिर भी स्वप्न में किसी सम्बन्धी की धारमा के दिक्ने का विश्वास प्रचलित है। इसलिए बच्चे की धारमा के साथ उस ब्रुसरी संरक्षक धारमा को किसी न किसी रूप में सभी मानत हैं।

इस सम्बन्ध में भी एक ऐसा नियम है जो मातृसत्तात्मक समाज के अन्तर्गत ही पाया जा सकता है। किनारे से जो धारमी बड़े में भर कर पानी लाता है वह या तो उस को का भाई या उसकी माता का भाई होना चाहिए।

बच्चे के जन्म के सम्बन्ध में धादिमवासियों के इस विश्वास में पिता को किसी प्रकार की महत्ता नहीं दी गई है। बच्चे का सम्बन्ध माता से ही है। उड़ी के गर्भ में भाकर वह पलता है और फिर उसके बाहर आने पर भी वही उसको अपना दूध पिलाकर उसका पालन-पोषण करती है। इसलिए धादिम बासी पिता को तो केवल स्त्री के साथ सहवास करके धान्य प्राप्त करने वाले सिवा अधिक कुछ नहीं समझते। बच्चा भी पिता को अपनी माता का पति ही समझता है। पिता के लिए वे सोम तमा (Tama) द्रव्य का प्रयोग करते हैं। सन्तानोत्पत्ति में पिता का क्या भाग है, इसको न जानने के कारण ही वे माता की सत्ता को प्रमुख मानते हैं। उत्तराधिकार भी माता के सम्बन्धियों को ही प्राप्त होता है। जितने भी नियम बनाये जाते हैं वे सभी स्त्री को पहला महत्त्व देकर बनाये जाते हैं। यद्यपि धादिम रूप से पुरुष स्वामी है लेकिन परम्परा से स्त्री के ही अधिकार धादिम हैं। पुरुष उसके अधिकार की सीमाओं को नहीं भाँप सकता।

धार्मिकवासियों के विश्वासों को ब्राम्हण धारण्य हो सकता है लेकिन इसमें सबसे अधिक धारण्य की बात तो यह है कि धार्मिकवासी यह जानता हुआ भी कि पुरुष और स्त्री के सहवास के बिना स्त्री गर्भवती नहीं हो सकती, यह नहीं समझता कि स्त्री को गर्भवती बनाने में पुरुष का बीज महत्वपूर्ण कार्य करता है।

यह वह विश्वास करता है कि कंबोरी कन्या गर्भवती नहीं हो सकती लेकिन इसका कारण वह बताता है कि स्त्री तभी गर्भवती होती है जब उसके योनिमार्ग को पुरुष उसके साथ सम्मोग करके जोड़ दे। जब योनि-मार्ग जुन जाता है तभी संरक्षक धारण्यें द्रुमा से बच्चों की धारण्यों को लाकर स्त्री के गर्भ में स्थापित करती है। योनिमार्ग जुन जाने पर उनको विश्वास हो जाता है कि जब बच्चों के लिए पेठ से बाहर निकलने का मास जुन पया। कंबोरी कन्या का योनिमार्ग जुना हुआ नहीं रहता इसलिए संरक्षक धारण्यें कभी भी उसके गर्भ में लाकर बच्चों की धारणा को नहीं रखती। यही कारण है कि कंबोरी कन्याएँ कभी गर्भवती नहीं होतीं। 'हाँ, यदि विवाह से पहले ही वे किसी पुरुष के साथ सहवास कर लें तो उनका योनिमार्ग जुन जाने पर संरक्षक धारण्यें बच्चों की धारण्यों को लाकर उनके गर्भ के भीतर रख सकती हैं और उस स्थिति में कंबोरी कन्या भी गर्भवती हो जाती है।

स्त्री और पुरुष के सहवास को सन्तानोत्पत्ति के लिए प्राथमिक सम्मेलन हुए भी धार्मिकवासी पिता की महत्ता को नहीं समझते और बच्चे के जन्म का सम्बन्ध द्रुमा और स्त्री के गर्भ तक ही सीमित रहता है। धार्मिकवासियों के बीच प्रचलित इन विश्वासों के आधार पर मातृसत्ता का प्रमुख आधार पता चलता है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिकवासियों के बीच प्रचलित विश्वास भी इसी हैं।

कुछ तो मानते हैं कि पृथ्वी के गर्भ से मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। सबसे पहले एक जोड़ा स्त्री और पुरुष का निष्पत्ता। उसी से बाद में सृष्टि का क्रम चला।

कुछ स्त्री की उत्पत्ति पहले मानते हैं। मधिनोबस्की ने ट्रीडियाण्ड लोगों से पूछा था कि उनके हम विश्वास का क्या आधार है कि पहले पुरुष स्त्रियाँ ही इस पृथ्वी पर पैदा हुईं। हम पर धार्मिकवासियों ने कहा—क्या तुम नहीं देखते कि हम कितने पुरुष इस पृथ्वी पर हैं। इसका यही कारण है कि स्त्रियाँ इस पृथ्वी पर पहले पैदा हुईं। यदि पुरुष पहले पैदा होते तो स्त्री न होने के कारण बाद में उनकी संख्या कम हो जाती।

आदिमवासियों का यह भी विश्वास है कि सृष्टि का प्रारम्भ में पैदा होने वाली स्त्री पुरुष के बिना ही गर्भवती हो गई थी। वैकुटा (Vakuta) द्वीप में उस स्त्री के बारे में कथा प्रचलित है कि उसने अपना योनि को बरसात की बूँदों की धोर कर दिया था। इससे उसका योनिमार्ग खुल गया और फिर संरक्षक आत्मा ने दसूमा से लाकर उसके गर्भ में बच्चा रक्त दिया। इस प्रकार सृष्टि का काम चल निकला।

द्रोविमार्ग लोगों के बीच इस तरह की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जो यही बताती हैं कि सृष्टि का प्रारम्भ स्त्री से हुआ। उस स्त्री के साथ पुरुष की सम्बन्ध करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि उस समय बरसात की बूँदों से या धोर किसी उपाय से अपना योनिमार्ग खोलने पर वह स्त्री गर्भवती हो गई थी।

इस तरह की कथाएँ पुरुष को सन्तानोत्पत्ति के लिए किसी तरह आवश्यक नहीं बताती। बाह में भी स्त्री के साथ उसके सहवास का केवल यही प्रयोजन था कि वह स्त्री के योनिमार्ग को खोल दे, जिससे बेलोमा को गर्भ से बाहर निकलने का मार्ग मिल जाय।

मातृसत्तात्मक समाज में जो भी पिता का स्थान रहा, उसे आदिमवासियों के बीच प्रचलित इन विवरणों को जानकर समझा जा सकता है। मैनेनेसिया के अलावा अन्य स्थानों पर भी कुछ इसी तरह के विश्वास प्रचलित रहे जिनके मूल में आदिमवासियों की यही धारणा थी कि माता ही बच्चे को पैदा करती है। नही उनका पालन-पोषण करती है, इसलिए उसका ही उसके ऊपर अधिकार है। पिता तो केवल उसी घर में रहने वाला माता का पति है। मातृसत्तात्मक समाज के अन्तर्गत ही विवाह के समय दो प्रथाएँ थीं। कहीं पर तो पुरुष जो ये घर आकर निवास करता था जैसे भाव विवाह के परचाठ कथा को घर पर भर जाता पड़ता है। उस प्राचीन समाज में व्यवस्था अस्ते तरह की थी। स्त्री का अधिकार अधिक होने का कारण पुरुष को स्त्री के घर जाना पड़ता था। क्योंकि पुरुष किसी दूसरे गण का होता था इसलिए उस स्त्री की सभी सन्तानें उसको अपरिचित का रूप में ही मानती थीं। बच्चों का उसे सम्बन्धी तो माता के भाई या माता की माता के भाई तथा अन्य उसी माता की तरह के व्यक्ति होते थे। बच्चे को पिता की अपेक्षा अपना मामा अधिक प्रिय होता था और उसे ही वह अपना सच्चा सम्बन्धी समझता था। उसी की सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसे मिलता था।

इसी तरह की व्यवस्था स्त्री के पुरुष के घर आकर रहने की है लेकिन



## यौन-जीवन की सामाजिक व्यवस्था

किसी भी बरिष सम्मान्यी जून की वास्तविकता का अभी पता चलता है जब ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी लोभ हो थीर उसकी उन परिस्थितियों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जिनके बीच वह विशेष प्रकार का मुख्य पैदा हुआ है।

इसका क्या प्रमाण है कि प्राथम समाज में स्त्री और पुरुष के बीच मुख्य सम्बन्ध चलता था और आई-आई, पिता-पुत्री प्रादि का किसी प्रकार का विचार-यौन सम्बन्धों के बीच सामाजिक प्रतीत नहीं हुआ था।

इसके प्रमाण-स्वरूप पहले हम पश्चिम के विद्वान मोरगन (Morgan) के उन निष्कर्षों को रखते हैं जो उन्होंने आयरलैंड राज्य की इरोकोई (Iroquois) नाम की प्राचीन जातियों के बीच स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को देखकर निकाले थे। मोरगन ने काफी बिल उन जातियों के बीच रहकर उनकी प्रत्यक्ष प्रवर्धों का अध्ययन किया था। इरोकोई जाति के लोग मनुष्य की प्राचीन संस्कृति के ऊपर काफी प्रकाश डालते हैं। यद्यपि वे लोग विकास करके उस प्राथमिक स्थिति से काफी आगे बढ़ गये हैं लेकिन फिर भी इनके रीतिरिवाज तथा इनके सम्बन्धों को देखकर इनकी उस प्राचीन स्थिति के बारे में पता लगाया जा सकता है। वही मोरगन ने किया था।

मोरगन ने इनके बीच कुछ विभिन्न बातें देखी थीं। उनमें सबसे बड़ी बात

भी इनके पिता माता, पुत्र पुत्री भाई बहिन आदि के रूप में सम्बन्ध धीरे धीरे के सम्बन्धों से उनका भिन्नता ।

मैलेनेसियावासियों में माता के सामने पिता का कोई अधिक महत्त्व नहीं होता । उसका कारण इन लोगों का यही विश्वास है कि बच्चे के जन्म के लिए माता ही उत्तरदायी है, पिता का उसमें किसी प्रकार का हाथ नहीं होता लेकिन हरिकोई लोगों के बीच पिता की पूरी मान्यता है । उनके बीच सभी लोग अपने पिता और माता को जानते हैं । उनके साथ भाई बहनों को भी, वे लोग अच्छी तरह पहचानते हैं । परिवारों के रूप में वे लोग बँटे हुए हैं । जहाँ तब दोन-सम्बन्धों का प्रश्न है, भाई-बहिन पिता-पुत्री आदि के बीच दोन सम्बन्ध पूरी तरह बँटित है । इनके साथ कुछ धीरे सीमाएँ भी हैं लेकिन सबसे प्रत्यक्ष बात तो इनके बीच पिता-पुत्र माता-पुत्र भाई-बहिन आदि के सम्बन्धों का प्रयोग है ।

हरिकोई केवल अपने ही बच्चों को ही अपने पुत्र और पुत्री नहीं कहता बल्कि अपने भाइयों के बच्चों के साथ भी उसका यही सम्बन्ध होता है । भाई के बच्चे भी उनको अपने पिता के साथ-साथ ही पिता कहकर पुकारते हैं ।

पिता के पिता के भाई के पुत्रों को भी वे बच्चे पिता कहकर पुकारते हैं । फिर पिता के पिता के पिता के भाई के पुत्र को भी वे बच्चे अपना पिता कहकर पुकारते हैं ।

इसी प्रकार माता का प्रयोग केवल अपनी सभी माता के लिये ही हरिकोई नहीं करता बल्कि माता की बहिन को भी वह माता कहता है । फिर माता की माता की बहिन की पुत्री को भी वे बच्चे माता कहते हैं । इस प्रकार माता की माता की माता की बहिन की पुत्री की पुत्री को भी माता के नाम से पुकारा जाता है । माता की ओर इसी प्रकार सम्बन्ध चलता है ।

यह प्रश्न आता है माता के भाइयों का धीरे उसके साथ पिता की बहिन का । माता के भाइयों को हरिकोई मामा (uncle) कहकर पुकारता है और उसके पुत्र ममेरे भाई कहलाते हैं । इसी प्रकार पिता की माता के भाइयों के पुत्रों को भी ममेरे भाई (Cousins) कहकर पुकारा जाता है । इसी विधा में यह सम्बन्ध चलता जाता है ।

पिता की बहिन को यहाँ के लोग बुआ (aunt) कहकर पुकारते हैं । इसी प्रकार का प्रयोग माता के पिता की बहिन की पुत्री के लिए किया जाता है ।

इन सम्बन्धों के अन्तर्गत पिता के भाइयों तथा माता की बहनों के बच्चे

इसकोई के भाई और बहिन कहलायेंगे । उनके साथ वह अपने अपने भाई बहिनों का सा व्यवहार करेगा । लेकिन पिता की बहिन और माता के भाइयों के बच्चे बच्चे भाई कहलायेंगे । इसीलिए इसकोई विवाही अपने भाइयों के पुत्र और पुत्रियों को अपने पुत्र और पुत्रियों की तरह समझता है और अपनी बहिन के पुत्र पुत्रियों को अपने मामजे मामजी (Nephews and Nieces) की तरह समझता है । इसी प्रकार माता की बहिनों के पुत्र और पुत्रियों को माता अपने ही पुत्र पुत्रियों के रूप में समझती है । पिता का धारम्यक रूप से फिर उनके साथ वही सम्बन्ध कुछ ही जाता है ।

इन सम्बन्धों को देखने से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है कि इसकोई पुरुष अपनी स्त्री को तो अपनी पत्नी समझता ही है लेकिन उसके साथ ही वह अपनी पत्नी की बहिनों के बच्चों को वह अपना बच्चा समझता है, इसलिये बहिनों के प्रति भी वही सम्बन्ध कुछ जाता है जो उसका अपनी पत्नी के प्रति है । पत्नी की बहिनें उसकी पत्नी हो जाती हैं और इसी सम्बन्ध से वे जिनमें भी अपने पति के बच्चा उसके भाइयों को भी अपना पति मानने समती हैं । इस तरह सभी भाइयों की पत्नियाँ आपस में बहिन होती हैं । यद्यपि अब इसकोई लोगों के बीच परम्परा के रूप में ही ये सम्बन्ध जीवित हैं और परिवारों की नयाँ कुछ ऐसी है कि एक पुरुष अपनी पत्नी के बच्चा दूसरी स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध जोड़ने के कारण अपनी समझ जाता है लेकिन जिस प्राचीन समाज की स्त्रीकी ये सम्बन्ध होते हैं वह निश्चित ही ऐसा समाज रहा होगा जहाँ पुरुषों और स्त्रियों के यौन-सम्बन्ध सामूहिक रूप में रहे होंगे । व्यक्ति का अधिकार व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहा होगा । बल्कि एक पुरुष का अधिकार अपनी पत्नी को छोड़कर अपने भाइयों की पत्नियों पर भी होगा । उनके साथ समका स्वतन्त्र सम्मोद चलता होगा । इसी प्रकार जिनमें भी अपने पति के भाइयों के प्रति पति का सा ही दृष्टिकोण रहती होंगी ।

मौरनन ने इसी आधार पर सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में धर्मस्य विवाह इस प्रकार सामूहिक प्रणाली से होता होगा । उसमें धर्मस्य ही एक स्त्री का सम्बन्ध केवल एक पुरुष से न होकर कई पुरुषों के साथ होगा और इसी प्रकार पुरुष भी धर्मस्य स्त्रियों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक रमण करने का अधिकारी रहा होगा । इस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति बहुपत्नि तथा बहुपति प्रथा में (Polygamy and Polyandry) साध-साध ही रही होगी ।

इस निष्कर्ष के अलावा इन सम्बन्धों के आधार पर एक और निष्कर्ष निकलता है । उस सामाजिक स्थिति में भाई और बहिन तथा पिता और पुत्री के बीच विवाह-सम्बन्ध बहिष्कृत थे क्योंकि यदि ऐसा होता तो भाई बहिन के

सहवास से पैदा हुए पुत्र पुत्री उन दोनों के पुत्र और पुत्री कहलाते लेकिन इस व्यवस्था के अन्तर्गत तो भाई अपनी बहिन की सन्तानों को अपनी सन्तान न समझकर अपनी भागबी भागजे धादि के रूप में समझता है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन लोगों के बीच भाई-बहिन के बीच विवाह नहीं होता था। इसी प्रकार पिता और पुत्री के विवाह की बात है। पिता अपनी पुत्री के बच्चों को भी अपनी बहिन के बच्चों की पंक्ति में रखता है फिर कैसे सम्भव हो सकता है कि पिता पुत्री का पति बनकर वे बच्चे पैदा करें, जो उसके नहीं कहलायेंगे।

इस सभी के बारे में जोबन्त औरपन ने यह बात दिया है कि इरोकीयों के बीच एक समय ऐसी सामाजिक स्थिति भी अर्थात् सभी बहिनें मिलकर उन पुरुषों के साथ विवाह कर लेती थीं जो आपस में भाई होते थे। उनके बीच यौन-सम्बन्धों की छूट थी। एक व्यक्ति का अधिकार एक स्त्री पर नहीं था। एक जोड़े के रूप में जिस ईर्ष्या में पुरुष और स्त्री के हृदय में अन्ध से सिया है वह सम्भवतः उस समाज में नहीं थी।

यद्यपि यह है कि वह विवाह एक ही पुरुष के पिता से हो जाता था या दो बेटों के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होता था। इसके बारे में हम यह भिन्न ही चुके हैं कि मातृसत्तात्मक समाज ने अन्तर्गत यह नियम बा कि जो पुरुष किसी स्त्री के साथ विवाह करता था तो उसे अपना पुरुष छोड़कर स्त्री के गख में जाकर रहना पड़ता था। इस प्रकार गख में बितने की भाई के रूप में पुरप होते थे वे अपनी बहिनों को छोड़कर उन स्त्रियों के गखों में जाकर रहने थे जिन्हें वे अपनी पत्नी बनाते थे। इस प्रकार भाई-बहिन असम भक्तन गखों में बैठ जाते थे। इसी प्रकार भाई की सन्तति भी असम-अलग गखों में बैठ जाती थी। इन भाई बहिनों के बच्चे आपस में सगे भाई बहिन न होने के नाते एक दूसरे से विवाह कर सकते थे। इस प्रकार अचरे भाई बहिन की धादी इनके बीच प्रासानी से हो जाती थी। यह प्रथा आज भी मुसलमानों के बीच पाई जाती है।

प्राचीन काल में इरोकीय जातियों के बीच ही नहीं यन्कि अन्य जातियों के बीच भी इस प्रकार सामूहिक विवाह प्रणाली (group marriage) के सम्बन्ध रहे हैं। इसका मूल आधार यही है कि जिस प्रकार की सम्बन्ध प्रणाली रोकोई लोगों के बीच पाई जाती है उसी प्रकार की सम्बन्ध प्रणाली भारतीय के धादि निवासियों के बीच भी पाई जाती है। बसिण में प्राचिह और योरी जातियों के बीच इसी प्रकार के सम्बन्ध उनके सामूहिक विवाह प्रणाली के इस प्राचीन रूप की ओर संकेत करते हैं। एड एण्डियन (American Indian) लोगों के बीच

इन्हीं सम्बन्धों का प्रचलन है । यद्यपि आज उनके बीच इस प्रकार सामूहिक विवाह प्रणाली प्रचलित नहीं है लेकिन इरोकोई लोगों के ही तरह पिता, पुत्र, पत्नी, माता, बहिन, भाई आदि के बीच सम्बन्धों का साम्य होने के कारण यह मानना उचितपूर्ण है । होना कि आदिम काल में इनके बीच भी इसी प्रकार के यौन-सम्बन्ध रहे होंगे ।

अमेरिका ही नहीं एशिया अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया तक में इसी प्रकार की सम्बन्ध प्रणाली मिली है । इससे यही सिद्ध होता है कि दुनिया में चारों ओर साधारणतया विकास-क्रम एकसा ही रहा होगा लेकिन फिर भी इस विकास-क्रम को निश्चित काल के रूप में जाँचना असम्भव सा ही है । प्राचीन जातियों के सम्बन्धों की कल्पना मोटे रूप से ही हम कर सकते हैं । नये नये समय प्राप्त होने पर ही प्राचीन काल के सम्बन्ध में कुछ पता चलता है ।

कुछ ही दिन पहले ही संयुक्ताधिक द्वीपों में रहने वाले लोगों के बारे में खोज हुई थी । उनके बीच पिता-माता भाई-बहिन पुत्र-पुत्री, चाचा चाची, भानजे भानजी आदि के बड़ी सम्बन्ध पाये गये हैं जिनकी कल्पना मौरयन को करनी पड़ी थी । इरोकोई लोगों के बीच तो परम्परा के रूप में ही केवल नाममात्र को ये सम्बन्ध रहे बर्ये ये बाकी समस्त का बीचा बहुत कुछ का लेकिन ऐश्वर्य द्वीपों के लोगों के बीच वास्तविक रूप में यही सम्बन्ध पाये जाते हैं । वहाँ सामूहिक विवाह प्रणाली आज भी प्रचलित है । इससे और भी अच्छी तरह यह समित हो जाता है कि जिन स्वानों पर केवल नाममात्र के लिये ही सही इस प्रकार के सम्बन्ध हैं, उन स्वानों पर प्राचीन काल में अवश्य ही सामूहिक विवाहप्रणाली रही होगी ।

अब एक दूसरी विषय बात तो इन ऐश्वर्य द्वीप के निवासियों के बारे में मिलती है । ये लोग अपने अपने भाइयों और बहिनों को भी अपने अपने भाई बहिन की तरह मानते हैं । उन्हें ये केवल अपने पिता की बहिनों तथा अपनी माता भाइयों के अलग अलग बन्धों के रूप में नहीं देखते बल्कि जिस प्रकार वे अपने और उनके बीच किसी प्रकार सगे और पराये का भेद नहीं समझते उसी प्रकार पिता और उसकी बहिन तथा माता और उसके भाई के बीच किसी प्रकार की दूरी नहीं समझते । दोनों की पति पत्नी के रूप में ही वे कल्पना करते हैं । स्पष्ट है, यदि मैं और मेरे पिता की बहिन का भाई दोनों आपस में भाई भाई है तो फिर मेरे पिता का मेरी माता के साथ जो सम्बन्ध है, वही अपनी बहिन के साथ हुआ या ना भी कहें तो भी ठीक होना कि पिता की बहिन हो मेरी माता हो सकती थी—अर्थात् भाई अपनी बहिन के साथ ही विवाह कर सकता था ।

सैन्डविच द्वीपों (Hawaii) के निवासियों के बीच प्रचलित सम्बन्धों के आधार पर यह निष्कर्ष अच्छी तरह निकाला जा सकता है। इरोकोई और सैन्डविच निवासियों की स्थिति अपने से पीछे की स्थिति की ओर हमारा ध्यान खींचती है क्योंकि वास्तव में या सम्बन्ध इरोकोई लोगों के बीच केवल परम्परा के रूप में देखे जा सकते हैं वे सैन्डविच निवासियों के बीच एक वास्तविकता के रूप में स्थित हैं इसलिये इस स्थिति के बारे में तो किसी प्रकार की संशय करना निम्न है, इसी प्रकार जो सम्बन्ध जेनेरे माइयों के बीच एक परम्परा के रूप में ही हवाई द्वीपों में रह गया है वह भी किसी बुन में वास्तविक रूप से रहा होगा और उसके साथ भाई बहनों के बीच मीन-सम्बन्ध भी रहे होंगे। बाह्य में ललक के सम्बन्ध बहिष्कृत कर दिये गये होंगे।

इस तरह मीन-सम्बन्धों के दो रूप हमें मिलते हैं—

(१) जिसमें भाई और बहिन पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे के साथ सम्मेलन कर सकते थे। एक ही मछ के अन्तर्गत विवाह हो जाता था। स्त्री या पुरुष को विवाह के पश्चात् कहीं दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।

(२) इसके पश्चात् समाज में यह नियम बन गया कि एक ही मछ के अन्तर्गत भाई और बहिन विवाह नहीं कर सकते। भाई अपनी सभी बहिन को छोड़कर अपनी जेनेरी बहिन से शादी कर सकता है। जेनेरी बहिन दूसरे गए की होती थी। इसी प्रकार एक गए में दूसरे गए का सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सामूहिक विवाह प्रणाली चलती थी। पुरुष का अपनी पत्नी के साथ ही संबंध होता था लेकिन उसके साथ-साथ अपने भाइयों की पत्नियों के साथ भी वह बिना किसी रोक-टोक के सम्मेलन कर सकता था। इस तरह बहुपत्नी प्रथा (Polygamy) और बहुपति प्रथा (Polyandry) साथ-साथ ही चलती थी। स्त्री और पुरुष अपने अपने क्षेत्र में समान अधिकार रखते थे। पुरुष स्त्री की स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार संकुच नहीं रखता था और नहीं स्त्री के हृदय में अपनी सौत के प्रति किसी प्रकार की ईर्ष्या थी। सब तो यह है कि सौत के प्रति किसी विशेष वैयक्तिक भावना का जग समाज में कोई स्थान ही नहीं था।

इन व्यवस्था के अन्तर्गत या बच्चे स्त्रियों के गर्म से पैदा होते थे, वे किसी एक के होकर नहीं रहते थे बल्कि जन पर सभी का सामूहिक धर्मप्राप्त रहता था। यद्यपि परिवार प्रजनन-व्यवस्था होकर भी बाह्य की स्थिति में वे अकेले फिर भी मूल स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।

उक्त स्थितियों में पहली स्थिति अधिक प्राचीन काल के मीन सम्बन्धों की

घोर संकेत करती है लेकिन इससे भी पहले की यह स्थिति है जब पिता और पुत्री भी पति-पत्नी के रूप में रह सकते थे। बेंक्नेपट<sup>१</sup> ने अपनी खोज के आधार पर यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि एक समय यह भी था जब केवल पुरुष और स्त्री का भेद था। किसी प्रकार पिता-पुत्री माई-बहिन को लेकर यौन-सम्बन्धों के साथ मर्यादा नहीं बाँधी गई थी। जिस प्रकार पशुधर्म के बीच ऐसा कोई भेद नहीं दिखाई देता उसी प्रकार अपनी धार्मिक व्यवस्था में मनुष्य भी ऐसे भेद नहीं रखता था। उस समय किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी और इसी कारण पाप-पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता था। धर्म के युग में यदि पिता अपनी पुत्री की घोर काम-वासना-पूर्ण दृष्टि से देख भी ले तो उसे समाज पापी, नीच, वृत्तिल, पशु कहे जा लेकिन उस धार्मिक युग में कोई इन सम्बन्धों के बीच भेदकर भी पापी नहीं था। इस सबसे तुम यह तो समझ जाओगे कि किस तरह बहमते समय के साथ यौन-सम्बन्धों की मर्यादित किया गया और वे ही मर्यादाएँ आज पाप-पुण्य को निर्धारित करती हैं। वे सभी परिस्थिति-बन्ध हैं। शास्त्र इनके साथ कुछ भी नहीं है। वैसे यौन सम्बन्धों के साथ पाप और पुण्य की जो बाण्डा प्रचलित है उसका आधार गलत है।

बेंक्नेपट ने बोरिंग स्ट्रैट के कैविएट (Kavits of the Boring strait) एलास्का के पास कैडलाह (Kadlaks near Alaska) तथा ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका के टिनेह (Tinneby) लोगों के समाज का अध्ययन करते समय वहाँ पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को उनके बीच प्रचलित पाया है।

बेंक्नेपट के अलावा लेटोरान (Letourcan) ने भी चिप्चेवा भारतीयों, चिली के बुरुस, इंडोचीन के कौरस तथा कैरिबियन प्रायद्वीपों के बीच भी पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को प्रचलित पाया। अगर तथा सीबिया तथा सिबो के सम्बन्ध में हुई खोजों से भी यही प्रमाणित हुआ है कि प्राचीनकाल में इनके बीच पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी।

यह स्थिति धार्मिक समाज की पहली स्थिति है। इन सब स्थितियों पर गम्भीरता से विचार करना है और देखना है कि धर्म जो वृत्तिल है या पवित्र है उसका कोई शास्त्र आधार भी है। धर्म यदि धूम से कोई स्त्री सामाजिक मर्यादा का उत्सर्जन कर जाती है तो उसके साथ ऐसा पाप जुड़ जाता है जो जीवन भर उसके चरित्र से दूर नहीं हो सकता। क्या वास्तव में यह ऐसा बड़ा

<sup>१</sup> — The Native races of the Pacific states of North America : H.H. Bancroft.

पाप-कार्य कर डालती है, जिसके कारण उसका जीवन मष्ट हो जाता है ? हमने स्त्री-पुरुष के बीच की तीन स्थितियों को रख दिया है । इससे यह भ्रम दूर हो जायेगा कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में पाठिपत्र ही अन्तिम सत्ता नहीं है । पाठिपत्र की अपनी परिस्थितियाँ हैं और उनके बीच यह मारपीत समाज को प्रयति देता हुआ ही उड़ा था । इसने स्त्री की स्थिति को पहले को अपेक्षा प्रशस्त किया था लेकिन बाद में जैसे सभी चीजें बढ़ि बनकर पतिरोध पैदा कर देती हैं उसी प्रकार इसने भी पतिरोध पैदा कर दिया है और कई परिस्थितियों के घाने के कारण यह भिन्नित नहीं कहा जा सकता कि पाठिपत्र का वही मध्यमस्थानी यावर्ध भावित बनकर बलता रहेगा । समाज के जनतन्त्रात्मक युग में फिर स्त्री और पुरुष बराबर के अधिकार लेकर चलना चाहते हैं । मध्य कालीन सार्वभौम तो यही था कि पति स्वामी है और स्त्री उसकी शायी है, जिसके जीवन का साम्य पति की सेवा करना है; लेकिन आज पत्नी के व्यक्तित्व को इस तरह पति की सेवा तक ही सीमित न समझकर उसका पुरुष के समान ही सामाजिक आचार कुलने का प्रयत्न चारों ओर चल रहा है । अब स्त्री पुरुष की अपनी अधिकारी (Peculiar) नहीं मानना चाहती । वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अधिकार समाज से माँगती है और ऐसे समाज के लिए संघर्ष कर रही है जिसमें उसको केवल प्रजनन का ही एक सामान-भाग न मानकर उसको पुरुष के ही समान सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हों । क्या स्त्री अब संघर्ष में विजय प्राप्त कर जायेगी ?

सकलता और अतकलता के लिए अधिकतर ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की ही उत्तरदायी समझना ठीक है । जब पुरानी व्यवस्था बढ़ि बनकर समाज के घाँव का मार्ग रोक देती है तो अवश्य उसका त्याग पर नई व्यवस्था उठनी है । यही क्रम प्रारम्भ से चलता आ रहा है । अब सामाजिक पृष्ठभूमि की समझ लेना यदि आवश्यक है जिसके साथ विभिन्न घादपों और बर्बादों का सम्बन्ध है । एक बार जिस सम्बन्ध को तात्पारण और स्वाभाविक मानकर स्वीकार कर लिया गया वही कालान्तर में जाकर वृद्धि और पापपूर्ण कैसे हो गया ।

(१) सबसे पहले हमारे सामने उस समय का चित्र आता है जिसमें केवल स्त्री-पुरुष का ही मेह था । माई-पति, पिता-पुत्री के बीच किसी प्रकार की भर्था नहीं थी । उस समाज में प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी ही सख्ती थी । यह मनुष्य की जंगली अवस्था (Savagery) के प्रारम्भिक काल का रूप है जब मनुष्य समुह बनाकर पेड़ों पर लपका कर जीने रहते थे और भोजन कर ही अपने भोजन का ग्रहण करते थे । या तो वे पितार करके जंगली वृक्षों



घोर संकेत करती है लेकिन इससे भी पहले की यह स्थिति है जब पिता और पुत्री भी पति-पत्नी के रूप में रह सकते थे। बेंग्लोपट<sup>१</sup> ने अपनी खोज के आधार पर यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि एक समय यह भी था जब केवल पुरुष और स्त्री का यैव था। किसी प्रकार पिता-पुत्री भाई-बहिन को लेकर यौन-सम्बन्धों के साथ मर्यादा नहीं बाँधी गई थी। जिस प्रकार पशुओं के बीच ऐसा कोई भेद नहीं दिखाई देता उसी प्रकार अपनी धार्मिक व्यवस्था में समुध्य भी ऐसे भेद नहीं रखता था। उस समय किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी और इसी कारण पाप-मुष्य का प्रश्न ही नहीं उठता था। धर्म के युग में यदि पिता अपनी पुत्री की ओर काम-वासना-पूर्ण दृष्टि से देख भी ले तो उसे समाज पापी, नीच, वृणित, पशु कहेगा लेकिन उस धार्मिक युग में कोई इन सम्बन्धों के बीच बँधकर भी पापी नहीं था। इस सबसे तुम यह तो समझ जाओगे कि किस तरह बबलुके समय के साथ यौन-सम्बन्धों को मर्यादित किया गया और वे ही मर्यादों में आज पाप-मुष्य को निर्धारित करती हैं। वे सभी परिस्थिति-बन्ध हैं। चाहेत इनके साथ कुछ भी नहीं है। वैसे यौन सम्बन्धों के साथ पाप और पुष्य की जो बारणा प्रचलित है उसका मानार नसत है।

बेंग्लोपट ने बोरिंग स्ट्रेट के कैवियट (Kavists of the Boring strait) एलास्का के पास कैडियक (Kadiaks near Alaska) तथा टिनेह्य उत्तरी धमरीका के टिनेह्य (Tinney) लोगों के समाज का अध्ययन करते समय यहाँ पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों को उनके बीच प्रचलित पाया है।

बेंग्लोपट के मलावा लेतुरेन्यू (Letowrean) ने भी चिन्नेवा भारतियों बिलो के क्यूकच, इडोचीन के कौरम्ब तथा कैटिबिकम्ब आदि लोगों के बीच भी पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को प्रचलित पाया। फरस तथा सीबिया निवासियों के सम्बन्ध में हुई खोजों से भी यही प्रमाणित हुआ है कि प्राचीनकाल में इनके बीच पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी।

यह स्थिति धार्मिक समाज की पहली स्थिति है। इन सब स्थितियों पर मम्मीरखा से विचार करना है और देखना है कि धर्म का वृणित है या पवित्र है उसका कोई शास्त्रत आधार भी है। धर्म यदि सून है कोई स्त्री सामाजिक मर्यादा का सम्मंभन कर जाती है तो उसके साथ ऐसा पाप जुड़ जाता है जो जीवन भर उसके चरित्र से दूर नहीं हो सकता। क्या वास्तव में यह ऐसा बड़ा

१—The Native races of the Pacific states of North America H. H. Bancroft.

पाप-कार्य कर वाला है, जिसके कारण उसका जीवन नष्ट हो जाता है ? हमने स्त्री-पुरुष के बीच की तीन स्थितियों को रख दिया है । इससे यह भ्रम दूर हो जायेगा कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में पातिव्रत ही अन्तिम होता नहीं है । पातिव्रत की अपनी परिस्थितियाँ हैं और उनके बीच यह भावार्थ समाज की प्रगति होता हुआ हो उठा था । इसने स्त्री की स्थिति को पहले की प्रेरणा प्रच्छा किया था लेकिन बाद में जैसे सभी चीजें बढ़ि बनकर गतिरोध पैदा कर देती है उसी प्रकार इसने भी गतिरोध पैदा कर दिया है और कई परिस्थितियों के घाने के कारण यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि पातिव्रत का वही मध्यममार्ग भावार्थ शाश्वत बनकर बसता रहेगा । समाज के अनन्तआत्मक युग में फिर स्त्री और पुरुष बराबर के अधिकार लेकर बसना चाहते हैं । मध्य कालीन भावार्थ तो यही था कि पति स्वामी है और स्त्री उसकी दासी है, जिसके जीवन का साम्य पति की सेवा करना है; लेकिन आज पत्नी के व्यक्तित्व को इस तरह पति की सेवा तक ही सीमित न समझकर उसका पुरुष के समान ही सामाजिक अधिकार दू देने का प्रयत्न जारी और चल रहा है । अब स्त्री पुरुष की अपनी अधिकारी (Possessor) नहीं मानना चाहती । वह अपनी स्वतन्त्रता का अधिकार समाज से माँगती है और ऐसे समाज के लिए संघर्ष कर रही है जिसमें उसको केवल प्रजनन का ही एक साधन-मात्र न मानकर उसको पुरुष के ही समान सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हों । क्या स्त्री उस संघर्ष में विजय प्राप्त कर जायेगी ?

सफलता और असफलता के लिए अधिकतर ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की ही उत्तरदायी समझना ठीक है । जब पुरानी व्यवस्था बढ़ि बनकर समाज के घाने का भार्य रोक देती है तो अवश्य उसके स्थान पर नई व्यवस्था उठती है । यही क्रम प्रारम्भ हो चलता आ रहा है । उस सामाजिक पृष्ठभूमि को समझ लेना अति आवश्यक है जिसके साथ विभिन्न घाद्यों और मर्बादामों का सम्बन्ध है । एक बार जिस सम्बन्ध को साधारण और सामाजिक मानकर स्वीकार कर लिया गया, वही कामान्तर में आकर बुद्धि और पापपूर्ण कैसे हो गया ।

(१) सबसे पहले हमारे सामने उस समय का चित्र आता है जिसमें केवल स्त्री-पुरुष का ही भेद था । माई बहिन, पिता पुत्री के बीच किसी प्रकार की मर्बादामें नहीं थी । उस समाज में प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी हो सकती थी । यह मनुष्य की जंगली अवस्था (Savagery) के प्रारम्भिक काल का रूप है जब मनुष्य समूह बनाकर पेड़ों पर तथा कभी-कभी उनके नीचे रहते थे और नियम नहीं था । जीवन योजना का प्रारम्भ करते थे । या तो वे शिकार करके जगती पशुओं

घोर संकेत करती है लेकिन इससे भी पहले की यह स्थिति है जब पिता और पुत्री भी पति-पत्नी के रूप में रह सकते थे। बेंक्रोफ्ट<sup>१</sup> ने अपनी खोज के आधार पर यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि एक समय यह भी था जब केवल पुरुष और स्त्री का भेद था। किसी प्रकार पिता-पुत्री बान्धन को लेकर यौन-सम्बन्धों के साथ भ्रष्टाचार नहीं बँधी गई थी। जिस प्रकार पशुओं के बीच ऐसा कोई भेद नहीं दिखाई देता उसी प्रकार अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य भी ऐसे भेद नहीं रखता था। उस समय किसी प्रकार की भ्रष्टाचार नहीं थी और इसी कारण पाप-पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता था। धर्म के रूप में यदि पिता अपनी पुत्री की ओर काम-वासना-मूर्च्छा दृष्टि से देख भी ले तो उसे समाज पापी, नीच, कुण्ठित, पशु कहेगा लेकिन उस आदिम युग में कोई इन सम्बन्धों के बीच भेदकर भी पापी नहीं था। इस सबसे तुम यह तो समझ जाओगे कि किस तरह बचते समय के साथ यौन-सम्बन्धों की भ्रष्टाचारिता कम हो गई थी और वे ही भ्रष्टाचारों धर्म पाप-पुण्य को निर्धारित करती हैं। वे सभी परिस्थिति-बन्ध हैं। वास्तव इनके साथ कुछ भी नहीं है। जैसे यौन सम्बन्धों के साथ पाप और पुण्य की जो धारणा प्रचलित है उसका आधार नहीं है।

बेंक्रोफ्ट ने बोरिंग स्ट्रेट के कैविएट (Kaviats of the Bering strait) एलास्का के पास कैड्याक (Kadiaks near Alaska) तथा ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका के टिनेह (Tinneby) लोगों के समाज का अध्ययन करते समय यहाँ पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों को उनके बीच प्रचलित पाया है।

बेंक्रोफ्ट के समाज लेटोवैय (Letowean) ने जो चिल्मेन्स भाँतिवों, चिली के क्यूकस, इन्डोनीय के कैरमस तथा कैरिबियन्स आदि लोगों के बीच भी पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को प्रचलित पाया। फ़ारस तथा सीकिया निवा चियों के सम्बन्ध में तुल्य लोगों से भी यही प्रमाणित हुआ है कि प्राचीनकाल में इनके बीच पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में किसी प्रकार की भ्रष्टाचारिता नहीं थी।

यह स्थिति आदिम समाज की पहली स्थिति है। इन सब स्थितियों पर ध्यानपूर्वक विचार करना है और देखना है कि धर्म जो कुण्ठित है या पवित्र है उसका कोई वास्तव आधार भी है। धर्म यदि धूल से कोई स्त्री सामाजिक भ्रष्टाचार का उत्पन्न कर जाती है तो उसके साथ ऐसा पाप जुड़ जाता है जो जीवन भर उसके चरित्र से दूर नहीं हो सकता। नया वास्तव में यह ऐसा बड़ा

१—The Native races of the Pacific states of North America H H Bancroft.

पाप-कार्य कर डालती है, जिसके कारण उसका जीवन भ्रष्ट हो जाता है ? हमने स्त्री-पुरुष के बीच की तीन स्थितियों को रक्त दिया है। इससे यह भ्रम दूर हो जायेगा कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में पातिव्रत ही अन्तिम सत्ता नहीं है। पातिव्रत की अपनी परिस्थितियाँ हैं और उनके बीच यह भावार्थ समाज को प्रगति देता हुआ ही उठता था। इसमें स्त्री की स्थिति को पहले की प्रपेक्षा प्रशंसा किया जा लेकिन बाद में जैसे सभी चीजें बढ़ि बनकर गतिरोध पैदा कर देती हैं उसी प्रकार इसने भी गतिरोध पैदा कर दिया है और कई परिस्थितियों के घाने के कारण यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि पातिव्रत का वही मध्यममोम आदर्श शाश्वत बनकर बसता रहेगा। आज के जनतन्त्रात्मक युग में फिर स्त्री और पुरुष बराबर के अधिकार लेकर बसना चाहते हैं। मध्य कालीन आदर्श तो यही था कि पति स्वामी है और स्त्री उसकी दासी है, जिसके जीवन का साम्य पति की सेवा करना है; लेकिन आज पत्नी के व्यक्तित्व को इस तरह पति की सेवा तक ही सीमित न समझकर उसका पुरुष के समान ही सामाजिक आधार बूझने का प्रयत्न कारी और चल रहा है। अब स्त्री पुरुष को अपना अधिकारी (Possessor) नहीं मानना चाहती। वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अधिकार समाज से माँगती है और ऐसे समाज के लिए संघर्ष कर रही है जिसमें उसको केवल प्रजनन का ही एक साधन-वाहन न मानकर उसको पुरुष के ही समान सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हों। क्या स्त्री इस संघर्ष में विजय प्राप्त कर पायेगी ?

सफलता और असफलता के लिए अधिकतर ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की ही उत्तरदायी समझना ठीक है। जब पुरानी व्यवस्था बढ़ि बनकर समाज के घाने का मार्ग रोक देती है तो अवश्य उसके स्थान पर नई व्यवस्था उठती है। यही कम प्रारम्भ से चलता आ रहा है। उस सामाजिक पृष्ठभूमि को समझ लेना अति आवश्यक है जिसके साथ विभिन्न आदर्शों और मर्यादाओं का सम्बन्ध है। एक बार जिस सम्बन्ध को साधारण और स्वाम्य बिक भावकर स्वीकार कर लिया गया, वही कालान्तर में आकर बुद्धि और पापपूर्ण होते हो गया।

(१) सबसे पहले हमारे सामने उस समय का चित्र आता है जिसमें केवल स्त्री-पुरुष का ही भेद था। भाई बहिन पिता-पुत्री के बीच किसी प्रकार की अर्थादा नहीं थी। उस समाज में प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी हो सकती थी। यह मनुष्य की अवसी व्यवस्था (Savagery) के प्रारम्भिक काल का रूप है जब मनुष्य समूह बनाकर पेड़ों पर तथा कभी-कभी जमीन पर रहते थे और मिल-कर ही अपने भोजन का प्रबन्ध करते थे। या तो वे शिकार करके अपनी वस्तुओं

घोर संकेत करती है लेकिन इससे भी पहले की यह स्थिति है जब पिता और पुत्री भी पति-पत्नी के रूप में रह सकते थे। बेंक्लेपट<sup>१</sup> ने अपनी खोज के आधार पर यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि एक समय यह भी था जब केवल पुंस्य और स्त्री का भेद था। किसी प्रकार पिता-पुत्री भाई-बहन को लेकर यौन-सम्बन्धों के साथ मर्यादा नहीं गांधी गई थी। जिस प्रकार पशुओं के बीच ऐसा कोई भेद नहीं दिखाई देता उसी प्रकार अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य भी ऐसे भेद नहीं रखता था। उस समय किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी और इसी कारण पाप-पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रायः के युग में यदि पिता अपनी पुत्री की ओर काम-वासना-युक्त दृष्टि से देख भी ले तो उसे समाज पापी, नीच, कुण्ठित, पशु कहे जा लेकिन उस आदिम युग में कोई इन सम्बन्धों के बीच बँधकर भी पापी नहीं था। इस सबसे तुम यह तो समझ जाओगे कि किस तरह बहलते समय के साथ यौन-सम्बन्धों की मर्यादित क्रिया क्या और वे ही मर्यादों प्रायः पाप-पुण्य को निर्धारित करती हैं। वे सभी परिस्थिति-बन्ध हैं। कारक इनके साथ कुछ भी नहीं है। वैसे यौन सम्बन्धों के साथ पाप और पुण्य की जो धारणा प्रचलित है उसका आधार नश्वर है।

बेंक्लेपट ने बोरिंग स्ट्रेट के कैविएट (Kavrats of the Boring strait) एलास्का के पास कैडियक (Kadiaks near Alaska) तथा ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका के टिनेह (Tinney) लोगों के समाज का अध्ययन करते समय यहाँ पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों को उनके बीच प्रचलित पाया है।

बेंक्लेपट के भ्राता लैटूरानू (Letourneau) ने भी विन्येसा द्वीपों जिली के ब्रूकस इन्डोचीन के कैरस तथा कैरिबियन्स द्वीपों के बीच भी पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को प्रचलित पाया। कारस तथा सोबिया निवा सियों के सम्बन्ध में हुई खोजों से भी यही प्रमाणित हुआ है कि प्राचीनकाल में इनके बीच पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी।

यह स्थिति आदिम समाज की पहली स्थिति है। इन सब स्थितियों पर ध्यानपूर्वक विचार करना है और देखना है कि प्रायः जो कुण्ठित है या पवित्र है उसका कोई वास्तव आधार भी है। प्रायः यदि धूल से कोई स्त्री सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन कर जाती है तो उसके साथ ऐसा पाप जुड़ जाता है या जीवन भर उसके चरित्र से दूरा नहीं हो सकता। क्या वास्तव में यह ऐसा बड़ा

१ — The Native races of the Pacific states of North America H H. Bancroft.

पाप-कार्य कर सकती है, जिसके कारण उसका जीवन मष्ट हो जाता है ? हमने स्त्री-पुरुष के बीच की तीन स्थितियों को रक्त दिया है । इससे यह भ्रम दूर हो जायेगा कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में पातिव्रत ही अन्तिम सत्ता नहीं है । पातिव्रत की अपनी परिस्थितियाँ हैं और उनके बीच यह भार्य्य समाज को प्रमत्ति देता हुआ ही उठा था । इसने स्त्री की स्थिति को पहने को प्रवेसा प्रण्टा किया था लेकिन बाद में जैसे सभी चीजें बढ़ि बनकर गतिरोध पैदा कर देती हैं उसी प्रकार इसने भी गतिरोध पैदा कर दिया है और कई परिस्थितियों के घाने के कारण यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि पातिव्रत का वही मध्यकालीन भार्य्य शास्त्र बनकर बभता रहेगा । आज के जनतन्त्रात्मक युग में फिर स्त्री और पुरुष बराबर के अधिकार लेकर बभता चाहते हैं । मध्य कालीन भार्य्य तो यही था कि पति स्वामी है और स्त्री उसकी दासी है जिसके जीवन का सम्म पति की सेवा करना है लेकिन आज पत्नी के व्यक्तित्व को इस तरह पति की सेवा तक ही सीमित न समझकर उसका पुरुष के समान ही सामाजिक आधार बूझने का प्रयत्न करो और बन रहा है । जब स्त्री पुरुष की घपना अधिकारी (Possessor) नहीं मानना चाहती । वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अधिकार समाज से मांगती है और ऐसे समाज के लिए संघर्ष कर रही है जिसमें उसको केवल प्रजनन का ही एक साधन-वाध न मानकर उसको पुरुष के ही समान सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हों । क्या स्त्री उस संघर्ष में विजय प्राप्त कर जायेगी ?

सबनता और असबनता के लिए अधिकतर ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की ही उत्तरदायी समझना ठीक है । जब पुत्तनी व्यवस्था बढ़ि बनकर समाज के धर्म का मार्ग रोक देती है तो धर्मस्य उसके स्थान पर नई व्यवस्था उठती है । यही कम प्रारम्भ से चलता था रहा है । उसे सामाजिक पृष्ठभूमि को समझ लेना पति आवश्यक है जिसके साथ विभिन्न भार्यों और मर्यादाओं का सम्बन्ध है । एक बार जिस सम्बन्ध को सामारण और स्वाभाविक मानकर स्वीकार कर लिया गया वही कालान्तर में आकर दुष्ट और पापपूर्ण भी हो गया ।

(१) सबसे पहले हमारे सामने उस समय का चित्र आता है जिसमें केवल स्त्री-पुरुष का ही भेद था । भाई-बहिन, पिता-पुत्री के बीच किसी प्रकार की भर्वादा नहीं थी । उस समाज में प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी हो सजता थी । यह मनुष्य की अंगनी व्यवस्था (Sibarchy) के प्रारम्भिक नाव था न्य है जब मनुष्य समूह बनाकर पेड़ों पर तथा कभी-कभी नौके रहत थे और मिल कर ही मत्त भोजन वा प्ररण करते थे । या तो वे विचार करके जवती पशुओं

घोर संकेत करती है लेकिन इससे भी पहले की यह स्थिति है जब पिता और पुत्री भी पति-पत्नी के रूप में रह सकते थे। बेंक्रोफ्ट<sup>१</sup> ने अपनी ओर के साक्षार पर यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि एक समय यह भी था जब केवल पुरुष और स्त्री का भेद था। किसी प्रकार पिता-पुत्री, भाई-बहन की लेकर यौन-सम्बन्धों के साथ मर्यादा नहीं बाँधी गई थी। जिस प्रकार पशुधर्म के बीच ऐसा कोई भेद नहीं दिखाई देता उसी प्रकार अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य भी ऐसे भेद नहीं रखता था। कुछ समय किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी और इसी कारण पाप-पुण्य का भ्रम ही नहीं उठता था। धर्म के रूप में यदि पिता अपनी पुत्री की ओर काम-वासना-मूर्छा दृष्टि से देख भी ले तो उसे समाज पापी, नीच, भूलित, बहुत कड़ेवा लेकिन उस आदिम युग में कोई इन सम्बन्धों के बीच बँधकर भी पापी नहीं था। इस लवचे तुम यह ता समझ जाओगे कि कुछ तरह बदलते समय के साथ यौन-सम्बन्धों की मर्यादित किया गया और वे ही मर्यादाएँ धर्म पाप-पुण्य की निर्धारित करती हैं। वे सभी परिस्थिति-बन्ध हैं। वास्तव इनके साथ कुछ भी नहीं है। जैसे यौन सम्बन्धों के साथ पाप और पुण्य की जो चारखा प्रचलित है उसका आधार नष्ट है।

बेंक्रोफ्ट ने बोरिंग स्ट्रेट के हवियाट (haviats of the Berring strait) एलास्का के पास ह्यादुस्क (haduaks near Alaska) तथा तिनिब उत्तरी अमेरिका के टिनेब (Tinneby) लोगों के समाज का अध्ययन करते समय यहाँ पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को उनके बीच प्रचलित पाया है।

बेंक्रोफ्ट के समाज लेतूरान (Letourcan) ने भी बिन्वेना भारतीयों, चिली के कन्नूवस, इण्डोचीन के कैरम्प तथा कैरिबियन आदि लोगों के बीच भी पिता-पुत्री के यौन सम्बन्धों को प्रचलित पाया। फरस तथा लीबिना निर-स्थितों के सम्बन्ध में हुई ओजों से भी यही प्रमाणित हुआ है कि प्राचीनकाल में इनके बीच पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी।

यह स्थिति आदिम समाज की पहली स्थिति है। इन सब स्थितियों पर ध्यानरत हो विचार करना है और देखना है कि धर्म का कृत्रिम है या पवित्र है उसका कोई वास्तव आधार भी है। धर्म यदि धूम से कोई स्त्री सामाजिक मर्यादा का उत्पन्न कर जाती है तो उसके साथ ऐसा पाप जुड़ जाता है जो जीवन भर उसके चरित्र से दूर नहीं हो सकता। क्या वास्तव में यह ऐसा बड़ा

१ — The Native races of the Pacific states of North America : H.H Bancroft.

पाप-कार्य कर सकती है, जिसके कारण उसका जीवन नष्ट हो जाता है ? हमने स्त्री-पुरुष के बीच की तीन स्थितियों का रक्त दिया है। इससे यह भ्रम दूर हो जायेगा कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के रूप में पातिव्रत ही अन्तिम सत्ता नहीं है। पातिव्रत की अपनी परिस्थितियाँ हैं और उनके बीच यह धार्य समाज को प्रगति देता हुआ ही उठा था। इसने स्त्री की स्थिति को पहले को अपेक्षा प्रकट किया था लेकिन बाद में जैसे सभी चीजें बढ़ि बनकर मतिरोग पैदा कर देती हैं उसी प्रकार इसने भी मतिरोग पैदा कर दिया है और कई परिस्थितियों के आने के कारण यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि पातिव्रत का वही मध्यमस्थान धार्य प्राप्त बनकर बनता रहेगा। आज के जनतन्त्रात्मक युग में फिर स्त्री और पुरुष बराबर के अधिकार लेकर बनना चाहते हैं। मध्य कालीन धार्य तो यही था कि पति स्वामी है और स्त्री उसकी दासी है, जिसके जीवन का साम्य पति की सेवा करना है; लेकिन आज पत्नी के व्यक्तित्व को इस तरह पति की सेवा तक ही सीमित न समझकर उसका पुरुष के समान ही सामाजिक आधार बनने का प्रयत्न चारों ओर बन रहा है। अब स्त्री पुरुष को अपना अधिकारी (Partner) नहीं मानना चाहती। वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अधिकार समाज से माँगी है और ऐसे समाज के लिए संघर्ष कर रही है जिसमें उसको केवल प्रजनन का ही एक साधन-मात्र न मानकर उसको पुरुष के ही समान सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हों। क्या स्त्री उस संघर्ष में विजय प्राप्त कर जायेगी ?

सकलता और असकलता के लिए अधिकतर ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की ही उत्तरदायी समझना ठीक है। जब पुरानी व्यवस्था बढ़ि बनकर समाज के धार्य का मार्ग रोक देती है तो प्रलय उसका स्थान पर नहीं व्यवस्था उठती है। वही नम प्रारम्भ से बनता था रहा है। उस सामाजिक वृष्टमूर्ति को समझ लेना पति धार्यवर्ग है जिसके साथ विभिन्न धार्यों और मर्यादाओं का सम्बन्ध है। एक बार जिस सम्बन्ध को साधारण और स्वाभाविक मानकर स्वीकार कर लिया गया, वही कालान्तर में जाकर घुड़ित और पापपूर्ण कैसे हो गया।

(१) सबसे पहले हमारे सामने उस समय का चित्र आता है जिसमें केवल स्त्री-पुरुष का ही भेद था। माई शहिन, पिता-पुत्री के बीच किसी प्रकार की मर्यादा नहीं थी। उस समाज में प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी हो सकती थी। यह मनुष्य की जंगली अवस्था (Savagery) के प्रारम्भिक काल का रूप है जब मनुष्य समूह बनाकर पेड़ों पर तथा कभी-कभी नीचे रहते थे और निज कर ही अपने भोजन का व्यवस्था करते थे। या तो वे विचार करके जंगली वनस्पतियों



के मांस को खाकर अपना पेट भरते थे और वा जंगल से कच्चे मूल फल खादि खाकर जीवन निर्वाह करते थे । समूह बनाने की प्रकृति मनुष्य की झुक से ही रही है । मरिचि मैकिन (Machin) ने अपनी पुस्तक 'मनुष्य क्या है ?' (What is man) में यही प्रमाणित किया है कि मनुष्य अपने आप में ही सीमित रहने वाला प्राणी है । वह स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है, यह मानना मजबूत है । मैकिन की धारणा भ्रमपूर्ण है क्योंकि प्रारम्भ में प्राकृतिक शक्तियों तथा पशुओं के भय के कारण ही मनुष्य समूह रूप में संघटित हुए थे लेकिन उस जीवन की वह आवश्यकता धीरे धीरे स्वभाव के रूप में परिणत हो गई और फिर स्वाभाविक रूप से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य समाज बनाकर रहने लगा । और, उस परिस्थिति में स्त्री और पुरुष बराबर का परिश्रम करके अपना खाना जुटाते थे । मुख्य धिकार करके पशुओं का मांस लाते थे तो स्त्रियाँ कच्चे मूल फल खादि इकट्ठे करके भातों की धीरे धीरे मिलकर अपना जीवन निर्वाह करते थे । उस समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई प्रश्न ही नहीं था । वे इतना परिश्रम करके केवल उतना ही जुटा पाते थे जो उनके खाने के लिए पर्याप्त होता था । इस धार्मिक परिस्थिति के अन्तर्गत पुरुष और स्त्रियों के बीच स्वतन्त्र सम्मेलन चलता था और अधिकार भी दोनों के साधारणतया बराबर ही थे । लेकिन मातृसत्ता के विषय में यहाँ नहीं झुम जाना चाहिए । स्त्री के साथ प्रजनन के रूप में जो प्रकृतीय शक्ति थी उसने उसके अधिकारों को पुरुष की तुलना में अधिक कर दिया लेकिन व्यक्तिगत सम्पत्ति के अभाव में वह अधिकार पुरुष के अपने किसी अधिकार को छीन नहीं पाया । दोनों स्वच्छन्द होकर विचरण करते थे ।

विवाह पर समूह के अन्तर्गत ही हो जाता करता था । उस समय केवल एक ही समूह नहीं था, बल्कि अनेकों इसी प्रकार के समूह थे जो अपने खाने की उलास में इधर उधर फिरा करते थे । कभी इनमें आपस में झगडा भी हो जाता था । जब किसी के पास खाना नहीं रहता था, तो वह दूसरे समूह पर आक्रमण करके अन्न खाना छीन लेता था या उसको उस स्थान से भगा देता था जहाँ इधर उधर कच्चे मूल फल के रूप में तथा जंगली पशुओं के धिकार के रूप में काफी खाना मिलता था । इस तरह जो अधिक शक्तिशाली होता था, वह कमजोर को भगा दिया करता था । इस कारण जंगलों में काफी उबल पुनर्गठन ही मची रहती थी । मनुष्य को एक तो पशुओं से भय था । उसके लिए तो उसने समूह बनाया था और सामूहिक रूप से वह अपनी रक्षा करता था फिर दूसरा भय अपने जैसे ही उन मनुष्यों का था जो उससे अधिक शक्तिशाली थे । यह सोचना पूरी तरह भ्रमपूर्ण है कि उन धार्मिक

साम्प्रदायी समाज में किसी प्रकार अधिकार के लिए संघर्ष नहीं था। अधिकार के लिए संघर्ष वा लेकिन वह केवल लाने की वस्तुओं के अधिकार के लिए संघर्ष था, किसी प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति बढ़ाने के लिए नहीं।

सांघिक और सामाजिक दृष्टिकोण से यह मनुष्य की प्रारम्भिक स्थिति है। इसके साथ वीन-सम्बन्धों का भी यह प्रारम्भिक रूप ही है। इस रूप में और पशुओं के बीच वीन-सम्बन्धों के रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। इस स्थिति में स्त्री और पुरुष जोड़ों के रूप में परिवार बना कर नहीं रहते वे और न ही एक पुरुष किसी एक स्त्री के बच्चों के प्रति उत्तरदायी होता था। पूरा गण ही बच्चों के लिए उत्तरदायी था और वहीं उसके जीवन का प्रबन्ध करता था।

वेस्टरमार्क (Westermarck) ने कुछ पशु-पक्षियों के व्यावहारिक जीवन की ओर करके यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि प्रारम्भ से ही स्त्री और पुरुष जोड़ों के रूप में रहे हैं और प्राणि जगत में एक पुरुष ने एक स्त्री के साथ व्यक्तिगत स्नेह के सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं। उसने ऐसे पक्षियों का उदाहरण दिया है जो मादा के साथ उस समय तक जोड़े के रूप में रहते हैं जब तक मादा के घर्ष से बच्चा नहीं पैदा हो जाता और फिर वे अपनी मादाओं के साथ ही उसके लिए खाना भी ढूँढते हैं। इस तरह कुछ पक्षी सामाजिक रूप से ही जोड़े बनाकर रहते हैं, फिर मनुष्य तो अधिक विचारशील प्राणी है, वह इससे भी यई बीती अवस्था में कैसे रह सकता है। वेस्टरमार्क ने यह कह दो दिया लेकिन उसने मनुष्य और पक्षी को परिस्थितियों को अनपेक्षित करके नहीं देखा।

उससे पहले तो वेस्टरमार्क को यह बेलना चाहिए था कि सभी पक्षी मनुष्य की तरह समूह बनाकर नहीं रहते। जिस प्रकार मनुष्य ने भयभीत होकर अपने आपको संघटित किया था इस प्रकार की प्रवृत्ति सभी पक्षियों तथा पशुओं में नहीं मिलती।

दूसरी बात यह है कि पक्षी तो अकेले भी इधर उधर से अपना खाना इकट्ठा करके ला सकता है लेकिन मनुष्य तो समूह के रूप में ही रहकर अपना खाना ढूँढ सकता था, नहीं तो जंगल जीवन एक क्षण भी सुरक्षित नहीं रह पाता। इस समूह के बीच अलग अलग परिवारों की कल्पना करना किसी प्रकार तर्कपूर्ण बात नहीं है क्योंकि यदि स्त्री और पुरुष इस तरह के जोड़ों के रूप में बँध जाने तो सामाजिक रूप से ही व्यक्तिगत जीवन और ईर्ष्या बढ़ जाती। या तो एक स्त्री के पीछे दो लोगों में झगड़ा होता या एक पुरुष के पीछे दो स्त्रियों के हृदय में ईर्ष्या जागती। इस तरह की प्रवृत्ति पैदा होते हैं

समूह लम्ब लम्ब होकर बिखर जाता। इसलिए उस आदिम व्यवस्था में परिवार के रूप में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के लिए सामाजिक परिस्थिति अनुकूल नहीं थी।

फिर यदि एक बार मान लीजें कि एक पुरुष और स्त्री जोड़े के रूप में उस समूह के भीतर रहते भी वे तो यह कैसे मान लें कि उनके बीच सम्बन्ध केवल अपने जोड़े तक ही सीमित थे क्योंकि एक पतिव्रत तथा पतिव्रत के आदर्श तो बहुत बाद का सामाजिक परिस्थितियों के बीच पैदा हुए हैं। उस समय स्त्री अपने जोड़े के पुरुष के अलावा अन्य पुरुषों के साथ यौन-सम्बन्ध जोड़ सकती थी, उसी प्रकार पुरुष को भी स्वतन्त्रता थी। इसीलिए जोड़े के रूप में भी परिवार की कल्पना करके यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि उस आदिम समाज में कामाचार नहीं था। हरिदत्त देवानन्द ने बेस्टरमार्क की कल्पना में आकर यह सिद्ध करने का बहुत प्रयत्न किया है कि भारतवर्ष में वह स्वतन्त्र सम्मेलन की स्थिति कभी नहीं थी। भारतवर्ष में आदिम मनुष्य क्या अधिक सुसंस्कृत होकर पैदा हुआ था जो उसने प्रारम्भ से ही इस कामाचार की स्थिति को अतिरिक्त समझकर इसे स्वीकार नहीं किया।

इस प्रकार के तर्कों का जह्म सब किसी प्रकार अपने इस बसा की रक्षा करना है कि हम कभी भी पशुओं की तरह इस धृष्टी पर नहीं रहे हैं लेकिन क्या इतिहास के सत्य पर इस प्रकार पर्दा डाला जा सकता है। बेस्टरमार्क का मनुष्य समाज के सम्बन्ध में सम्मेलन एकांगी है। उसने बिना अधिक विचार किये ही मनुष्य के व्यवहार को पशु-पक्षियों के व्यवहार के आधार पर समझने का प्रयत्न किया है लेकिन मनुष्य और पशु-पक्षी में बहुत अन्तर होता है। उनका व्यवहार भी भिन्न प्रकार का होता है। हाँ कहीं कहीं साम्य भी होता है, लेकिन प्रत्येक स्थान पर साम्य देखना उचित नहीं है। फिर पशुओं के बीच तो मनुष्य से भी अधिक स्नेह-आधार चलता है। मनुष्य समाज में तो मर्दा का भाव भी यौन-जीवन के साथ पैदा हो गया था लेकिन पशुओं के बीच यह सब कुछ नहीं है। उनके बीच यह सिद्ध करना असम्भव है कि एक मादा का केवल एक नर से ही यौन-सम्बन्ध रहता है और उसी प्रकार एक नर केवल एक मादा तक ही सीमित रहता है, बल्कि इसके विपरीत पूरी तरह स्नेह-आधार इनके बीच मिलता है, फिर मनुष्य के बारे में ही यह क्यों सोचा जाय कि उसने अपने आदिम काल में ही एक पुरुष और एक स्त्री के जोड़ों के रूप में रहना प्रारम्भ कर दिया था ?

उस स्नेह-आधार की स्थापना में बिनाह वा प्रयत्न ही नहीं उठना। नए के प्रभार के स्त्री पुरुषों का यौन-सम्बन्ध तो उसी समय से प्रारम्भ हो जाता था

बल से उसके योग्य हो जाते थे। उस समय स्त्री को यह प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी कि विवाह के पश्चात् ही उसको सम्भोग का अधिकार प्राप्त हो सकता है। विवाह का कोई नियम न होने के कारण कैंबारी और विवाहिता के बीच किसी प्रकार की मर्यादा की रखा नहीं थी।

(२) इसके बाद की स्थितियाँ मर्यादा और नियमों की स्थितियाँ हैं। इस स्वच्छन्दता के बाद स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों की सीमा निर्धारित की जान लगी। पहली सीमा पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्धों के बारे में खींची गई। समाज ने यह नियम बना दिया कि पिता पुत्री के साथ सम्भोग करने का अधिकारी नहीं है।

यह प्रथम विवादास्पद है। प्रादिमवासी सदा अपनी माता को ता जानता था लेकिन पिता का ज्ञान होना असम्भव था। जिस समूह के भीतर सभी पुरुष सभी स्त्रियों के पति हैं, उस समाज में कोई बच्चा यह निश्चित रूप से कैसे बता सकता था कि प्रभु कौन था उसका पिता था। इस हास्य में तो सभी पुरुष जो वहाँ की स्त्रियों के साथ सहवास करते थे उस बच्चे के पिता थे। इसी प्रकार पर लड़की समूह के उन सभी पुरुषों को पिता के रूप में जानती थी जो उसके माता तथा उसके साथ की स्त्रियों के साथ सहवास करते थे। इस तरह पिता की पहचान होती थी। अब नियम बना कि यह पिता अपनी पुत्री के साथ सम्भोग नहीं करेगा। क्या कारण था कि इस प्रकार की सीमा पिता और पुत्री के बीच निर्धारित कर दी गई?

यह इसका कारण बुद्ध-वर्ग तथा अन्य बृद्ध वर्ग का धमकावट था। जब लड़की बचान होती थी तो एक तरफ तो उसी का बचान भाई उसके साथ सम्भोग करना चाहता था और दूसरी ओर भवेद माता को छोड़कर भवेद पिता भी उसी लड़की के साथ सम्भोग करना चाहता था। वहाँ संघर्ष होना प्रति स्वाभाविक था। बचान लड़की भवेद पिता से अधिक बचान भाई को चाहती थी और अपनी इच्छा से उसे ही पहले सहवास का अधिकार देती। फिर बचान भाई भवेद पिता से अधिक ताकतवर होता था इसलिये पिता उसको चुनौती देकर लड़की को अपने नियमों में नहीं सकता था। इस तरह पिता और पुत्री के बीच सम्भोग सम्बन्ध अन्तर्बिरोध पैदा हुआ जाने के कारण टूटने लगे। स्वयं पुत्रियाँ ही इसे नहीं चाहती थी और फिर उनके साथ समूह के बचान चाहती इन्हीं और भी अधिक नहीं चाहते थे। यही कारण था कि यौन ही नियम बन गया कि पिता अपनी पुत्री के साथ सम्भोग नहीं कर सकता। समूह में बचान और शक्तिशाली भोगी भी हो बात अधिक मान्य होनी थी, क्योंकि वे

ही तो माता पिता की रक्षा का भार अपने ऊपर सेते थे और हर तरह धनधर्मों से दूर रहने का ही काम था ।

इस प्रकार पहली मर्यादा स्थापित हो गई लेकिन प्रायिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के बीच किसी प्रकार परिवर्तन नहीं आया । मनुष्य अपनी सभी जगहों पर वनवास में बिचरता रहा । जीवन निर्वाह का साधन भी उसके थे ही कर्ममूल फल और पशुधर्मों का नाश था । इसीलिये स्त्री और पुरुष के अधिकार समान थे । कोई एक दूसरे पर आश्रय नहीं करता था । माता की साम्प्रदायिक व्यवस्था की यही कारण था कि स्त्री शारीरिक दृष्टि से पुरुष की अपेक्षा कमजोर होते हुए भी उस व्यवस्था में पुरुष के द्वारा पूज्य मानी गई । इसी मातृसत्ता का प्रभाव है कि पुत्र का माता के साथ सम्बन्ध सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया । पिता पुत्री का सम्बन्ध भी समाज में बराबर लेकिन पुत्र-माता का सम्बन्ध नहीं बराबर । पशुधर्मों में सम्भवतया माता के रूप में माता को वह सम्मान प्राप्त नहीं है और न उसके प्रति इस प्रकार की मर्यादा ही है ।

(१) इसके परचाय एक दूसरे तरह की मर्यादा समाज के भीतर आई । वह भी माई और बहिन के बीच यौन-सम्बन्धों को बहिष्कृत करके रखने वाली मर्यादा । अभी तक तो केवल पिता को ही इस सीमा के भीतर रखा गया था जब माई और बहिन के बीच भी सीमा खड़ी कर दी गई । यद्यपि वह मर्यादा लागू करना काफी कठिन था क्योंकि पहली परिस्थिति में तो ब्रह्मण और अवेद उद्भूत के स्त्री पुष्प का सम्बन्ध होने के कारण यौन-सम्बन्धों के अन्तर्गत अन्त विरोध उठ खड़ा हुआ था लेकिन माई-बहिन के बीच तो इस प्रकार के अन्तर्विरोध की कोई आवश्यकता ही नहीं हो सकती थी फिर भी मर्यादा स्थापित हुई । इसका क्या कारण था ?

इसका कारण समूह या गण की स्थिति है । जब तक समूह स्वयं अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य रख सका जब तक तो माई-बहिनों के सम्बन्ध सम्बन्ध नहीं रहे लेकिन क्योंकि समूह अपनी अस्तित्व स्थिति पर विचार करने लगा और आपस में एक दूसरे समूह से सम्बन्धिता करके धान्तिपूर्वक रह कर अपने जीवन-निर्वाह की बात सोचने लगा वहीं माई बहिन के सम्बन्ध सम्बन्ध टूट गये । जब विवाह प्रणाली अपने प्रारम्भिक रूप में उठी । एक गण का पुरुष दूसरे गण की स्त्री के साथ विवाह करने के लिये उस गण में आकर रहने लगा । मातृसत्तात्मक प्रभाव होने के कारण पुरुष का ही स्त्री के गण में आकर रहना पड़ता था । इस प्रकार एक गण से दूसरे गण का सम्बन्ध स्थापित हो गया । एक गण के सभी पुरुष अपने गण की स्त्रियों से सम्बन्ध न करके दूसरे गण की स्त्रियों के साथ विवाह करने लग । इसी प्रकार दूसरे गण के पुरुष

भाकर इस गण की स्त्रियों के साथ विवाह करने लगे। इस तरह बार्ह-बहिन के सम्मोह-सम्बन्ध हुए गये और बीरे-बीरे इस दिशा में मर्यादा बाँध की गई। जब पति-पत्नी के रूप में एक ही गण में दो गणों के पुरुष और स्त्री मिलते थे। सभी पुरुष अपने आपको माई की तरह समझते थे। यद्यपि वे सगे भाई नहीं भी होते थे फिर भी सगे भाइयों की ही भावना उनके हृदय के अन्तर्गत होती थी। फिर स्त्रियाँ भी एक दूसरी को बहिन समझती थीं। इस प्रकार के परिवार को देखने से पता चलता है कि जिस तरह मनुष्य अपनी सामाजिकता का विस्तार करता गया है। पहले वह घरेलू था इसके पश्चात् उसने समूह बनाया। उस समूह के पश्चात् उसने दूसरे समूहों से उगका सम्बन्ध बोझा। इस तरह बैसे-बैसे समाज बिकसित करता गया जैसे ही स्त्री पुरुष के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बढाते बढे गये। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। प्रत्येक परिवर्तन प्रगति के रूप में ही आया है। कोई भी मर्यादा समाज की पति को रोक-कर नहीं नहीं हुई बल्कि उसने समाज और व्यक्ति को प्रगति के पथ की ओर प्रसरण किया है।

सबसे पहले पिता-पुत्री के सम्मोह सम्बन्ध को रोकने का कारण यह भी था कि प्रत्येक प्रसव उन्नत होते स्त्री पुरुषों के सहयोग से सन्तानें स्वस्थ और हृष्टपुष्ट नहीं होती थी। इसलिये गण की शक्ति का ह्रास होता था यही कारण था कि इस सम्बन्ध को हटा दिया गया और फिर जब बराबर की उन्नत होते स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध जुड़ा तो सन्तान भी हृष्ट-पुष्ट पैदा होने लगी। इस तरह यह अपनी शक्ति बढ़ाने लगा।

दूसरी मर्यादा बार्ह-बहिन के सम्बन्धों को रोकने के सम्बन्ध की है। उससे भी समाज आगे की ओर हो गया। यह अपने आप में ही सीमित न रहकर दूसरे गणों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने लगा और इस प्रकार व्यक्ति की सामाजिक भावना का प्रसार होने लगा। इस तरह इस सीमा के निर्धारित होने पर व्यक्ति अपने एक छोटे दायरे की छोड़कर बड़े दायरे का बीच आ गया।

इन समय की मूलतः धार्मिक परिस्थिति उसी प्रकार की थी। मनुष्य अपनी अंतर्हीन अवस्था से बर्बर अवस्था की ओर प्रसरण हो रहा था। धार्मिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष का अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र अस्तित्व था। प्रभातक आनुमत्तरमक समाज ही बना था रहा था। स्त्री वरुण मूल जन इन्द्रदेव करती थी। इनके साथ ही पशुओं को पालना भी प्रारम्भ हो चुका था। वह नाम भी स्त्रियों को ही करमा पड़ता था। पुरुष अंग में आकर विचार करता था। पशु पालने के साथ ही जमीन में पीछे उगाना मनुष्य ने प्रारम्भ कर दिया था। इन सभी बातों में लोगों स्त्री-पुरुष का शायद बराबर का ही रहता था इनलिये

कोई आधिक्य दृष्टि से एक दूसरे पर निर्भर नहीं था। स्त्री का सम्मान था और उनके अधिकार अभी तक भी पुरुष से अधिक थे लेकिन गण के भीतर अभी तक परिवार के रूप में स्त्री पुरुष नहीं बँटे थे। जोड़े के रूप में यौन-सम्बन्धों की सीमा नहीं खड़ी हुई थी। उस समाज में तो सामूहिक विवाह-प्रणाली थी। गण गण के पुरुष सामूहिक रूप से ही अपनी पत्नियाँ रखते थे। सभी पर सभी का अधिकार होता था। इरोकोई लोगों के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध थे इसके बारे में हम पहले ही लिख चुके हैं। इसी प्रकार हवाई द्वीप में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध थे।

हेरोडोटस तथा अन्य प्राचीन लेखकों ने खोज करके इस प्रकार के समाज पर काफी प्रकाश डाला है और यह पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है कि उन समय सामूहिक विवाह-प्रणाली वास्तविक रूप से समाज में प्रचलित थी।

इ पत्रिका मिचिमरी लोरीमर पिचम ने आस्ट्रेलिया में यह कर क्यों तक वहाँ की आदिम जातियों के जीवन का अध्ययन किया और उसने इतिहासी आस्ट्रेलिया में माउन्ट पैम्बियर के इन्डिजनों (Australian Negroes of Mount Gambellar) को देखा। पूरी जाति दो वर्गों में बँटी हुई है। एक वर्ग का नाम है क्रोकी (Kroki) और दूसरे का नाम है क्यूमा-ट (Kumito)। इन दोनों वर्गों में से प्रत्येक की अपनी एक सीमा है। किसी एक वर्ग के स्त्री पुरुष आपस में एक दूसरे के साथ सम्भोग नहीं कर सकते बल्कि दूसरे वर्ग के साथ ही उनका यह सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। नियम यह है कि एक वर्ग का पुरुष दूसरे वर्ग की स्त्रियों का पति है। प्रत्येक स्त्री पर उसका अधिकार है, इसी प्रकार दूसरे गण या वर्ग के पुरुष का अपने से दूसरे वर्ग की स्त्रियों पर अधिकार है। अधिकार का अर्थ केवल सम्भोग का ही समझना। इस प्रकार दोनों वर्गों के बीच की पुरुष सामूहिक विवाह-प्रणाली के द्वारा एक दूसरे से बँधे हुए हैं।

आस्ट्रेलिया में अन्य स्थानों पर भी इसी प्रकार की विवाह-प्रणाली मिलती है। इस प्रणाली के साथ आधिक्य दृष्टि से भी एक गण का दूसरे गण के साथ आशय प्रधान बनता था क्योंकि आदिमवासियों ने यह भी निबन्ध बना दिया था कि जब पुरुष आकर अपनी पत्नी के गण में रहेगा तो वह अपने गण से कुछ उपहार लेकर आयेगा। इस तरह एक गण की वस्तुएँ दूसरे तक पहुँचती थीं। यह एक प्रकार का आर्थिक सम्बन्ध था। इसका मूल कारण यही था कि गण आर्थिक दृष्टि से भी कभी कभी निस्सहाय से हो उठते थे। आर्थिक अछिसाभी गण कमजोर गण को कभी कभी ऐसे स्थान पर लदेड़ देता है जहाँ उनकी जाना निजाना मुश्किल हो जाता था। इस परेशानी के कारण आदिमवासियों ने इस प्रकार का निबन्ध बनाया। इस दृष्टि से देखने पर इस

पर्याय के तीन आधार हैं। पहला राजनैतिक आधार। मैं यहाँ राजनैतिक सम्बन्ध का ही प्रयोग करूँगा क्योंकि राजनैतिक में भी राजा के जल्दों कुर्यों को मिला जाता है जो वह अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए करता है। यद्यपि इन आदिम यणों में कोई राजा नहीं था लेकिन फिर भी सामूहिक रूप से इन्होंने अपनी रक्षा के लिए यह तो महसूस किया था कि जब बिना दूसरे गणों के साथ समझौता किये काम नहीं चल सकता। इसी दृष्टि से दो यणों के बीच समझौते होने लगे और इस तरह गण आपस में टक्कर लेते थे। उसी प्रकार प्राक् राज्य एक दूसरे से समझौता करके कमबोरे राज्य का खोपण करने की प्रवृत्ति रखते हैं। उत्कृष्टि के विकास के कारण कुत्समकुत्सा किसी पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति तो गढ़ा रही है लेकिन फिर भी जब स्वार्थ घटका है तो सारे मानवता के मूल्यों को धमक उठा कर रख दिया जाता है। इसलिए मैंने यहाँ राजशाहि सम्बन्ध का प्रयोग किया है, क्योंकि देखा जाये तो मनुष्य की प्रवृत्ति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। युग के अनुसार केवल रूप बदल जाते हैं व्यवस्था दूसरे प्रकार की हो जाती है लेकिन मूल में वही प्रतिकार की प्रवृत्ति बावन्ध रहती है।

दूसरा प्राथमिक आधार था। प्राथमिक दृष्टि से मनु इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्राथमिक सन्तुष्टिवासी हो गया।

तीसरा आधार सन्तान सम्बन्धी था। आदिमवासियों ने यह देखा होगा कि माई-बाहिन के सहवास से जो सन्तान पैदा होती है उससे अच्छी और सन्तुष्टिवासी सन्तान यह होती है जो दो भलग भलग जो पुरुषों के सहवास से पैदा होती है। इसे तो प्राक् के सभी डॉक्टर मानते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि यह विचार आदिमवासी के मस्तिष्क में आया कैसे होगा? इसके लिए मेरा तो यही अनुमान है कि पहले एक दूसरे गणों में आपस में टक्कर होती ही थी। उस टक्कर में जब एक गण दूसरे को पराजित कर देता था तो उसकी भूमि पर जाने उस स्थान पर वहाँ वह अपना जीवन निर्वाह करता था, पुरा प्रतिकार कर लेता था और उस गण के सभी स्त्री-पुरुषों को दास बना लेता था। दास प्रथा उसी समय से चली आ रही है। पुरुष में जो पुरुष होते थे उन्हें मार खाता जाता था और स्त्रियों को रख लिया जाता था। इनका कारण यही हो सकता है कि स्त्रियाँ तो पुरुषों को सम्भोग का धामन्द देती थी लेकिन पुरुषों से लक्ष्य भय बना रहता था। हो सकता था कि वे पुरुष अपनी दासावस्था में बिजोड़ करके बिदेठाओ को हानि पहुँचाते इसी आपत्ति से बचने के लिये उन सभी को मार खाता जाता था। यही-यही उनको छोड़ भी दिया जाता था; लेकिन उस रिपति में उन्हें माई के रूप में स्वीकार कर लिया जाता था, क्योंकि दास के रूप



में मनुष्य का ग्रहम् सदा से ही विरोध करता आया है। अब मनुष्य में दूसरे यश की स्त्रियों का बर्ह और पुत्र्य भी चिन्तको नहीं मारा जाता था और जो भाई बतकर गए की सक्ति बढाते थे। आकर समानाधिकार के साथ रहने लगे। दूसरे यश की स्त्रियों के साथ विवेका गए के पुत्र्य सहवास करके जो सम्मान पैदा करते थे, जो निश्चित रूप से ही अधिक सक्तिवादी रही होगी, इसी प्रकार दूसरे यश के पुत्र्यों ने आकर विवेका गए की स्त्रियों के साथ रह कर जो बन्धे पैदा किये होये वे अधिक स्वस्थ और सुस्थिर रहे होये। इसी कारण बीरे बीरे आदिमवासियों के मस्तिष्क में यह विचार आया होगा कि भाई-बहिन का यौन-सम्बन्ध किसी भी दृष्टि से आवश्यक नहीं है और उसके लिये एक समान मर्यादा भी बना दी गई। इस सम्बन्ध में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

यौन-सम्बन्धों की इस छीछरी संविन तक पातिव्रत का आदर्श नहीं आ पाया था। स्त्री और पुत्र्य स्वच्छन्द बर्ति से विचरने लगे थे। सिर्फ पिता-पुत्री, भाई-बहिन के सम्बन्ध में ही मर्यादा थी बाकी यौन-सम्बन्धों की छूट थी। यह उस समाज की वास्तविक स्थिति है। उसको उही काल की परिस्थितियों के बीच रह कर हमें देखना चाहिये। आज जो पाप-पुण्य की बारम्बा है, उस दृष्टि से देखने पर वह सबकुछ झुल्लि झुल्लि भैसा लगता लेकिन इस प्रकार एक युव के मूर्खों के आचार पर दूसरे युव के सम्बन्धों का निर्णय करना कुत्सित समाज शास्त्रीय पद्धति का परिचायक है। इसलिये इसमें सन्निवृत्त होने का कोई कारण नहीं है। यदि इसी दृष्टि से हमने इतिहास का अध्ययन किया तो आज बीसवीं सदी में हमें अपने पूर्वज राम के उस काल पर भी सन्निवृत्त होना पड़ेगा जब उन्होंने केवल अपने तथा ब्राह्मण-वर्ग के स्वार्थ के लिये पूरे धर्म का बर्ह किया था।

प्राचीन काल में पातिव्रत सत्कार का भी एक विशिष्ट नियम था। किन्तु वास्तव में वह अतिथि आता था तो उसको घर की स्त्रियों में से किसी के साथ भी सम्मोष करने का पूरा अधिकार होता था। पहली रात को ही घर का आतिथ्य अपनी पत्नी को उसके पास ले जाता था और वे रात-भर सहवास करते थे। आज क्या यह व्यवस्था झुल्लि नहीं जाती जायेगी ?

यह सामूहिक-विवाह-प्रणाली बर्बरकाल तक चलती रही। इस बीच आर्थिक परिस्थिति निरन्तर बदलती रही। पहली जंगली अवस्था में तो पुरुष और स्त्री की सदा आर्थिक दृष्टि से बराबर ही थी। जंगली अवस्था की अन्तिम स्थिति में मनुष्य और बाण तथा पत्थर के हथियार लेकर पुरुष शिकार के लिये

माता या तो स्त्री उसके पीछे बच्चों को समझती थी और अन्य मूल पत्र इकट्ठा करती थी। इसीसे पुरुष की मत्ता उठने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पुरुष में धार्मिक महत्त्वपूर्ण कार्य तो स्त्री करती थी। बच्चे पैदा करता ही उसका प्रारम्भिक कार्य था फिर उनका पोषण करना और उनके साथ अन्य मूल पत्र इकट्ठा करना उसके दूसरे कार्य थे। इन सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों के आधार पर स्त्री पुरुष में भी धार्मिक सम्मान पाती थी लेकिन बर्बरकाल में बाहर स्त्री-पुरुष का द्वन्द्व कई करबट बदलने लगा। यौन-सम्बन्धों की सीमरी व्यवस्था बर्बरकाल में काफी दिनों तक रही। इसी क्रम में स्त्री को मत्ता को हटाकर पुरुष की मत्ता घासे बढ़ी और सामूहिक विवाह प्रणाली के स्थान पर स्त्री और पुरुष की जोड़े के रूप में विवाह-प्रणाली उठी। इन द्वन्द्व की पृष्ठभूमि पर विचार करना और देखना है कि क्या आज भी स्त्री और पुरुष का द्वन्द्व इसी प्रकार रहा चल रहा है।

कार्ल मार्क्स ने कहा है कि वर्ग संघर्ष का पहला रूप स्त्री-पुरुष के बीच चलते द्वन्द्व में मिलता है। इन द्वन्द्व में जिनके पास भी है सामान बाहर बेगिष्ठ हो जाते हैं जिनके बल पर दोनों का जीवन निर्वाह होता है, वहीं वन हमारे वर्ग की स्वतन्त्र मत्ता को छीन कर उसे अपने बासीन कर लेता है। यह धार्मिक आधार पर टिका हुआ द्वन्द्व है।

कार्ल मार्क्स का कहना काफी हद तक ठीक है क्योंकि जैसे जैसे पुरुष के रूप में वे सभी मानव इकट्ठे होते गये जैसे ही जैसे वह स्त्री का स्वामी बनता गया और धर्म में ही वह उनका पुरुष देखता वह बन बैठा। प्रारम्भ से ही इन द्वन्द्व की सामूहिकता को देखें। महाभारत में भीष्म ने कनिष्ठ में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को द्वन्द्व को (ही) संज्ञा दी है।

बर्बर काल के प्रारम्भिक समय में मनुष्य पशु पोषण करने के लिए उनके साथ ही पीछे उगा कर कुछ काम के लिये पशु भी करने लगे थे। पशु पोषण उनकी दैव भाव करना स्त्रियों का काम था। पुरुष तो अपनी ठाकुर के बल पर पशुओं को स घाता था। उनके दो रास्ते थे। या तो वह जंगल में जाकर उनका बाँध लता था और उनसे बहुत दिनों तक खान का मांस बनता था या फिर हमारे गलों के पशुओं को छीनने के लिये सड़ा हुआ करती थी। प्रारम्भिक समय के पशुधन को छीन जाता था। इन तरह पुरुष तथा पशु करना रहता था। इन सम्बन्ध में उसे धार्मिक बाहर रहना पड़ता था। स्त्रियाँ बच्चों, पशुधन तथा अन्य वस्तुओं को सम्मानती थी, जिससे घर की मात

किन्तु की तरह पुरुष उनका सम्मान करता था। मातृसत्ता का यह भी एक कारण है। यहाँ तक स्त्री का स्थान पुरुष से ऊँचा ही रहा लेकिन विशेष बात विचारणीय यह है कि पुरुष अधिक महत्वपूर्ण और कठिन कार्य करने लगा था। पशुपति जिसे काफी बड़ी सम्पत्ति समझ जाता था, पुरुष के हाथ ही लाई जाती थी, इसलिये उस मातृसत्तात्मक समाज में भी पुरुष अपने आपको काफी महत्वपूर्ण समझने लगा था।

व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय अभी तक नहीं हुआ था। सस्त्र-अस्त्र, तथा पशुपति आदि सभी कुछ गण-सम्पत्ति थी। बर्बरकाल की मध्यावस्था में मनुष्य ने कुछ घाने प्रवृत्ति की। सिंघाई करके वह बैठी करने लगा। पशुओं के माँस के घससा उनका भोजन भी पीने लगा। मकान भी उसने बना लिये। वह यहीं से व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। घसस-घसस कर बनाकर खाने की प्रवृत्ति ही व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित है। फिर सो भूमि पर किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में अधिकार नहीं था। केवल घससों तथा पशु-जन पर ही उसका व्यक्तिगत अधिकार हो पाया लेकिन यह अधिकार एक दिन में ही नहीं हो गया। इसको घाने में हजारों वर्ष लगे। इसका उदय तो टॉटम गलों के आसुरी पुजारियों के व्यक्तिगत अधिकार के साथ हुआ। अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य टॉटम की उपासना करता था। हर एक गण का सर्व वस्तु बाजर, कुबज, आदि कोई न कोई टॉटम होता था।

टॉटम क्या होता है। इसको पहले स्पष्ट कर दें। टॉटम वह वस्तु होती है जिससे बसवासियों को किसी तरह का लाभ पहुँचता है और क्रान्तिकार में आकर उसकी वे वस्तु समझकर अपने को उसी में उत्पन्न समझने लगते हैं। उसे ही वे अपना पूर्वज बताते हैं। बाजर टॉटम के उपासक कहेंगे कि बाजर ही उनका पूर्वज है। उसी से उनकी उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार सर्व वस्तु टॉटम माने कहेंगे।

इन टॉटम देवताओं की उपासना आज के रूप में होती है। गण के लोग एक स्थान पर इकट्ठे होकर अपने-अपने टॉटम देवता के कार्य-व्यापार की नकल करते हैं और उससे वह विश्वास कर लेते हैं कि जब वे टॉटम पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लगे हैं। वे उसको अपने बश में कर सकते हैं। सर्व टॉटम माने सर्व की शान की नकल करके यह विश्वास कर लेते हैं कि वे जब सर्व की शान में रह सकते हैं। इस तरह टॉटम का प्रारम्भिक विश्वास रहा है।

इन टॉटम-उपासना के साथ पुरोहित उठा था, जो उपासना में विशेष

महत्त्व रखता था। उसके बारे में बिश्वास था कि वह धर्म में टॉटम बैठा है।  
 बात करता है। इसीसे उस पुरोहित को सभी आदिमवासी मिलकर कुछ विशेष  
 भाग देते थे और इस तरह पुरोहित की व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय हुआ।  
 यही व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार प्रारम्भ हो जाता है। बीरे-बीरे पूरा  
 गण ही व्यक्तिगत सम्पत्ति के धाने पर अपना साम्यवासी रूप खो बैठे।

हेतिहर व्यवस्था का जाने पर पुत्र का महत्त्व और भी बढ़ गया क्योंकि  
 वह पशुधन एकत्रित करने के समस्त श्रेष्ठ को जोड़ता था। स्त्री तो केवल  
 घर की देखभाल करती थी। लेकिन इस व्यवस्था में भी स्त्री माता के रूप में  
 मुख्य थी। इनके साथ ही पुत्र को हर बच्चा परमा समझा जाता था। जब  
 वह विवाह सम्बन्ध में बँध कर अपना बस छोड़कर दूसरे गण में जाता था तो  
 उस गण के लोग उसे अपना नहीं समझते थे क्योंकि उसका टॉटम बैठा दूसरा  
 होता था। माता के अधिकार के सामने उसके कुछ भी अधिकार नहीं होते थे।  
 झगड़ा होने पर उसे गण से बाहर निकाला जा सकता था क्योंकि उसका अपना  
 अधिकार अपनी माता के गण में होता था। उसी गण के लोग उसे अपना  
 समझते थे और स्त्री भी उसको अपने गण में ले सकती थी। इस व्यवस्था ने  
 पुत्र की स्थिति को काफी कमजोर बना दिया था। पुत्र व्यक्तिगत सम्पत्ति  
 का स्वामी नहीं हो गया था। यहाँ तक कि वह सरदार के रूप में गण का स्वामी  
 भी हो गया था लेकिन इस नियम ने उसके अधिकार को सदा चुनौती दी।

डॉ० मैत्तिनेयिवा ने मैत्तिनेयिवा में बर्बरकामीय समाज-व्यवस्था पाई है।  
 वहाँ अनुष्य का सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार है लेकिन पहला अधिकार माता  
 का है। उसी के सम्बन्धियों की श्रृंखला में उत्तराधिकार चलता है। गण  
 का सरदार बाह्यर भी अपनी सम्पत्ति का अधिकारी अपने पुत्र को नहीं बना  
 सकता। सम्पत्ति पर उसका अधिकार तो उसके जीवन-काल में ही रहता था।  
 मरने के पश्चात् तो स्त्री ही उसकी स्वामिनी होती है और उसके भाई आदि  
 उसका उत्तराधिकार पाते हैं। पुत्र तो उस गण में जमा जाता है जिस गण से  
 उसकी माता आती है और वहाँ उसको सम्पत्ति के अधिकार प्राप्त होते हैं।  
 मैत्तिनेयिवा-वासियों के बीच स्त्री को ही अपना गण छोड़कर पुरुष के गण  
 जाना पड़ता है। इससे पहले पुत्र ही स्त्री के गण में जाता था। लेकिन दोनों  
 ही स्थितियों में पुत्र पिता के रूप में किसी प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं पाता है।

एक बार मैत्तिनेयिवा वासियों के बीच झगड़ा हो गया। सरदार के लड़के  
 ने किसी तरह की बहमायी कर दी, उसने दण्ड में माता के सम्बन्धी तथा  
 गणवासियों ने उस लड़के को गण से बाहर निकाल दिया और वह जाकर अपनी

माता के बगुन में रहने लगा। उसकी माता रो-रोकर उसकी याद में घर बई। पिता को भी काफी दुःख हुआ। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मातृसत्ता के रहने पर पुरुष व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार पाकर भी स्त्री का स्वामी नहीं बन पाया स्त्री स्वतन्त्र थी। फिर भी पितृसत्ता के लिए सारी पूँछ-भूमि तैयार हो चुकी थी। पुरुष एक स्त्री के प्रसादा कई स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था। मैसिनोबस्की ने मैसिनोबिया में सरदार के कई पत्नियाँ देखीं। स्त्री अपना गला छोड़कर पुरुष के गण में जाने भी लगी थी। फिर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि पुरुष पिता के रूप में अपनी सम्पत्ति से प्रेम भी करने लगा था और सदा यही सोचा करता था कि किसी प्रकार समाज व्यवस्था बहालकर पुत्र को उत्तराधिकार मिलने लगे। माता भी पुत्र के दूसरे गण में जान पर दुःखी होती थी। उसे अपने माइनों को प्रपेक्षा अपनी सम्पत्ति से अधिक प्यार था। इन सभी कारणों ने पुरानी व्यवस्था को भकभोर कर विरा दिया और जब पुरुष का यह पता लगा कि माता के साथ वह भी पिता के रूप में सम्पत्ति बँटा करने में अपना महत्त्व रखता है, उसी समय मातृसत्ता का अन्त हो गया और पुरुष पूरी तरह स्वामी बन गया। अब उत्तराधिकार पुत्र को ही जाने लगा। स्त्री केवल घर की देखभाल करने तक ही सीमित हो गई।

अभी तक मैसिनोबिया में मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था समाप्त नहीं हुई है, लेकिन अन्य स्थानों पर जहाँ मनुष्य सम्पत्ति के युग में रह रहा है, वही कारणों से मातृसत्ता का अन्त हुआ होगा। उस दिन पुरुष इस दुन में पूरी तरह विजयी हो गया। इससे पहले उसकी स्थिति ठीके से नहीं थी और ऐतिहासिक व्यवस्था तक वह काफी महत्त्व पा गया था लेकिन फिर भी स्त्री के सामने उसका स्वामिनीता था। पूरी तरह वह अपनी सम्पत्ति का स्वामी भी नहीं था।

कितने हजार वर्षों तक यह दुन इस तरह चलता रहा होगा। जैसे-जैसे आधिक सम्पत्तियों में विपन्नता घाटी गई और पुरुष के हाथ में उत्पादन के साधन केन्द्रित हो गये उसी समय में उसने स्त्री की सत्ता को चुनौती दे दी। उसी समय से पितृसत्ता की नींव डाल गई लेकिन परम्परा के रूप में जो मातृ अधिकार रहा उसको वह गिरा नहीं सका। उसका कारण पिता के रूप में उसकी प्रजापिता ही रही। धीरे-धीरे वह प्रजापिता भी दूर हो गई और स्त्री का दर्जा सदा के लिए नीचे गिर गया। फिर उसको स्वतन्त्र सम्पत्ति का भी वह अधिकार नहीं था। एक पुरुष को पति मानकर वह उसके घर में रही। पतिव्रत की यही पूँछभूमि है। इसी स्थिति में पतिव्रत प्रथा का समर्थन देकर आया। यहाँ एक बात याद रखनी चाहिये कि इस स्त्री की इस स्थिति

के लिए केवल पुत्र ही उत्तरदायी नहीं है। स्त्री भी स्वयं इसी व्यवस्था के अन्तर्गत अपनी सुरक्षा मांग रही थी। तभी उसने पुत्र के इस अधिकार को खोकार कर लिया।

जोड़े के नाम स्त्री-पुत्र के सम्बन्ध किस तरह अपनी पूर्ण स्थिति की पुष्टि में स्त्री के लिए अधिक कामगारी मिळ चुके यह देखना भी आवश्यक है।

फ्रेडरिक ऐंगल्स (Fredrick Engels) ने अपनी पुस्तक 'परिवार व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (The origin of the family private property and the state) में उस स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है कि जब सामूहिक पिशाह प्रजाती पर आधारित यूनेस्कुषन परिवार (Pomaluan family) टूटने पर जोड़े का परिवार (Pairing family) उठाने लगा था। उसने लिखा है कि गणों में स्त्रियों का हरण (abduction) होना लगा था। एक व्यक्ति अपने मित्रों की सहायता से किसी स्त्री को जिसे वह चाहता था छीन लाता था और फिर वह और उसके सभी मित्र उसके साथ सम्मोग प्रारम्भ करते थे। फिर वह उस व्यक्ति की पत्नी हो जाती थी जो भावे बाँधकर पहले उसे छीन लाया था।

फिर ऐंगल्स लिखते हैं कि यदि वह स्त्री धाम जाती थी तो फिर दूसरा आदमी अपने मित्रों की सहायता से उसे पकड़ लेता था तो वह भी उसे अपनी पत्नी बनाकर मित्रों के साथ सम्मोग करता था। इन तरह स्त्री पर व्यक्तिगत अधिकार और बहुपत्नी प्रथा साथ साथ उठी।

यह प्रश्न विचारणीय है। पुत्र कम इस प्रकार हरण करने लगा। इन पहले ही निम्न बुद्धि है कि जब एक गण दूसरे गण पर आक्रमण करता था, तो उसकी स्त्रियों को भी छीन लाता था और उन सभी स्त्रियों के साथ गण के पुरुषों का सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। उस समय भी और उससे पहले भी वह झगड़ा तो आदिमजातियों में होता ही होगा कि किसी सुन्दर स्त्री पर किस पुरुष का पहले अधिकार हो। स्वाभाविक है कि जिसकी साठी उसकी भेड़ बाने समान में छलित्यानी ही सदा जोतता होगा और इस तरह की के प्रति व्यक्तिगत अधिकार की भावना तो शायद मनुष्य में प्रारम्भ से ही रही लेकिन समूह की शक्ति के सामने उसकी शक्ति कम पड़ती थी और यही कारण है कि यह उम आदिम व्यवस्था में अपना व्यक्तिगत अधिकार स्त्री पर नहीं जमा सता। फिर मातृसत्तात्मक समाज के अपने नियम भी थे। इन सबको मुनोस्की देने की सामर्थ्य पुराण में नहीं थी लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसकी व्यक्तिगत अधिकार की प्रकृति पूरी तरह मिट गई। हाँ, वह मनुष्य

परिस्थितियाँ न यादूर बनी रही। जब उसकी शक्ति बड़ी, पुत्र के बच्चों पर उसका पूरा अधिकार होने साथ व्यक्तिगत रूप से उत्पादन के साधनों पर भी उसका अधिकार होने लगा तो उसने समाज की मर्यादाओं को तोड़ना प्रारम्भ किया। जब उस पुरानी व्यवस्था को ज़मीनी देने की सामर्थ्य उसमें थापई थी। स्त्री को मरु से हर कर जाने का धर्म ही वह था कि पुरुष ने मातृ सत्तात्मक समाज के नियम को तोड़ा। फिर स्त्री को पत्नी बनाकर और अपने मित्रों को उसके साथ सम्मोच करने की आज्ञा देना निश्चित रूप से उस स्थिति की ओर संकेत करता है जब स्त्री की समस्या काफी घटहान हो चुकी थी। समाज भी उसके अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाया था। माता के सम्मान पर आधारित उसका औरत भटने लगा था और वह बूट की वस्तुओं (commodities) के साथ झुमार की जाने लगी थी। वही समय था जब मनुष्य का वह भी कौतूहल दूर हो गया था कि स्त्री ही बालक को बनाती तथा उसका पालन पोषण करती है। पुरुष के महङ्गार को वह जितना बड़ा बल था।

संक्षेप में मैं इस स्थिति को बिजल हू

(१) पुरुष सत्ताभोत्पत्ति में स्त्री के साथ अपने महत्त्व को भी समझने लगा था। बहुत दिनों का उसका अज्ञान टूट गया था। जब वह पिता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया था। इसी के साथ उसका अधिकार बढ़ गये। मातृसत्तात्मक समाज टूट गया और उसके स्थान पर पितृसत्ता पड़ी थी।

(२) पितृसत्ता के साथ ही सम्पत्ति पर माता का अधिकार नहीं रहा। सत्ताधिकार पुत्र को मिलने लगा। माता के सम्बन्धियों का हस्तक्षेप कम हो गया। मरु न पुरुष की शक्ति स्वामी के रूप में बढ़ हो गई।

(३) पुरुष की ईर्ष्या बड़ी और उसने स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बढ़तना बाधा। भाये बसकर पुरुष इसमें सफल भी हो गया। स्त्री केवल सत्ताभोत्पत्ति की साधनमात्र रह गई।

(४) सबसे महत्त्वपूर्ण और बिभारणीय परिवर्तन स्त्री की स्थिति में हुआ। जब वह पूरी तरह सबला के रूप में पुरुष की बर्बरता का शिकार बन चुकी थी। ब्रिचों की छोटी मजदूरी बसती थी जिसमें स्त्री की स्वेच्छा की पुरुष शक्ति भी परबाह नहीं करता था। पुरुष का बल ही शमीकृत निर्णय कर जाता था।

मातृसत्ता के टूटने पर स्त्री की स्थिति काफी बिर चुकी थी। वहीं से उसके अधिकारों का पहले तो समझौता था हुआ और फिर पुरुष ने पूरी तरह उसे अपने आधीन कर लिया। मातृसत्तात्मक समाज की समाप्ति पर जोड़े के परिवार

उठे थे या इससे पहले ही वे जा चुके थे। इसके बारे में विवाद सब स्तरों पर एक छा नहीं हुआ। कहीं बोद्धे का परिवार जा गया। फिर भी मातृसत्तात्मक समाज बसता रहा और वहीं उसके टूटने के पश्चात् बोद्धे का परिवार उठा। लेकिन एक बात निश्चित है कि मातृसत्तात्मक समाज के रहते हुए बोद्धे के रूप में रहकर भी पुरुष स्त्री को अपनी इच्छा की दासी नहीं बना पाया था। यह तो मातृसत्ता के टूटने पर ही सम्भव हुआ था।



## सामाजिक परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक भेदों का विकास

हमने ऊपर के अध्याय में सामूहिक विवाह-प्रणाली तक समाज के बारे में बिना है और उससे स्पष्ट होता है कि उन प्राथमिक काल में वे ही मीन-सम्बन्ध जो प्रायः वृष्टि और पापपूर्ण समझे जाते हैं, कितने स्वाभाविक थे। उन प्राथमिकवासियों के जातिक विश्वास अलग तरह के थे। उनमें मीन-सम्बन्ध कुछ ही सीमा तक पाप के रूप में स्वीकार किये गए थे जैसे—भाई-बहिन के बीच सम्मोह सम्बन्ध वृष्टि समझे जाते थे और यदि कोई समाज की इस मर्यादा का उल्लंघन करता था तो उसे बन्ध दिया जाता था। सभी लोग इसको वृष्टि समझते थे। लेकिन यह स्थिति भी बाद की स्थिति है। इससे पहले तो यह सम्बन्ध भी सामाजिक रूप से चल ही रहा था। इससे पहले भी पिता और पुत्री का सम्बन्ध चलता था। तब उसे कोई पाप कहने वाला नहीं था। समाज ने धीरे धीरे विकास किया तो तरह तरह की मर्यादाएँ सभी और उनके साथ मीन-सम्बन्ध बहुत काफी सीमित कर दिए गये। पहले जो कभी भाई-बहिन के बीच विवाह सम्बन्ध स्थापित हो जाता था वह भी धन नहीं रहा। इसके अलावा और भी इस तरह के दूर के सम्बन्धियों के बीच सम्मोह पाप और दोषपूर्ण माना जाने लगा। इस तरह केरा धीरे धीरे कम होने लगा। अब दूर के भाई-बहिन के बीच विवाह-सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता था

इस कारण सामूहिक विवाह-प्रणाली का बीरे बीरे ह्रास होने लगा । इस विकास के बीच बड़े का परिवार ठठा । एक पुरुष एक स्त्री से ही विवाह करता था । बीरे बीरे अन्य मर्यादों के साथ यह मर्यादा भी बाँध दी गई; लेकिन फिर भी पुरुष को एक से अधिक पत्नी रखने का अधिकार मिल गया । पहले यह अधिकार गणपति को ही दिया गया था लेकिन बाद में दूसरों ने भी इसका उपयोग किया । इस तरह यद्यपि एक स्त्री को बहुपति रखना मंजूर कर दिया लेकिन पुरुष बराबर बहुपति रखता हुआ अपनी कामवासना को पूर्ति करता रहा । इसका कारण आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती हुई स्त्री की पराधीनता ही थी । पुरुष उत्पादन तथा युद्ध में प्रमुख भाग लेता था और इन तरह एक तरह से स्त्रियों से स्त्री और बच्चों की रक्षा करता था और दूसरी तरह धन खनन से आना पैदा करता था । इसी कारण उसकी सत्ता स्त्री की सत्ता से ऊपर पड़ गई । मातृसत्तात्मक समाज के अन्तर्गत ही उसको एक से अधिक पत्नी रखने के अधिकार प्राप्त हो गये थे जबकि स्त्री किसी दूसरे पुरुष के साथ अपने यौन-सम्बन्ध रखने के कारण दोषी समझी जाती थी ।

हाँ मैलिनेसिया में प्रचलित विवाह प्रणाली के सम्बन्ध में खोज करके लिखा है ।

ट्रोब्रिगण्ड (Trobriand) के बीच यद्यपि एक पुरुष एक ही स्त्री को अपनी पत्नी बना सकता है और पुरुष का पर-स्त्री से सम्बन्ध रखना और इसी प्रकार स्त्री का पर-पुरुष से सम्बन्ध रखना बुरा समझा जाता है लेकिन फिर भी उच्च स्तर के व्यक्ति जिनका किसी कारण से जाति के भीतर सम्मान अधिक है एक से अधिक स्त्रियाँ पत्नी के रूप में रख सकते हैं । सबसे उच्च स्तर का व्यक्ति बस्ती का सरदार होता है । उसके पास अन्य लोगों की धरोहरा बन अधिक होता है । इसी कारण उसकी शक्ति भी सबसे अधिक होती है, लेकिन सबसे विचित्र बात तो यह है कि इस सम्पत्ति बढ़ाने के ही लिए वह एक से अधिक स्त्री के साथ विवाह करता है ।

मैलिनेसिया में यह प्रथा है कि जब किसी स्त्री का विवाह सरदार के साथ होता है तो वह स्त्री अपने पिता माँ तथा अन्य सम्बन्धियों के पास से काफी धन लेकर आती है और इससे सरदार की सम्पत्ति का बढ़ावा होता है । इसी प्रकार जितनी भी स्त्रियाँ सरदार के साथ विवाह करती हैं, ऐसा हो करती हैं । यह एक प्रकार से रक्षक का ही होता है ।

इन सम्पत्ति के अभाव में सरदार की प्राप्ति में रहने वाले लोग उसको भेंट के रूप में बन देते हैं लेकिन इनमें अधिक स्त्रियों द्वारा माया गया धन होता है ।

इस सबसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बीरे बीरे पुरुष ने अपनी धार्मिक सत्ता बढ़ाने के लिए स्त्री को अपनी सम्पत्ति बढ़ाने का साधन बना लिया है। ट्रोकिमान्क स्थियाँ तथाक का धार्मिक धर्म रखती हैं। इससे पुरुष किसी तरह उन्हें अपनी बर्बरता का विकार नहीं बना सकता। इसके अलावा मातृसत्ता की मान्यता होने के कारण उनकी इच्छा का विरोध भी पुरुष नहीं कर सकता। अनेक संस्थानों में उनका प्रमुख भाग रहता है लेकिन उत्पादन और युद्ध क्षेत्र में उनका धार्मिक भाग नहीं रहता इसलिए मातृसत्ता एक समाज होते हुए भी पुरुष यण का स्वाधीन है। स्त्री अपने साथ उपहार लेकर उसके घर आकर उसकी पत्नी के रूप में रहती है। ये सभी लक्षण पितृसत्तात्मक समाज के हैं और इन्हीं के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बाह्य भाग मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था होने के कारण मैसोपोटामिया में स्त्री की इच्छा को पुरुष परबाह करवा हो लेकिन ज्योंही पिता का ज्ञान प्राप्त करके पुरुष अपनी पितृसत्ता लेकर उठेगा तो स्त्री वहाँ भी उसी तरह बाड़ी का रूप धारण कर लेगी जो सा प्रत्येक स्थान पर पितृसत्तात्मक समाज के अन्तर्गत हुआ है। इसका विशेष कारण समाज की धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन है। स्त्री और पुरुष के धार्मिक सम्बन्धों ने मैसोपोटामिया में वह रूप ले लिया है जो पितृसत्ता के अनुकूल है।

ऐसिस कहाता है कि बर्बरकाव के प्रारम्भ में ही इन्कोई तथा अनेक भारतीय जातियों के बीच पास और दूर के जग सम्बन्धों के बीच विनका रक्त का सम्बन्ध होता है, विवाह-सम्बन्ध अति जाति किये जा चुके थे। ये सम्बन्ध सँकड़ों तरह के थे। इसलिए उनके होत हुए यण विवाह-प्रणामों का ज्ञान हो गया और उसके स्थान पर जोड़े का परिवार बढा। एक पुरुष एक स्त्री के साथ रहने लगा लेकिन फिर भी वह बहुपत्नी के रूप में तथा परमारी से सम्बन्ध सम्बन्ध स्थापित करके आगत्य के साथ रहने लगा लेकिन स्त्री के लिए उसने मर्यादा स्थापित करली बाह्य कि वह पर-पुरुष के साथ किसी प्रकार का यौन-सम्बन्ध न जाड़े। फिर पुरुष किसी समय भी स्त्री के बिम्बे बच्चों को छोड़कर उसको तलाक भी दे सकता था।<sup>१</sup> इस तरह पुरुष सभी प्रकार से स्त्री को स्वतन्त्रता को छीनने लगा।

पितृसत्ता उठने के साथ यह सब तो हुआ लेकिन प्रश्न यह है कि यह पितृसत्ता उठी कैसे और इतने दिन के अग्रज के पश्चात् पिता को कैसे सहना

ही ज्ञान हो गया कि वह अपनी सम्पत्ति को बेच करके में उठना ही जिम्मेवार है जिसने वह जो जिसे वह अपनी पत्नी कहता है ?

इस पर विचार करते समय हम प्राचीन वास्तवों के बाह्य दोनों के विश्वासों को देखना पड़ेगा । वहीं से इस समस्या का हम निकलता है । प्राचीन काल में स्त्री-पुरुष अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये किसी भी समय पशुओं का तरह सम्बन्ध कर लिया करते थे । काम-सृष्टि के सिवाय उसका और कोई उद्देश्य नहीं होता था । ठीक उनकी पशुओं की ही स्थिति थी लेकिन विकास के साथ ही सम्बन्ध का एक दूसरा महत्व स्थापित हो गया ।

व्यक्तियुक्त मानव के साथ-साथ इसका सम्बन्ध गण के सामाजिक और धार्मिक जीवन के साथ जुड़ गया । स्त्री और पुरुष के इस मिलन का प्रभाव व्यक्तियुक्त कामसृष्टि तक ही सीमित न रहकर कुछ के उन प्रयासों पर भी पड़ने लगा जिनसे वे आदिमवासी अपने जीवन-निर्वाह-साधन इकट्ठे किया करते थे । इस प्रकार सम्बन्ध साधारण और सहज किया से उठकर बाह्य और दोनों के रूप में अपना सामाजिक रूप लेने लगा ।

आदिमवासियों में अन्धविश्वास काफी बलवत् थे । वे अपने चारों ओर की प्रकृति को कौतूहल में भरकर देखते थे और उसकी उस विविधता तथा असाधारणता को साधारण बनाना चाहते थे । प्रत्येक अद्भुत वस्तु का कारण समझना चाहते थे । प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का साक्षात् सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे । वह प्रयास प्रारम्भ से ही रहा और इसी कारण जिस वस्तु का सही कारण वे नहीं समझ पाते थे उनके बारे में अपना कुछ न कुछ विश्वास बना लेते थे । इस तरह उनका कौतूहल शांत हो जाता था । यही प्रकृति की अद्भुत शक्ति के समझने की उनकी पद्धति थी । फिर यह प्रश्नन का सम्बन्ध वैज्ञानिक-वासियों ने द्यूमा और संरक्षक आत्मा धारि के साथ जोड़ रखा है । जन्म ने लेकर मृत्यु तक जो वस्तुएँ उन लोगों के सामने आती थी उन सबके बारे में विश्वास बनाकर वे अपने कौतूहल और भय का मिटाया करते थे । इन प्रकार सम्बन्ध का सम्बन्ध में भी इनका अद्भुत विश्वास था ।

वैदिक काल में जो हम स्त्री पुरुष के समागम के साथ पुनोत्पादन के पवित्र धर्म को जुड़ा हुआ पाते हैं यह बहुत बाद की स्थिति है । बहुत बाद में इस प्रकार की भावना समाज में आ आई थी । इनमें पहले के समाज की चेतना ही दूसरे प्रकार की थी । वे मन्थानोत्पादन में स्त्री-पुरुष के समागम का सम्बन्ध जोड़ते तो वे लेकिन उनको वे प्रतीक रूप में लेते थे । जिन प्रकार बरती को हम

नवाकर बोता आता है और उसमें बीज डालकर घाटादि पैदा किया जाता है वही कार्य तो पुरुष स्त्री के साथ समागम करके हुए करता है इसलिये स्त्री क्षेत्र हुई और पुरुष क्षेत्रपति हुआ। यह धारणा उस समय की है जब पितृसत्तात्मक समाज अपनी बड़ों पूरी तरह बसा चुका था और स्त्री को क्षेत्र के रूप में पुरुष का धामिपत्य स्वीकार करना पड़ा था। अब तो वह पुरुष की सम्पत्ति बन चुकी थी। इपि युग में ही आकर इस तरह की सम्पत्ति हुई। उग समय तक पशु बन बर की छोटी मोटी वस्तुओं तथा घरेलू अश्वों के रूप में वस्तुवत् सम्पत्ति भा चुकी थी। सामाजिक था कि पुरुष न क्षेत्र के रूप में स्त्री की तुलना करके उसके ऊपर पूर्णधिकार स्थापित कर लिया लेकिन यह सम्भव उभी समय हो पाया जबकि पुरुष यह जान गया कि वह संभाव्य करते समय स्त्री के क्षेत्र में बीज डालता है और उभी बीज के कारण संतान पैदा होती है। इस तरह उसको अपनी महत्ता का पूर्णतया ज्ञान हो गया था। वैदिक काल में यह सब कुछ पता लग गया था और उस समय पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में क्षेत्रपति और क्षेत्र की धारणा सर्वत्र प्रचलित हो चुकी थी।

लेकिन विशेष रूप से देखना तो यह चाहिये कि यह प्रतीक की परम्परा प्रारम्भ कहाँ से होती है जिसका विकास धीरे धीरे चल कर उक्त रूप में होता है। हम बीच की स्थिति पर ही हम प्रकाश डालना चाहते हैं।

मास्ट्रेलिया के आदिम निवासियों के बीच स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध एक प्रकार से जादू (a magic lubricant) के रूप में लिया जाता था। उन लोगों के बीच जो भी शारीरिक उत्सव होते थे इसका उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। ऐसे समय पर सभी तरह के विवाह आदि के बन्धन तोड़ दिये जाते थे। अत्यंत दिन किन्हीं आदिमों में एक या दो स्त्रियों को घाटा ही जाती थी कि वे आकर उत्सव स्थान पर उपस्थित हो जायें। वहाँ पर उन स्त्रियों के पिता माई और पुत्रों को छोड़कर सभी पुरुष जाते थे और उनके साथ सम्बन्ध करते थे। उसके पीछे समाज विश्वास था कि इस तरह के सम्बन्ध के अनुस्यूत प्रकृति का सारा कार्य-व्यापार बिना किसी तरह की रुकावट के चलता रहेगा। उनका मोहनादि प्राप्त करने में किसी प्रकार की बाध नहीं आयेगी।

यह विश्वास बाब की क्षेत्र और क्षेत्रपति की<sup>२</sup> धारणा का मूलधार है। पिता के बीज का संतानोत्पादन में जो भाग होता है उनका पता लगते ही पुराने विश्वास ने नवीन रूप धारण कर लिया और वही न स्त्री की धरम्मा

विरही बनी गई। वहीं उसके प्रागे चलकर होने वाले बासी रूप की पुष्ट-  
पुष्टि भी।

इस सम्मोह को इस तरह धार्मिक और सामाजिक रूप देने के साथ ही  
आदिमवासियों ने इस सम्बन्ध में एक पूरी नियम तालिका बना ली। उनका  
विद्वान का कि यदि नियम विरुद्ध प्रवृत्ति प्रकट होने पर स्त्री और पुरुष  
प्राप्य में समायम करने लगे तो उनका मूल के सामाजिक जीवन पर बुरा प्रभाव  
पड़ेगा।

एक बात में विश्वास था कि जब कोई पुरुष चापल हो गया है और  
उसकी विवशता चल रही हो तो उस दिन किसी भी मणुवासी को सम्मोह  
नहीं करना चाहिये। इस तरह सम्मोह का सम्बन्ध जीवन और मृत्यु के साथ  
सम बना। आदिमवासियों को महा प्रकृति की प्रजात शक्ति का भय बना रहता  
था। उसी कारण वे इस प्रकार की व्यवस्थाएँ किया करते थे जिससे मारा  
कर्म आसानी के साथ चलता चला जाय और उन्हीं किसी प्रकार की प्राप्य  
का सामना नहीं करना पड़े।

इसके बाद एक और नियम था कि जब नये बीत-मृत्यु नीचे जा रहे हों  
उस समय भी स्त्री पुरुष सम्मोह न करें।<sup>१</sup>

सभीत मृत्यु प्राप्ति का मणु के सामाजिक जीवन में बहुत महत्व था। टॉटम  
सम्बन्धी प्राचीन विश्वासों के सम्बन्ध में बताया ही था चुका है। इन बीत, मृत्यु  
प्राप्ति का प्रारम्भ वहीं से होता है। वहीं से इनका सामाजिक महत्व विद्वान  
के रूप में प्रकटित होता है। मणु के साथ किसी एक जंगली पशु पक्षी, जिनका  
उनके जीवन से निकट का सम्बन्ध होता था बीसी बीमत्त में उसकी चाल  
तथा अन्य क्रियाओं का अनुकरण करते थे और तब उनको यह विश्वास हो  
जाता था कि वे अब उस वस्तु को जिसकी टॉटम के रूप में मान्यता हुई, अपनी  
तरह से बच में कर सकते हैं। इस तरह शिक्षा करने वाले वे जंगली प्रभुत्वा  
के मनुष्य एक ऐसी विश्वास के साथ अपने आप में एक कृत्य पैदा करते थे।

जिस समय टॉटम देवता के रूप में उसी वस्तु की मान्यता हो गई तो वे  
ही बीत और मृत्यु देवता की उपासना के साथ जुड़ गये। उनमें भी आदिम  
वासी यही मानना करता था कि उनके जीवन पर किसी तरह का प्रकृति का  
प्राप्य न हो। प्रकृति से उसे महा डर लगता था। इसी कारण मीत मृत्यादि  
के द्वारा वह टॉटम देवता की प्रशंसा किया करता था। इस तरह उन मीत  
मृत्यादि का एक सामाजिक महत्व था।

इसके अलावा एक नियम था कि जब पुरुष अपने जीवन के लिये मजदूरी पकड़ने के लिये बाहर जा हो उस समय भी उसको अपनी स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिये ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार अनेक बातों में यह भी विश्वास प्रचलित था कि जब पुरुष विचार करने, या किसी दूसरी बात से मुक्त करने के लिये जाय तो उस समय उन्हें अपनी स्त्रियों के साथ समावस नहीं करना चाहिये । यदि वे ऐसा करें तो उन्हें दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा ।

घासू निया की कुछ आदिम बातों में बाहर जा ठीक इसके विपरीत थी । उनके बीच लड़ाई पर जाते समय स्त्री और पुरुष सम्मिलन करते थे और तब विजय प्राप्त करने का विश्वास लेकर लड़ने के लिये जाते थे ।

इस प्रकार के विश्वास आदिम काम में ही नहीं बल्कि प्रबलक अफ्रीका की कुछ बातों के बीच पाये गये हैं । बैकीटारा (Bakitara) लोगों का लोहे की खानों में सम्मिलन है । खान से वे लोहा निकालते हैं और उसको पिघलाते हैं । उसके सम्मिलन में विश्वास प्रचलित है कि यदि लोहा पिघलाते समय कोई रक्षकता स्त्री पास आ जावे तो उससे उससे प्रलयन प्राप्ति होती है । इसलिये रक्षकता स्त्रियों को जाने की आज्ञा नहीं है ।

इसी तरह जिस आदिमों की स्त्री वे धीम ही किसी वस्त्र की आग दिया है वह भी बाहर उद्योग में कुछ समय के लिये जान नहीं ले सकता । इन नियमों के टाड़ने का अर्थ है कि लोहा किसी भी तरह नहीं पिघलाना और सभी लोगों को इससे बारी दृष्टि रखनी पड़ेगी ।

इसी प्रकार के विश्वास रोडेसिया के उत्तरी भाग बा-इला (Ba-ila) में प्रचलित है । वहाँ भी यही उद्योग प्रचलित है ।

लोहा पिघलाने वाले पुरे नियम के साथ रहते हैं । उस बीच वे किसी स्त्री के साथ समावस नहीं करने । उनमें से यदि कोई आदिमी अपने साथ जाता है तो उसके ऊपर यह पाबन्दी लगाई जाती है कि वह अपनी स्त्री से किसी तरह के सम्मिलन उस समय न करे । उसे न तो अपने घर में बसना चाहिये और न अपनी स्त्री से अधिक बातचीत करना चाहिये । घर के दरवाजे पर बैठकर ही उसे अपनी स्त्री के द्वारा पकड़ा जाना करना चाहिये ।

इसी प्रकार की पाबन्धियाँ औरतों पर भी लगाई जाती हैं । लोहा पिघलाने के समय न तो उनको गहना चाहिए और न अपने शरीर में कुछ सुपुष्पित पदार्थ लगाना चाहिये, न उन्हें किसी तरह के आभूषणों पहनने चाहिये ।

पुरुषों को अपनी धीर धार्कणित करने के लिये उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । उन्हें तो अपना विश्व इस तरह का बना लेना चाहिये मानो उनके पति उनको मरने के लिये छोड़ गये हैं और वे दुःखी विधवा हैं ।

पुरुषों में यदि किसी को सोते समय किसी स्त्री का स्वप्न दीखता है और उस कारण उसका बीर्य स्थगित हो जाता है तो उसको उस बात को अपने सानियो से नहीं छिपाना चाहिये । वे उसको किन्हीं उपायों से दबाने करते हैं । यदि वह रात के स्वप्न की बात शिपाता है तो समाज को बड़ी हानि पहुँचाता है क्योंकि उससे सारे सामूहिक भ्रम के व्यर्थ हो जाने का भय रहता है ।

इस प्रकार के विचारों अनेक आदिम जातियों के बीच मिले हैं । इन विद्वानों में यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आदिम मनुष्य पशु अवस्था में होते हुए भी पशु से बहुत भिन्न था । उसमें विचार शक्ति थी । वह वस्तु को समझने की चेष्टा करता था । उसके हृदय में प्रकृति के सारे रहस्य को जानने की जिज्ञासा थी और इसके साथ ही प्रकृति के कार्य व्यापार को अपनी इच्छा अनुसार चलाने की इच्छा भी थी तभी तो उसने अनेक इस तरह के विचार बनाये थे । पशुओं में सम्मोच केवल व्यक्तिगत आनन्द के लिये ही चलता है लेकिन मनुष्य ने तो व्यक्तिगत आनन्द के पत्र उसका एक सामाजिक महत्व भी स्वीकार किया । हित और अहित के निर्णायक के रूप में उसकी व्यवस्था की ।

इनके साथ यह समझना भूल होनी कि आदिमजातियों ने बिना किसी कारण मानवार्थ के इन विद्वानों को बना लिया । हमने क्षेत्र के रूप में स्त्री की मान्यता के विषय में बताया है कि बिना प्रकार इन क्षेत्र पुरुषों को जोता जाता है और उसमें बीज डालकर वह धाँसा कि जाती है कि बीज फूट कर पौधे के रूप में बढ़ेगा और फिर उससे भ्रम पैदा होगा, इसी प्रकार बीज के बार में जान होने से पहले भी प्रकृति के अनेक कार्यों का साम्य सम्मोच के माध्यम आदिम-मनुष्य ने स्थापित कर लिया था । उसने देखा था कि बिना प्रकार स्त्री के साथ सम्मोच करने से उसके पेट में गर्भ रहता है और फिर बच्चा पैदा होता है इसी प्रकार पौधे में पैड़ बन कर उसमें फल और फूल पाते हैं, उसी प्रकार पानी में आल डालने से मछली पाती है, उसी प्रकार दूध में बहो बन जाता है । इन तरह प्रकृति के इन विभिन्न कार्यों में साम्य है तो अथवा इनका कारण एक ही होना चाहिये । आदिमनिवासी की यह एक साधारण और सामाजिक अस्तना थी । उसने देखा कुछ मछली घाटि की इसी धोखी में रंगा था बिना मछली में स्त्री को रखा था । तब उसने अनुमान लगाया कि



चूँकि सभी कार्यों का एक ही कारण है तो फिर स्त्री के साथ सम्मेलन करने से प्रकृति के सारे कार्य भी ठीक तरह चलेंगे। बिना प्रकार स्त्री के पैर से बन्ना पैरा होगा उसी प्रकार पैर में फल धारण करने वाली स मछली धारणी बूज से बही बनेगा। इस इसी विचार के साथ स्त्री और पुरुष का सम्मेलन एक पारिवारिक इत्य भाग बना और उसके सम्बन्ध में नियम बनने लगे। अब तो बड़ी हड़ धारणा बन गई कि स्त्री और पुरुष के सम्मेलन से ही प्रकृति का सारा कार्य व्यापार चलता है।

जेबोस ने अपनी 'पुस्तक जीवन-जीवन पाप और पुण्य' में इस तरह की धारणाओं को विस्तृत रूप से एकत्रित किया है। उसके धर्माबा धारिम जातियों के विचारों की जोड़ करने वाले धर्म विद्वानों ने भी इसी तरह के विचारों को धर्म रूप से प्रचलित पाया है। धार्मिकजातियों के जाहू टोनों का बड़ी मुख्य आधार है।

सामूहिक विवाह पद्धति टूटने के पश्चात् जब जोड़े का परिवार उठ तो एक साथ ही पति-पत्नी के जीवन-जीवन के विषय में हड़ मर्यादाएँ निश्चित नहीं हुईं। उनके पूरी तरह पारिवारिक के रूप से लेने तक स्त्री और पुरुष के जीवन सम्बन्धों पर गण विवाह-पद्धति का पूरा प्रभाव रहा। पाप और पुण्य का रूप धार की तुलना में कुछ हूनरे प्रकार का ही रहा। उस जीवन की स्थिति के सम्बन्ध में ही कुछ बतलाना आवश्यक है।

धर्मकी धार्मिक जातियों की जोड़ होने पर वह पाया गया कि वे जातियाँ धर्म की अपनी धर्मगी धर्मस्था में रह रही हैं। यद्यपि उनके जीवन मर विवाह प्रणाली मिट चुकी है और एक पुरुष एक स्त्री के साथ विवाह करके जोड़े के रूप में रहता है लेकिन उसके साथ एक ऐसा नियम है जो पुराने स्वतन्त्र जीवन-सम्बन्धों की ओर इ गित करता है।

उत्तरी धर्मकी जातियों के जीवन में धार्मिक किसी परिवार की सड़की के साथ विवाह करता है तो स्वाभाविक रूप से उन सड़की की ममी छोटी बहिनें बचाने होते हैं उसकी पत्नी जैसी बन जाती हैं। वह सभी के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक सम्मेलन कर सकता है।

बम्बेपट ने कैलिफोर्निया के बहिरणी भाग की कुछ जातियों की जोड़ करते पता लगाया कि वे जातियाँ भी अपनी धर्मगी धर्मस्था से धार नहीं बरी थीं लेकिन उनके जीवन मर विवाह प्रणाली समाप्त हो चुकी थी। जाड़े का परिवार प्रचलित हो जाता था लेकिन फिर भी उनके जीवन कुछ ऐसे उत्पन्न होते हैं जिनमें कई जातियों के साथ एक स्थान पर एकत्रित होते हैं और वहाँ स्त्री

घर पुरुषों के बीच शुद्ध सम्बन्ध बनता है। वहाँ सभी पुरुषों का सभी स्त्रियों पर समान अधिकार होता है।

निश्चित रूप से यह उत्सव प्रणामी इसके पूर्व की गण विवाह प्रथा का ही रूप है। वैक्टरमार्क ने अनेक जातियों के विषय में लिखते समय इस तरह की उत्सव प्रणामी का वर्णन किया है।

अनेक प्राद्वि जातियों के बीच तो सरदार को या बाहु टोने से सम्बन्धित पुजारी (Sorcerer priest) को यह अधिकार होता था कि वह जाति की किसी भी स्त्री के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक सम्बन्ध कर सकता था।

कुछ जातियों के बीच नियम था कि जब कोई पुरुष विवाह करके किसी स्त्री को खाता था उस समय पहले उसके निच और सम्बन्धी उस स्त्री के साथ सहवास करते थे और अन्त में वह पुरुष जो उसका पति होता था उसके साथ सहवास करता था। ऐबिसीनिया के बेरिस सोनों (Barcas of Abyssinia) के बीच आज तक यह प्रथा रही है।

कहीं कहीं यह भी प्रथा प्रचलित थी कि जाति का मुखिया उस स्त्री के साथ पहली रात को सहवास करेगा जिसको विवाह करके उस जाति का कोई पुरुष लाया हो। भारतवर्ष में सम्प्रकाश तक यह प्रथा प्रचलित थी। कहीं-कहीं तो धार्मिक समय तक गाँव के ठाकुर को यह अधिकार होता था कि वह दूध बर्ण की उस स्त्री के साथ पहली रात सोयेगा जिसे ब्याह कर गाँव में लाया गया हो। इसके परचात उसके पति का उस स्त्री पर अधिकार माना जाता था। इसमें स्त्री के ऊपर किसी तरह का पाप नहीं लगता था। यह तो मर्यादा थी। इसी प्रकार पातिव्रत के धारण के अतिरिक्त जितने प्रकार के ग्रीन-सम्बन्ध इस बीच के समय में पाये जाते हैं उन सबको भी मर्यादा और नियम के रूप में स्वीकार दिया गया था। उसने साथ किसी प्रकार की पाप की भावना नहीं थी।

प्राचीन काल में देवालयों के साथ देवदासियाँ रहती थीं। इसी प्रकार यूरोप में भी देवालयों के साथ इसी प्रकार की देवदासियाँ लगी हुई थीं जो कुछे रूप से वहाँ पुरुषों के साथ प्रणय-मीठा करती थी।

ऐबिसीनिया में नियम था कि विवाह के परचात वर्ष में एक बार प्रत्येक स्त्री माइनिटा के मन्दिर में जाकर पर-पुरुष समान पुजारी के साथ सहवास करे। यह सब बड़ा ही पवित्र कार्य माना जाता था। इसीसे ग्रीन-सम्बन्धों के सम्पन्न के बारे में देव नाम के विचार करने की बात हर समय रहती

है। पाप और पुण्य का निर्णय भी युग परिस्थितियों की सापेक्षता रखता हुआ चलता है।

संक्षेप में बीज की स्थिति के विषय में हमने बिता है। बाहिर क्या कारण था कि स्त्री ने ही बोने के रूप में पुण्य का आधिपत्य स्वीकार किया और अपनी परतन्त्रता के बीज उसने स्वयं ही बोये। जैसे ही मातृसत्ता टूटी और स्त्री का अपहण होने लगा। उसी समय से उसकी स्थिति बदल गई। उसका सारा सामाजिक सम्मान समाप्त हो गया। पुण्य अपने सारौरिक बल के आधार पर उसके अधिकारों को छीनने लगा। उस स्थिति में उसने स्वयं एक पुण्य को अपने रक्त के रूप में स्वीकार किया और यही से पातिव्रत की चारखा का उदय हुआ।

बैकोपन ने यही मस रखा है ज्यों-ज्यों यौन-सम्बन्धों का प्राचीन रूप हटता गया और यण के आधिक्य बीजम में परिवर्तन आया त्योंही स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आता गया। आर्य साम्यवादी व्यवस्था टूट गई और उसके स्थान पर अतिवृत्त सम्पत्ति पड़ी। पुण्य सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा। उसका अधिकार बढ़ गया। मातृसत्ता की मान्यता कम होने लगी। स्त्री को काम कृष्टि का सामन मानकर उसकी छीना फाटी शुरू हो गई। पुण्य का सारौरिक बल और आधिक्य दृष्टि से उसका सामाजिक स्थान उसको सत्ता को स्त्री की सत्ता से कहीं आगे बढ़ा ले गया। तब स्त्री ने अपने आपको इस छीना फाटी से बचाने के लिये पुरुष का आधिपत्य माना। वस यही से पितृसत्ता अपना एक आधार बना गई।

परन्तु इसके साथ वह भी एक मस है कि स्त्री ने पहले पुण्य में अधिक काम किया। पुरुष जानता न था इसलिये प्रजनन विद्या का धार्तक उस पर आया था। स्त्री सारा से रहती थी, पुरुष काम करता था। काम करने के कारण सारे सामन उसी के हाथ में थे। जब उसे बात हुआ कि वह ही प्रजनन में प्रमुख था उसने शीघ्र ही आधिपत्य बना लिया। स्त्री पहले से अक्षरबालिख को चुकी थी। अतः वह उस पर आश्रित हो गई। तभी से उसने पुरुष को आश्रित करने की सीख का आधार लिया। हमने प्रारम्भिक प्रवस्था से लेकर पितृसत्तात्मक समाज के उदय तक के यौन-सम्बन्धों की चर्चा की है।

पातिव्रत का आदर्श किन कारणों से समाज में मान्य हुआ और उसने स्त्री के जीवन की पुण्य की बर्बरता से किस प्रकार रक्षा की भी वह बताया। यही पातिव्रत का आदर्श बाह में बसकर स्त्री के मिर पर बोध बन गया। इसी के वस पर पुरुष ने उसके सभी सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों को छीन लिया और वह घर की दासी की तरह परिवार में रहकर अपना जीवन निर्वाह

करती रही लेकिन वह स्थिति काफी बाद में ही आई थी और इसके आने तक पुरुष न जाने अपने जीवन को सुनी बनाने के लिए कितने प्रयोग कर गया था। इधर तो स्त्री पुरुष के लिए सभी पापों को षड़ बन गई थी और इसीलिए समने वैराग्य का आश्रय लेकर स्त्री का तिरस्कार किया और दूसरी तरफ स्त्री पुरुष के आत्माचारों से इतनी अधिक पीड़ित हो चुकी थी कि बाद के दार्शनिकों ने उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिये नियम बनाये और पुरुष की निर्दोशता पर रोक लगाई। वह समय यूनान-रोमियों में जोर विषमता का समय था।

हम जब अपना ध्यान भारत की नारी की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, इसके परभाव सुनना हम से अन्य देशों की भी अपेक्षा करेंगे। उस नरनारी के जीवन की कहानी का सच्ची प्रकार ज्ञान हो जायेगा। आज तक यूनान-रोमियों में एक प्रकार की विषमता रही है उसकी वास्तविकता भारतीय नारी की कहानी सुनकर तुम्हारे सामने पूरी तरह स्पष्ट हो जायेगी।

भारतवर्ष का तिमि कमबख्त इतिहास ईसा से करीब चार सौ वर्ष पहले से ही प्रारम्भ होता है। उससे पहले तो अनेक धार्मिक धर्मों के आचार पर कुछ से पहले के समाज की वरूपना करनी पड़ती है। उसमें सामाजिक जीवन के विकास का विसंगत ठीक कम प्रस्तुत करना असम्भव ही है। लेकिन फिर भी वैदिक काल उपनियुक्तकाल आदि के रूप में हम विकास क्रम को प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। मैं वैदिक काल से ही पुरुष और स्त्री के द्वन्द्व को प्रस्तुत करता हूँ।

वैदिक काल में पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था थी। देशों में अनेक स्थानों पर पितरों की बन्दना की गई है। ऋग्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, धन्यु मा पितरो देवहूती। अर्थात् यज्ञ कार्य में पितर मेरी रक्षा करें। पितरों से वह रक्षा धन व धन की प्राप्ति करता है। पिता को वह जाना तथा पावन कर्त्ता के रूप में स्मरण करता है। इन्द्र वैदिक काल का सर्वोच्च देवता है। ब्रह्म के परभाव उसी की सर्वोच्च पूजा होने लगा थी। उसे जो देव ने ऋषि ने पितृत्व कहा है।

ऋग्वेद में ऋष्यारण की कथा प्राचीन है। वह स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था और उसके विधान की ओर संकेत करती है। यथा इस प्रकार है

दृषागिरि के पुत्र राजर्षि ऋष्यारण के गमीय परिवारों का बाहन गया बुरी बनकर आया। उसने उसके आहार के लिए नापरिकों की सी भिड़े काट डाली। नापरिकों की इससे बड़ी हानि हुई। इसी अपराध के कारण पिता

अप्यास की चींटी फोड़ थी। बाद में देवताओं को बीच पत्निनीकुमारों ने उसके नेत्रों को ठीक किया था।

इस तरह पिता को वैदिक युग में अपने पुत्र के ऊपर पूरे अधिकार थे। वह कुमारी बेटे को बच्चा के सवता था और हर तरह से परिवार का स्वामी होता था। यहाँ तक कि ऐतरेय ब्राह्मण में भी पिता को पुत्र को बेचने का अधिकार भी दे दिया गया है। सुन-छेप की कथा इसके सहाह्वरण स्वरूप में मिलता है।

इब्राहिम राजा हरिदचक्र ने निःसन्तान होने पर बन्धु से इस सच पर रोहित नामक पुत्र प्राप्त किया कि वह उसे यज्ञ में बन्धु को ही समर्पित कर देगा। एक इसके लिए समय आया तो राजा एक पहन किम्बा में पड़ गया और उसने एक बार तो अपने पुत्र को इस तरह समर्पित न करने का विचार किया लेकिन फिर देवता के प्रति दिया हुआ वचन उसके हृदय को डराने लगा। कुछ दिनों पश्चात् बरुण ने उसको बच्चा दिया। उसे जन्मेवर रोग हो गया। तब उसने अपने वचन को पूरा करने का निश्चय किया। इसी बीच रोहित मजीपत्त नामक एक मरीज ब्राह्मण से मिला। उस ब्राह्मण के पुनःपुनः, पुनःपुनः और पुनोन्मोक्त नामक तीन पुत्र थे। पुनःपुनः को तो मजीपत्त स्वयं बहुत अधिक प्यार करता था और पुनोन्मोक्त अपनी माता का बहुत प्यार था। मझले पुत्र पुनःपुनः को वे दोनों न थे कोई भी अधिक प्यार नहीं करता था रोहित ने मजीपत्त से पुनःपुनः को बेचने के लिए कहा। मजीपत्त तैयार हो गया और उसने अपने पुत्र पुनःपुनः को भी पीए लेकर बेच दिया। फिर दो बार ती-ती पीए लेकर उसने उसे बलि के लिये रूप से बाँधा लेकिन पुनःपुनः ने ब्रह्मादि देवताओं की प्रार्थना की और उससे वह बन्धनमुक्त हो गया। इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र ने उसे अपना ज्येष्ठ पुत्र स्वीकार कर कर लिया।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग में पितृवत्ता यहाँ तक अपनी बड़ कमा चुकी थी कि एक पिता अपनी सन्तान को सम्पत्ति की प्रति बेच भी सकता था। अपने आकर तो वह अधिकार मर्यादित हो गया। शाक्यकार्तिक ने इसका विधान खड़ा कर दिया। ब्राह्मण यमसूत्र में सास्त्रवाट कहता है—‘पुत्रव माता-पिता के शोणित शुक्र से उत्पन्न होता है, माता पिता उसने नाम के दायर हैं यद्यः इनको पुत्र के बाल नियम और त्याग का अधिकार है। विन्दु इनकी बेटे का बाल और प्रतिग्रह नहीं करता चाहिये।

आगे चलकर मनु ने माया पुत्र और दास को एक ही जोड़ में रखकर इनको समान रहकर विनाया है, क्योंकि वे शोय को कुछ भी बनाते हैं, उनके स्वामी का उन सब पर अधिकार होता है।

मनु के स्वर के साथ मारव का भी स्वर वही की ही स्वतन्त्रता मानने में बंटा है ।

पिता का यह प्रभुत्व सम्भवतया वैदिककाल से पूर्व ही धा हुआ होगा । इसका उदय उसी समय से सम्भवता आरम्भ जब से इति-युग आरम्भ हुआ और पुरुष न इस लेकर पृथ्वी को जोठा और उसमें से वन उत्पन्न किया । वही से पुरुष की भाविक सत्ता स्त्री से ऊपर उठ जाती है । यह भी सत्य है कि कृषि का आरम्भ तो स्त्री ने किया किन्तु पुरुष पर बोझ छोड़ दिया । जब पुरुष को सम्मानोत्पादन में अपना महत्त्व ज्ञात हुआ वह स्वामी बन बैठ और स्त्री सिंगु पासन के कारखाने धावीन हो गई । वैदिक धर्म शैली करना जानते थे । बार बार ऋषि वेद की ऋषियों द्वारा इस से प्रार्थना करते हैं कि हे इन्द्र ! हमें भय हो । हे वरुण ! हमें भय हो याद ।

इसके अलावा एक और महत्त्वपूर्ण बात है । कुछ का मत है कि जिस समय धर्म भारत में आये थे उस समय उन्हें वहाँ आकर अनेक जातियों से टकरा लेनी पड़ी थी । स्वान स्वान पर युद्ध होता था जब कहीं आकर वे लोग वहाँ बस पाये थे । जाति-जाति के लोग बलियुक्त को जमे गये थे । देखा जाय तो धर्मों के आमनन का समय पूरे युद्ध का समय कहना चाहिये उस युद्ध में पुरुष की ही महत्ता भाविक थी । वही आकर रणभूमि में वधुओं से टकरा लेता था । धर्मों में पुरुष शक्ति ही प्रमुख थी । उसी के मत पर उन्होंने दम्पतियों को हराया था, सामाजिक या कि इससे पुरुष का स्थान स्त्री से कहीं ऊपर उठ गया और वह पण्डित के रूप में स्त्री और वन दोनों का स्वामी हो गया ।

पिता की प्रभुसत्ता का एक कारण और भी था कि मातृसत्तात्मक समाज के टूटने के पश्चात् उत्तराधिकार पुत्र को पिता से ही प्राप्त होता था । इसलिये पुत्र पिता की वैदिकता के समान सम्मान लेता और इसी कारण पिता की इज्जती निर्दुष्टता बस पाई, नहीं तो मैलिनेधिया में जहाँ अभी तक मातृसत्तात्मक समाज है और जहाँ माता के नाई तथा भाई के पुत्र पुत्री ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं, पिता की भाव्यता बहुत कम है । वहाँ पिता का पुत्र के ऊपर किसी प्रकार का अधिकार नहीं रहता । यदि जाति के लोग चाहें तो पुत्र को मार निकासकर उसके माता के गण में भेज सकते हैं । वह किसी भी तरह अपने पुत्र को नहीं रोक सकता । वैदिक युग में यह मातृसत्ता पूरी तरह टूट चुका थी और व्यक्तिगत सम्पत्ति भी पशुधन, अस्त्रशस्त्र तथा वाय के रूप में धा हुआ था, इसलिये पिता को और भी महत्ता मिल गई क्योंकि पुत्र उसके ऊपर भावित रहने लगा । वह परिवार का स्वामी हो गया ।

फिर इन सबके ऊपर भी पुरुष का यह अग्रगण्यता वैदिक युग में ही

अप्यास की प्राँतें फोड़ दीं । बाद में बैरागीनों के बीच अस्मिनीकुमारों ने उसके नेत्रों को ठीक किया था ।

इस तरह पिता को वैदिक युग में अपने पुत्र के ऊपर पूरे अधिकार थे । वह कुमारी बेटे को दण्ड दे सकता था और हर तरह से परिवार का स्वामी होता था । यहाँ तक कि ऐतरेय ब्राह्मण में तो पिता को पुत्र को बेचने का अधिकार भी दे दिया गया है । सुन-शेप की कथा इसके उदाहरण स्वरूप में मिलता है ।

इन्द्राक्ष राजा हरिश्चन्द्र ने नि-सन्तान होने पर बरुण से इस धर्त्ते पर रोहित नामक पुत्र प्राप्त किया कि वह उसे यज्ञ में बरुण को ही समर्पित कर देगा । जब इसके लिए समय आया तो राजा एक बहुत चिन्ता में पड़ गया और उसने एक बार तो अपने पुत्र की इस तरह समर्पित न करने का विचार किया लेकिन फिर देवता के प्रति दिया हुआ वचन उसके हृदय को अराम नया । कुछ दिनों पुरुषाक्ष बरुण ने उसको दण्ड दिया । उसे जसोवर रोग हो गया । तब उसने अपने वचन को पूरा करने का निश्चय किया । इसी बीच रोहित अजीवर्त्त नामक एक यशोव ब्राह्मण से मिला । उस ब्राह्मण के पुत्र-पुण्ड्र, सुन-शेप और सुनोत्तमेयुस नामक तीन पुत्र थे । पुन-पुण्ड्र को तो अजीवर्त्त स्वयं बहुत अधिक प्यार करता था और सुनोत्तमेयुस अपनी माता का बहुत प्यार था । मन्त्रों पुत्र सुन-शेप को वे दोनों में से कोई भी अधिक प्यार नहीं करता था रोहित ने अजीवर्त्त से सुन-शेप को बेचने के लिए कहा । अजीवर्त्त तैयार हो गया और उसने अपने पुत्र सुन-शेप को सो बीए लेकर बेच दिया । फिर दो बार सी सी गीए लेकर उसने उसे बलि के तिले दूध से बाँधा लेकिन सुन-शेप ने बरुणादि बैरागीनों की प्रार्थना की और उससे वह बन्धनमुक्त हो गया । इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र ने उसे अपना ज्येष्ठ पुत्र स्वीकार कर कर लिया ।<sup>१</sup>

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग में पितृसत्ता यहाँ तक अपनी शक्ति बना चुकी थी कि एक पिता अपनी सन्तान की सम्पत्ति की मति बेच भी सकता था । धर्म जाकर तो वह अधिकार सर्वोदित हो गया । आत्मकाये ने इसका विधान श्रद्धा कर दिया । वासिष्ठ वर्मन्तुष में आत्मन्या कहता है—'पुत्र्य माता पिता के रोहित पुत्र ॥ अपन्न होता है, माता पिता उसके काम के कारण है, पर उसको पुत्र के नाम, विजय और त्याग का अधिकार है । किन्तु इनकी बेटे का नाम और प्रतिग्रह नहीं करना चाहिये ।

आगे बढ़कर मनु ने मार्ग, पुत्र और दास को एक ही कोटि में रगकर इनको दण्डन बहुर मिलाया है, क्योंकि ये लोग जो कुछ भी बनाते हैं, उनके स्वामी का उन सब पर अधिकार होता है ।

मनु के स्वर के साथ गारुड का भी स्वर वही की ही स्वतन्त्रता मानने में लठ्ठा है ।

पिता का यह प्रमुख सम्भवतया वैदिककाल से पूर्व ही या कुछ होना । इसका उदय उसी समय से सम्भूत चाहिए जब से दृवि-युग आरम्भ हुआ और पुरुष न हम लेकर पुष्पो को ओता और उससे से प्रजनन किया । वही स पुरुष की धार्मिक सत्ता स्त्री से ऊपर उठ जाती है । यह भी सत्य है कि दृवि का आरम्भ तो स्त्री ने किया किन्तु पुरुष पर बोग छोड़ दिया । जब पुरुष को सम्मानोत्पादन में अपना महत्त्व ज्ञात हुआ वह स्वामी बन बैठा और स्त्री सिन्धु पासन के कारण प्राचीन हो गई । वैदिक धर्म खेती करना जानते थे । बार बार आपि वेद की व्याख्या द्वारा इन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि हे इन्द्र ! हम भक्त हो । हे वरुण ! हमें जल दो धारि ।

इसके समाना एक और महत्त्वपूर्ण बात है । कुछ का मत है कि जिस समय धर्म भारत में आये थे, उस समय उन्हें वही धारक भलेक जातियों से टक्कर लेनी पड़ी थी । स्वाम स्वाम पर बुद्ध होता था तब कभी आकर वे बोग यहाँ बस पाये थे । द्राविड़ जाति के लोग बलिष्ठ को जले गये थे । देखा जाय तो धर्मों के आवमन का समय पूरे बुद्ध का समय कहना चाहिये उस बुद्ध में पुरुष को ही महत्ता धार्मिक थी । वही आकर उद्यमूनि न शङ्खुओं से टक्कर लेता था । धर्मों में पुरुष शक्ति ही प्रमुख थी । उसी के बल पर उन्होंने वस्तुओं को हथिया था, सामाजिक था कि इससे पुरुष का स्थान स्त्री से कहीं ऊपर उठ गया और वह वलुपति के रूप में स्त्री और बल दोनों का स्वामी हो गया ।

पिता की प्रमुखता का एक कारण और भी था कि मातृसत्तात्मक समाज के टूटने के पश्चात् उत्तराधिकार पुत्र को पिता से ही प्राप्त होता था । इसलिये पुत्र पिता की शक्ति के समान समझने लगा और इसी कारण पिता की इतनी निरंकुशता जब आई नहीं तो मीलनेधिया न जहाँ अभी तक मातृसत्तात्मक समाज है और जहाँ माता के भाई तथा भाई के पुत्र पुत्री ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं पिता की धार्यता बहुत कम है । वहाँ पिता का पुत्र के ऊपर किसी प्रकार का अधिकार नहीं रहता । यदि जाति के लोग चाहें तो पुत्र को मार दें निकालकर उसके माता के घर में बेच सकते हैं । वह किसी भी तरह अपने पुत्र को नहीं रोक सकता । वैदिक युग में यह मातृसत्ता पूरी तरह टूट चुकी थी और व्यक्तिगत सम्पत्ति भी पशुपन, वस्त्रासन तथा वाग्य के रूप में या चुरी की इसलिये पिता को और भी महत्ता मिला गई क्योंकि पुत्र उसके ऊपर अधिकार रहने लगा । वह परिवार का स्वामी हो गया ।

किर हन सबक ऊपर भी पुरुष का यह सम्पत्तिदाय वैदिक युग में हुआ



बुका था कि पुत्रोत्पत्ति के लिये पिता किसी भी तरह उत्तरदायी नहीं होता । कोई देवी शक्ति भाकर माता के गर्भ में पुत्र को रखती है और तब माता उसको पैदा करती है और बड़ी उसको पालती पोसती है और इसीलिए पिता का पुत्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता इसके ऊपर वैदिक काल में यह मुख्य बात ब्रुका था कि उसके बीर्य से ही पुत्र पैदा होता है तभी तो वांछित वर्मसूत्र में लिखा है शोणित मुक्त सम्प्रदाय पुरुषो भवति माता पितृ निमित्तकः ।

इस पितृसत्तात्मक समाज में पिता सदा बीर पुर्ण की कामना किया करता था । वेद में जहाँ भी इन्द्र, सोम, धनिमि आदि से प्रार्थना की गई है, वही धर्मों में बीर पुर्णों को माँगा है । ऋग्वेद का मन्त्र है जिसे धाम भी पुरोहित वैवाहिक आसीनवि केते समय नव दम्पति से कहा है पुर्णैर्नम्रभिर्मोक्षयानी स्वेदुहे ।

अथर्ववेद में भी बीरप्रसूति के लिये प्रार्थना है और स्त्री के लिये यही आदेश है कि वह पहले पुत्र्य संतान पैदा करे और बाद में भी वही प्रकार बीर पुत्र पैदा करे ।

धर्म तो गर्भाधान को तभी सार्थक समझने में जबकि स्त्री के गर्भ से बीर पुत्र पैदा हो । तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा हुआ है : पुंसे पुत्राय वेत्तवै ।

अथर्ववेद का निम्न मन्त्र निम्नाह क जाय जीवे दिन होने जाने चतुर्षी कर्म भवता गर्भाधान संस्कार के समय पढ़ा जाता था या ते योनि वर्म एतु पुत्रा म्वाह इवेसुबिम् । या भी रोजन आदता पुत्रस्ते वयमात्मन् ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग तथा उसके बाद तक के कुछ काल में पिता बीर पुत्र की कामना अधिक करता था और पुत्र प्राप्ति के लिये ही पुत्रवत संस्कार किया जाता था । पुत्री के लिये कोई याचना नहीं करता था । यही आकर स्त्री का दर्जा बढ जाता था । सामाजिक क्षेत्र में उसका कोई महत्त्व नहीं रहा था । धर्म्य कुछ करके अपनी सत्ता स्थापित करने में लगे हुए थे उसमें स्त्री पूरी तरह असहाय थी । वह तो घर की दैत्यभान कर सकती थी । कुछ करना उसका काम नहीं था इसलिये पिता पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों की कामना अधिक करता था । पुत्र ही घर को भारण वाला है और बड़ी सदा बीर है, तभी तो यजुर्वेद में कहा गया है कि पुत्र ही बीर है ।

निम्नाह संस्कार के समय पति को आदेश दिया जाता था कि वह इस बीर पुत्र पैदा करे क्योंकि वे ही घरक्यों का बंधन कर सकते थे ।

वैदिक युग में नव्या उपेक्षा का पात्र रही तभी तो ऐतरेय ब्राह्मण में नव्या को पुत्र का कारण बताया गया है । बाद में आकर तो नव्या के साथ जितने ही बाप जुड़ जाते हैं । पुत्र की तुलना में पुत्री का तिरस्कार स्पष्ट रूप से बताया है कि वहिक कर्म की धार्मिक परिस्थितियों के बीच स्त्री अपनी स्वतन्त्र सत्ता

तो बेटी थी। पुरख उसका स्वामी बन चुका था। उसने स्वयं में भी अपने को निबल घोर निस्सहान्य जानकर पुरख का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था।

अधिकतर यह माना जाता है कि वैदिककाल में स्त्री पुरख के साथ बैठकर महावि करती थी घोर केकयी आदि रागियों का उदाहरण देकर यह सिद्ध किया जाता है कि उस समय स्त्रियाँ पुरखों के साथ कुछ भूमि में भी बाया करती थी। इसलिये उसका स्वाम कितनी प्रकार पुरखों की तुलना में बिग नहीं था। केकय केकयी का उदाहरण देकर ही यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि स्त्री कुछ में जाकर पुरख के साथ कुछ करती तो कन्या को पुत्र का कारण नहीं समझा जाता। फिर घोर पुत्रों के साथ घोर पुत्रियों के लिये भी वैदिक धर्म प्रार्थना करते।

यज्ञ का अधिकार स्त्रियों को था घोर यही कृप्य दिनों तक उनके सम्मान की रक्षा कर सका। बाद में जब कर तो यह अधिकार भी छिन गया। बाद में ब्राह्मण पुरोहित ही साध कार्य करने लगा। उस समय स्त्री को मूर्खा घोर अपवित्र समझा गया। धृष्ट कर्ण में जमे रखा गया।

स्त्री के साथ सबैव यह दोष लगाया गया कि वह पुरख को व्यभिचार की घोर प्रेरित करती है। वह स्वभाव से ही अधिक कामुक होती है। बिगकर वह अनेक वृणित कार्य करती है। काम से पीड़ित होकर वह कँसा भी वृणित घोर वृणित कार्य कर सकती है। इन प्रकार की बातें धीमे धीमे पुरखों में काँधी मिलती है। महाभारत जैसे ग्रन्थ में जहाँ एक घोर स्त्री के मौरव को काफी ऊँचा उठाया गया है वहाँ घोर उसे सदा कामवासना में मित रहने वाली कहा है। इसके साथ पुरख को सावधान किया गया है कि वह स्त्री से सदैव सावधान रहे। स्त्री सदा पुरखों पर काम-वासना फैल कर उन्हें कँसाया करती है घोर इन तरह सर्वनाश का कारण बनती है।

वैदिक काल में स्त्री के ऊपर इस प्रकार के दोष नहीं लगाये गये थे। इसका मूल कारण यही था कि उस समय क यौन-सम्बन्ध पीछलुक्त युग के यौन-सम्बन्धों से कुछ भिन्न प्रकार के थे।

प्राचीन जातियों के यौनसम्बन्धों की वर्ण करते हुए हमने लिखा है कि उनके बीच स्त्री को अपने पति के प्रभाव का मध्यस्थ के साथ भी सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी घोर उन कारण उसको किसी प्रकार प्रतिन नहीं समझा जाता था। वही परम्परा वैदिक युग में कुछ अर्थों तक बनी। यह मानना प्रबल है कि पातित्व का धारण पूरी तरह वैदिक काल में मान्य हो चुका था। यदि एक पुरख के लिए एक स्त्री का विधान तो करता है घोर

सबसे बड़े पति-भक्ति का धारक भी बना जाता है लेकिन पौराणिक काल की तरह यदि कोई स्त्री परपुरुष से यौग-सम्बन्ध स्थापित कर लेती थी तो उसे बहिष्कृत नहीं सम्माना जाता था ।

मैं कुछ ऐसी प्राचीन कथाएँ रखता हूँ जो उन स्त्री और पुरुषों के सम्बन्ध बिम्बोंनि पातिव्रत की मर्यादा को तोड़ता था, फिर भी उनका समाज में बही में है सब सम्मान बना रहा ।

सबसे पहले तो वेवतापीयों के पुत्र बृहस्पति के सम्बन्ध में एक कथा है । बृहस्पति के बड़े भाई उतम्य कहीं बाहर गये हुए थे । उनकी गर्भवती पत्नी घर पर ही थी । उसके रूप को देखकर बृहस्पति कामातुर हो उठे और उन्होंने उसके साथ सहवास करने की इच्छा प्रकट की । उतम्य की पत्नी ममता ने कहा—हे देवर ! मेरे धर्म में तुम्हारे भाई को उल्लास है, इसलिए तुम्हारा सहवास का निवारण ठीक नहीं है । इस अवस्था में मैं तुम्हारे प्रयोजन की रीति को सह नहीं सकूँगी ।

बृहस्पति कामातुर हो रहे थे । उन्होंने ममता की बात न मानकर उसके साथ सम्भोग किया लेकिन धर्म में स्थित उतम्य के पुत्र बीर्यतमा ने अपनी माता के धर्म-भार को लोगों के पेटों से हटा कर लिया इस तरह बृहस्पति का बीर्य प्रगल्भ नहीं था सका ।

यदि उस प्राचीन काल में देवर भाभी के बीच यौग-सम्बन्धों को पाप समझा जाता तो बृहस्पति कभी इस तरह का सहवास नहीं करते और यदि कामातुर होकर उम्हाने इच्छा प्रकट भी की तो ममता अवश्य इस प्रस्ताव को धुलित और वापसपूर्व कहकर बृहस्पति को बुला कहती लेकिन इस तरह की कोई बात कथा में नहीं मिलती इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बृहस्पति और ममता के सम्बन्धों को प्रकट करने वाला समाज और उसकी व्यवस्था राम और सीता के समाज और उसकी मर्यादा से भिन्न तरह की थी ।

राम का बुन आनंद के बाद का पुन है । उस समय तक सम्भवतया पातिव्रत का धारक पूरी तरह कठोर मर्यादा बनकर समाज में भाग्य हो चुका था । लेकिन राम की कथा का जो रूप हमें प्राप्त मिलता है वह, बु मर्यादा के प्राप्त पाप के समाज के रूप को भी उसकी मर्यादाओं के साथ रखता है । कथाकार ने राम का सम्भारण करते समय एक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है और वह आदर्श उस समाज के सामने प्रस्तुत किया गया है जिसमें काल के प्रभाव से काफी भ्रष्टाचार फैल चुका था । भाई भाई राज्य के लिए लड़ते थे । स्त्रियाँ अभिचारिणी होकर अपने स्वार्थों के लिए पुरुषों के बीच कलह और ईर्ष्या पैदा करती थी । किसी प्रकार की मर्यादा की चिन्ता न करके स्त्री और

पुत्र के एक तरह के पापाचार में उस से एक उनके सामने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया। उनके साथ ही सीता लक्ष्मण भरत आदि के भी आदर्श रूप प्राप्त हैं। सीता और लक्ष्मण के सम्बन्धों को तो हम जानते ही हैं। सदा ही लक्ष्मण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी सीता को अपनी माता की तरह समझा। तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक मर्यादा की रक्षा की है कि है जब कि किष्किन्वापर्वत पर राम और लक्ष्मण सीता को खोजत हुए पहुँचें तो सुग्रीव ने वे धाम्पत्य राम के सामने रखे जिन्हें सीता विस्थापन करती हुए फेंक गई थी। राम ने लक्ष्मण से कहा—हे भ्राता ! देखो क्या वे धाम्पत्य सोच के ही हैं ?

इस पर लक्ष्मण ने कहा—हे भ्राता ! मैं तो इन्हें नहीं पहचान सकता क्यों कि मैंने तो आश्विन को सदा अपनी माता के सवाल समझा है और इसीलिए उनके पैरों से ऊपर दृष्टि उठाकर कभी देवता का साहस मैंने नहीं किया है। मैं नहीं कह सकता कि वे धाम्पत्य सीताजी के हैं या और किसी के।

बृहस्पति और लक्ष्मण की कथा की तुलना करके देखना है। क्या बृहस्पति उसी मर्यादा को पालन करते हैं जिसे लक्ष्मण ने किया है ? दोनों के आचरण पूरी तरह विपरीत मान्य होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिककाल में पति-पत्नी केवल आश्विन आदि के सम्बन्धों को इतनी कठोरता के साथ मर्यादा दित नहीं किया गया था जितना धार्मिक जनकर ! देखा जाये तो पातिव्रत का आदर्श पूरी तरह तो समाज में उसी समय प्रचलित हुआ और उसी समय इसके साथ पाप और पुण्य की भावनाओं का पूरी दृढ़ता के साथ समावेश हुआ जब दाम-पत्या के साथ सामन्त व्यवस्था उठ लड़ी हुई थी। धर्मों ने भ्रातृ ही यहाँ साम्राज्य स्थापित नहीं कर लिया। कुछ के मत में वे लोग तो अपनी बर्बर व्यवस्था में यहाँ धार्मिक थे। उनके साथ अपनी बर्बर संस्कृति थी। किसी दृष्टि में तो यहाँ पर रहने वाली ब्राह्मिक जाति धर्मों से अधिक सभ्य और संस्कृत थी। जो हो, धर्मों की संस्कृति पर यहाँ की प्रत्येक जाति की प्रभाव पड़ा है। उन धर्मों के बारे में यह बताना कर लेना किसी तरह उचित नहीं है कि उनके बीच यौन-सम्बन्ध पातिव्रत के आदर्श तक पूरी तरह मर्यादित हो चुकें। इसी लिए बृहस्पति धार्मिक की कथाएँ मिलती हैं। यदि इन्हीं बृहस्पति की मर्यादा पुरुषोत्तम राम के समाज की मर्यादा की कड़ीटी पर बस कर देना जाये तो बृहस्पति पतिव्रत माने जायेंगे लेकिन धार्मिक भी बृहस्पति की देवताप्राप्ति का पुण्य पुण्य माना जाता है और वेद पहले वाला पवित्र धर्म भी पुण्य सम्मान के साथ उन्नत साम गता है। यह कथन स उनके साथ की प्रतिष्ठा है। इसलिये यह नितांत आवश्यक है कि बिना समय के यौन-सम्बन्धों को उस समय का

सामाजिक परिस्थितियों के बीच रख कर देखना चाहिए। तभी उनके बारे में पाप और पुण्य का निर्णय किया जा सकता है।

इसी प्रकार वसुध के पुत्र शीर्षतमा की कहानी है। शीर्षतमा धन्वा था। यह काफी गरीब था। अपनी पत्नी का अपनी तरह पालन-पोषण नहीं कर पाता था। उसकी पत्नी ही महमत करके उसका पेट भरती थी। दूसरे शीर्षतमा का धन्यापन भी उनके मार्ग में एक बहुत बड़ा रोड़ा था। इसीलिए न तो वह कहीं जा पाता था और न उसे कोई काम मिलता था। फिर भी कामुक वह इतना था कि सुरभि की सन्तान से वीधर्म (जामादार) सीककर उसने दिन में ही अपनी पत्नी की वसुधों की तरह सम्भोग किया। इससे सभी ऋषियों ने उसको धिक्कारा और धाम्ना से बाहर निकाल दिया। उसकी पत्नी प्र इसी भी अब उससे काफी परेशान हो चुकी थी। उसने एक दिन भस्माकर शीर्षतमा से कहा—'मैं तुम्हारा बन्ध्यात्व का कारण तुम्हारा और तुम्हारी सन्तान का पोषण करते-करते बक गई हूँ। अब मैं तुम्हें छोड़कर जाती हूँ।

इस पर शीर्षतमा ने पूछा प्र इसी ! कहाँ जायेगी तू ?

प्र इसी ने कहा—'मैं किसी ऐसे पुरुष को अपना पति बनाऊँगी जो मेरा भरण पोषण कर सके। तुम्हारे पास यह कुलपूर्ण जीवन बिठाना मेरे लिए किसी तरह सम्भव नहीं है।

शीर्षतमा ने प्र इसी से एक जाने के लिये काफी बड़ा लेकिन वह धावे में धाकर जाने लगी तब उसने भी धावे में धाकर कहा—'मैं धात्र से ऐसी शान्ति-मर्षादा स्थापित करूँगी कि दावजमीन नारी एक ही पुरुष को अपना पति बनायेगी। पति के जीवित रहन या मर जाने पर भी कोई स्त्री दूसरे पति की धरण नहीं ले सकेगी। यदि कोई नारी दूसरे व्यक्ति के पास जायेगी तो वह निरसस्वेह पण्डित होगी। पतिहीनता धर्माति धर्मिणाहिता निधना और त्यक्तपतिध्या धावि स्त्रिया के लिए भी वह धात्र से पाप है।

यह कथा महाभारत में धात्री है और निबिधत रूप से ऐसे समाज की घोर संश्लेष करती है जब पातिव्रत का धावर्स स्त्री और पुरुष के सामने नहीं धावा था। यह कथा भी ठी धायों की है। शीर्षतमा ने पहल-पहल पातिव्रत की मर्षादा को स्थापित किया था।

इसी प्रकार स्वैतरेतु की कथा से सब परिचित है। उससे भी इस बर्बर समाज का चित्र उपस्थित हो जाता है जिसमें स्वतन्त्र सम्भोग चमत्ता था लेकिन स्वैतरेतु की कथा उस गम्य थी है जब मातृसत्ता समाप्त होने के कारण स्त्री की महत्ता काफी कम हो चुकी थी और पुरुष अपनी सक्ति से उसे धीनकर ले जाता था और अपनी कामनायना तुल्य किया करता था। स्त्री पुरुष की बर्बर

से पीड़ित हो रही थी तभी तो हमने अपनी रक्षा के लिये पातिष्ठ के धार्ष को स्वीकार कर लिया और स्वेतकेतु ने उसके लिय धार्ष बना दिया । लेकिन फिर भी यह मानना अक्षय्य होना कि स्वेतकेतु के कहने पर एक ही दिन में पूरे भारतवर्ष में पातिष्ठ का धार्ष मान्य हो गया । स्वेतकेतु की कहानी वैदिक-काल से पहले की है । इसी प्रकार धीर्बलया और बृहस्पति की कहानियाँ भी पूर्ववैदिक काल की सम्प्रदाय की धार संकेत करती हैं । यदि तुम सोचेंगे कि पूर्व वैदिक काल के यौन-सम्बन्धों में और वैदिक काल के यौन-सम्बन्धों में काफ़ी अन्तर रहा होगा यह ठीक है । बिनास तो होता ही है लेकिन हमके साथ यह मानना अक्षय्य होगा कि वैदिक काल में ही स्त्री पातिष्ठ की मर्यादा में पूरी तरह बँध चुकी थी । हाँ धार्य सम्प्रदाय हम दिशा की ओर बढ़ रही थी । यदि वैदिककाल में पातिष्ठ की मर्यादा के बाहर के सभी सम्बन्धों को पाप समझ कर ब्रह्मचर्य मानता तो वैदिक ऋषि अथवा बृहस्पति के इस कृत्य को भाई की पत्नी पर बलात्कार मानता और इसी कारण देव युद्ध के इस कार्य को दूषित समझ कर उनकी निन्दा करता लेकिन इस प्रकार की कोई बात नहीं मिलती है हमलिये यह मानना तर्कसंगत नहीं होना कि वैदिक काल में एक साथ ही पातिष्ठ का धार्ष मान्य हो गया था ।

मेरा यह निष्कर्ष का उद्देश्य केवल इतना ही है कि हम विज्ञान-क्षम की अक्षय्य तरह देखकर यह धारणा मन से हटा दें कि केवल पातिष्ठ ही धर्म है और बही धारण है । पातिष्ठ की धारणा धारण की थी अपनी परिस्थितियों की उनके अन्तर्गत हमको धार्ष माना गया लेकिन यही धार्ष जहाँ एक ओर स्त्री के जीवन में अधिक सुख और सुरक्षा लाया था बाह में बन्ध बनकर स्त्री को सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र से पूरी तरह हटाकर घर की बाहरदीवारी से बाँध गया । पति के चरणों तक ही पत्नी अपनी जेतना का विकास करे । पति ही हमके लिये पूर्य है और बही हमके जीवन का माध्य है । पति ही तीर्थ है । पति की सेवा ही वेद और धार्य पढ़ने के समान है । पति की सेवा से ही इहलोक और परलोक गार्ह्यक होना है इस प्रकार के उपदेश स्त्री के लिये अधिक लाभकारी मित्र नहीं हुए बल्कि उनकी अधिक से अधिक एक व्यास की श्रमण की ओर बनेमते गये और फिर तो पति का इतना अधिकार पत्नी पर हा गया कि यह उनकी अपनी इच्छा से बच सकता था । उनका शान कर सकता था और कोश धान पर उनकी पीठ भी गलता था । फिर पत्नी का इस व्यवस्था के प्रति उठा हुआ स्वर एक व्यभिचारिणी का स्वर समझा जाता था जो धर्म की मर्यादा की ही तोड़ना चाहता था । पति की इस निरक्षरता ने धर्म

का रूप धारण कर लिया था और इसी कारण एक स्वर होकर पुरुष समाज में स्त्री के अधिकारों को छीना ।

वैदिक युग बर्बर (शास-प्रथा वाली) सम्प्रदाय का युग है । उस समय से लेकर महाभारत युग तक हम स्त्री पुरुष के बीच अनेक तरह के धीन-सम्बन्ध पाते हैं । एक पुरुष को अनेक पत्नियाँ रखते हुए भी देखते हैं और उसके साथ ही एक पत्नी को एक से अधिक पति रखते हुए भी देखते हैं । इस तरह बहुपति तथा बहुपत्नी प्रथा के उदाहरण हम मिल जाते हैं लेकिन फिर भी बहुपत्नी प्रथा काफी माये तक चलती है और इसी का प्रचलन समाज में अधिक रहा । इसका मूल कारण यही है कि पुरुष ने स्त्री को श्रेष्ठ के रूप में लिया था और वह श्रेष्ठ पति के रूप में उसका स्वामी बन गया था । स्त्री सम्मानोत्पत्ति के लिए एक साधन साध हो गई थी । उसी अनेक स्त्रियों पर ऋतुकाल की सार्वभौमता का प्रबल उल्लास है ।

उदा मयाति और अमिष्ट को कहानी वैदिक काल से पहले के युग की कहानी है । वह देवासुर संग्राम के युग की घोर संकेत करती है । अमिष्टा असुरराज वृषपर्वा की पुत्री थी । वृषपर्वा के पुत्र शुक्राचार्य की पुत्री का नाम देवमानी था । एक बार अमिष्टा ने देवमानी का अपमान किया था । उसने उसे मिलाठी शायल की पुत्री कहा था, इसी का बदला लेने के लिये देवमानी ने अपना पिता से वृषपर्वा का राज्य छोड़ देने के लिए कहा । शुक्राचार्य ने राज्य छोड़ने का पुरा निश्चय कर लिया । वृषपर्वा ने शुक्राचार्य को किसी तरह छुट्टा करना चाहा । इसके लिए उनकी पुत्री देवमानी को प्रसन्न करना आवश्यक था । देवमानी ने अमिष्टा की अपनी दासी बनाने की माँग असुरराज के सामने रखी । असुरराज ने उसे स्वीकार कर लिया और अमिष्टा देवमानी की दासी बन गई ।

उसी क्रम में एक बार अमिष्टा ऋतुमती हुई । ऋतुस्नान करने के पश्चात् उसने राजा मयाति से प्रार्थना की । हे देव ! आप मेरे स्वामी हैं, किसी प्रकार मेरे ऋतुकाल को सफल बनाइये ।

अमिष्टा की प्रार्थना मानकर मयाति ने उसके साथ सहवास किया और उसके ऋतुकाल को सार्वभौम किया । अमिष्टा गर्भवती हो गई और उसके तीन पुत्र हुए ।

इसी प्रकार की और कहानियाँ भी हैं । ये कहानियाँ स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं कि पुरुष पत्नी की धारणा के ऊपर भी स्त्री के विषय में श्रेष्ठ की धारणा रखता था और यही धारणा स्त्री रखती थी उसी तो अमिष्टा ने मयाति की पत्नी न होते हुए भी उससे सहवास की इच्छा प्रकट की थी । फिर राजा मयाति

ने भी निस्संकोच होकर उसके साथ सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से सहवास किया। उस समय इसे 'बर्म' कहा गया है।

यही से स्त्री साधन के रूप में माय्य होती है और धीरे-धीरे पुनः उसके साधना का साम्य हो जाता है। जो स्त्री निस्सन्तान होती भी उसके प्रत्येक स्वान पर निराश हो जाता था। उसके जीवन को व्यर्थ समझ जाता था। वह स्त्री भी अपने आपको अधिष्ठित समझती थी। स्त्री की चेष्टाओं में यह बार-बार झुकी अवस्था कमकर बैठ गई थी कि सन्तानोत्पत्ति के प्रभाव में वह अपने जीवन की सार्थकता कुछ समझती ही नहीं थी। विवाह के पश्चात् सन्तानोत्पत्ति के लिए साधनमात्र बनकर ही वह पति के घर जाती थी और यदि उस अधोष्ठ कार्य को पूरा नहीं कर पाती थी तो उसके लिए विवाह का कोई मूल्य नहीं रहता था। इसीलिए पुरुष ने बन्ध्या पत्नी के होने पर अपने लिए दूसरे विवाह की व्यवस्था करली है।

मनु का मत है पत्नी के बन्ध्या होने पर पति को विवाह के पाठों बर्ष में दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। यदि उसकी सब सन्तानें पैदा होकर मर जाती हैं तो उसमें बर्ष में अभिषेदन करना चाहिये। यदि कन्या ही पैदा हों तो ग्यारहवें बर्ष और यदि पत्नी अधिव्याधिता हो पति को फौरन दूसरा विवाह कर लेना चाहिये।

इसी प्रकार कौटिल्य, वैष्णव आदि शास्त्रकारों ने भी व्यवस्था की है।

जब पुरुष स्वयं सन्तानोत्पत्ति के लिये असमर्थ होता है तो वह अपनी पत्नियों को दूसरे पुरुषों के साथ समागम करने की इसलिये आज्ञा देता है कि उनके गर्भ से सन्तान पैदा हो। पाण्डु ने अपने आपको रोग के कारण सन्तानोत्पत्ति के लिए असमर्थ पाकर कुन्ती को अन्य पुरुषों के साथ सहवास करने की आज्ञा दे दी थी। उन्नी बर्मेराज ने युधिष्ठिर को हम्प ने अकुल को पवन ने भीम को और अश्विनीकुमारों ने नकुल और महर्षेय को पैदा किया।

राजा विबिजयीर्ष की पत्नी अम्बालिका और अम्बिका के विवाह होने पर दृष्टाद पावन ने उनके साथ सहवास किया था और उनके गर्भ से पाण्डु और धृतराष्ट्र को पैदा किया था।

इस तरह अनेक कथानों हैं और इसी सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य को ही लेकर विवाह के लिए विधियों का अधिकार दिया गया है।

इस सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री का सबसे प्रमुख कार्य सन्तानोत्पादन था। उसके लिये वह साधन थी। जिस प्रकार पुरुष सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में अनेक कार्य करता था, उन्नी प्रकार स्त्री का दायरा सन्तानोत्पत्ति तक ही सीमित रह गया। आदिमवासियों के बीच स्त्री अनेक महत्त्व



पूर्ण कार्य करती थी और सामाजिक क्षेत्र में उसकी मान्यता का प्रमुख कारण यही था कि वह सन्तानोत्पत्ति के असाध भी अनेक ऐसे कार्य करती थी जो पुरुष के सामूहिक जीवन के लिए सामयिक होते थे। वह छाता उठाकर करके जाती थी और फिर सब मिस बाँटकर उस छाने को खाते थे लेकिन बाद में बनकर तो स्त्री भार्या बन गई। उसके भरणपोषण का कर्त्तव्य पुरुष का हो गया।

अबबिबेह में पाणिग्रहण के समय बोना गया एक मन्त्र है जिसे पतिपत्नी का भरण करते समय कहता है ममेवमस्तु पोष्या। अर्थात् मेरे द्वारा ही वह स्त्री पोषणीय है।

महामारुत में एक स्थान पर आता है भार्या भरणम् भर्ता पाननाम् पति स्तुतः। अर्थात् भरण करने योग्य स्त्री के भरण करने से भर्ता तथा पानन करने से पति कहलाता है।

मनु का मत है कि साम्नी भार्या का सदा भरण करना चाहिए।

✓ फिर आने बनकर तो बाह्यवस्त्र कुन्दरुद्र आदि सभी शास्त्रकार पत्नी का भरण करना पति का कर्त्तव्य ठहराते हैं। इसके विपरीत उस पुरुष की ओर निन्दा की गई है जो भार्या की कमाई पर आश्रित रहता है। महामारुत काट ने उस पुरुष को बोकाती के समान समझा है। अन्य स्थान पर ऐसे पुरुष की परमोक्त में भी दुर्गति बताई गई है। अनुशासन पर्व में तो यहाँ तक कहा गया है कि पत्नीजीवी पुरुष आह्वणपाती बोकाती तथा व्यभिचारी पुरुष की मूर्ति ही पारी अर्धमाष्य और भयानक होता है। उसके पाप की किसी प्रकार निष्कृति नहीं है। मन्त्र और अतिर का भरण करने वाले ऐसे व्यक्ति गरक में मर्कसियों की तरह धुने जाते हैं।

भरण के साथ-साथ पति के रक्षण का भी प्रश्न आता है। मैंने पहले लिखा है कि बिना समय मातृसत्ता का हाथ हुआ था और धर्म्यवत्ता फैलने के कारण स्त्री की अवस्था दयनीय हो गई थी तो उसने सबसे पहले पुरुष से रक्षा की कामना की थी और उसके बदले में ही उसने पातिव्रत की सारी मर्यादा को स्वीकार कर लिया था। तभी से पुरुष उसका रक्षक बन गया। वह सभी दृष्टि से स्त्री से अधिक शक्तिशाली था। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में भी उसका स्थान ऊँचा था, इसके साथ पारिवारिक और धार्मिक क्षेत्र में भी उसके ही स्वर की मान्यता थी तभी तो उसने अनेक मर्यादाएँ बनाकर स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को समय-समय पर इस तरह बरबाद कि स्त्री के अधिकार हुए एक बार कम होत भये और उसके ऊपर किसी तरह के अधिक बर्तन नहीं लगाए गये। ही तो रक्षण का अधिकार भी पुरुष को मिला। स्त्री उसकी एक प्रकार से सम्पत्ति थी। उसकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था।

✓ महाभारत में एक स्थान पर बताया है आपत्ति के लिए मन को बचाये और मन से स्थितियों को रखा करे । बिबुर ने यह बात कही है ।

✓ दूसरे स्थान पर अश्वत्थामा काहण के मुँह से महाभारतकार कहलाता है जो पुरुष धर्म के रक्षण में असमर्थ है वह महान अपराध पाता है और नरक में जाता है ।

वनपर्व में स्वयं श्रीपरी ही अपने पतियों को मनुस्य कहकर उनकी निन्दा करती है और कहती है मुझ में खल्व महाबलवान पाण्डवों की मैं निन्दा करती हूँ । मैं अपनी यशस्विनी धर्मपत्नी को कष्ट-पीडित देखते रहे । श्रीमतेन के बस को बिचकार है । धनु न के माण्डवी को बिचकार है ।

मनु ने तो यही ठक कहा है कि यदि पुरुष अपनी पत्नी की रक्षा नहीं करेगा तो उसके मर्म से दूषित बर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होगी । फिर मनु कहता है, मनुष्य अपनी पत्नी की रक्षा से अपने पुत्र, परिवार कुल आत्मा और धर्म की रक्षा करता है ।

इसी प्रकार बृहस्पति द्वारा प्रकटवात्म्य तथा अथ्य आत्मकार स्त्री की रक्षा पुरुष का प्रमुख कर्तव्य बताते हैं । मनु के साथ इन आत्मकारों ने तो स्त्री पर अटोर नियंत्रण की आवश्यकता समझी है क्योंकि ये स्त्री को स्वभाव से ही कामुक तथा नये पुरुषों की ओर सदा आकर्षित होने वाली मानते हैं ।

पुरुष की स्त्री के मरु और रक्षक के अधिकार विमल वा स्पष्ट धर्म यह है कि स्त्री किसी प्रकार भी अपना मरु और रक्षण करने की सामर्थ्य तो चुकी थी । उसका कार्य तो पति की सेवा करना, और उसके घर की देखभाल करना ही था । सम्प्राप्ति से ही उसके जीवन की सार्थकता थी । इस तरह पुरुष और स्त्री के बीच एक प्रकार से भ्रम का विभाजन हो गया । पुरुष हर प्रकार से जीविता अजित करके अपनी पत्नी का मरु पोषण करने के लिए बाध्य हुआ था । जो पुरुष इस कर्तव्य से पीछे हटता या उसकी धर्मधर्मों और स्मृतियों में जोर निम्ना की गई है और दूसरी तरफ स्थितियों का काम कबल पर को देख भाल करना और सन्तानात्पादन करना हुआ । इस विभाजन के अन्तर्गत स्त्री सामाजिक जीवन में पुरुष के साथ अपनी समानता का अधिकार छो बड़ी और फिर विधियों के हृष्य में इस कारण किसी प्रकार का असमानता रहा न हो इस कारण इस विभाजन को पूर्ण हक के साथ मर्यादित कर दिया गया । पौराणिक काल में अफर तो स्त्री के सामने वैयक्तिक बाह्य भी पत्नी तक का उदाहरण रमा गया और उसको आदेश दिया गया कि वह अपने अधिकारी पति की भी बिना किसी तरह की रक्षा नये सेवा करे ।

मात्रवत्स्य ने पहले ही इसकी मर्यादा स्थापित कर दी है। पति से डर करने वाली स्त्री के लिए एक सात प्रतीक्षा करे। एक सात के बाद भी वह पति से डरे तो उसके साथ भाग को छीनकर उसका त्याग कर दे। जो स्त्री अपने प्रसूत, मृत या कष्ट पति की सेवा न करके अन्यत्र जाती है उसके पान्शुमरु तथा अन्य सामान छीनकर तीन महीने तक उसका त्याग करना चाहिये। पत्नी के शराबी, कुमटा, प्रतिबुद्ध, रोमिछी, हिंस्र या अप्रभ्यवी होने पर पति को दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।

मात्रवत्स्य पति को तो दूसरा विवाह करने की आज्ञा देता है और पत्नी को अप्रतिबुद्ध और रोमी पति के साथ पूरी प्रतिभक्ति की मर्यादा स्थापित करके बाँध देता है। इसका एकमेव कारण यही है कि पति स्वामी है इसको पति की अपेक्षा अधिकार अधिक है। फिर जब पुरुष ने स्त्री को और भी अधिक दूर के भीतर बन्ध करके उसके लिए पर पुरुष की धीर बैठने तक को बोधपूर्ण कह दिया तो वह धीर भी अधिक परतन्त्र हो गई। सामाजिक जीवन पास-पड़ोस तक ही सीमित रह गया।

इसके अलावा प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त उदाहरणों से यह भी ज्ञात होता है कि पत्नी अपनी पत्नी को मेट स्वयं की दूसरों को देने का अधिकार रखता था। राजा मित्रमह ने अपनी पत्नी महवन्ती को महर्षि बसिष्ठ की दान रूप में दिया था।

स्त्री की सम्पत्ति के रूप में पुरुष ने लिया था, इसका सबसे बड़ा उदाहरण महाभारत में द्रौपदी का मिलता है। युधिष्ठिर ने द्रौपदी से बिना पूछे ही उसको बाँध पर लगा दिया था। उस समय युधिष्ठिर ने द्रौपदी के पुत्र धर्म रूप का वर्णन किया था। इसके बाद अपनी सारी सम्पत्ति हार जाने पर अपनी प्रिय पत्नी को भी बाँध पर लगा दिया था। उस समय समा में स्त्री ने युधिष्ठिर को धिक्कारा था। इसके पश्चात् दुर्योधन ने अपने अपमान का बदला द्रौपदी से लेना चाहा। उसने दुर्योधन को आज्ञा दी कि वह द्रौपदी को धर्म समा में लंबी कर दे। दुर्योधन ने उसे अपनी बाँधा पर भी बिठाने की चेष्टा की थी। अपना धीर अपमान होते देख द्रौपदी ने तथा से प्रकट किया था कि अपने आपकी बुद्धि में हारें हुए दास को अपनी पत्नी की बाँध पर लगाने का क्या अधिकार था ? दान को अपनी पत्नी और सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता फिर युधिष्ठिर दास होकर उसे बाँध पर कैसे लगा सकते थे।

बाग यही पुत्की पड़ गई। यदि उन समय वह स्वीकार कर लिया जाता कि दान को अपनी सम्पत्ति और पत्नी पर अधिकार है तो सारी दास-व्यवस्था एक

छाप टूट जाती। इसीलिए हम समय बैठे हुए सभी वर्गों में कहा, की पर पति का सभी हथामों में पूर्ण अधिकार होता है।

और इस तरह पति की सम्पत्ति गिनी जाने लगी। इसके साथ कन्या पर पिता का हमी तरह अधिकार माना गया यह भी अपनी कन्या को सम्पत्ति की तरह किसी को दे सकता था। माचवी की कहानी हम पक्ष को पूरी तरह स्पष्ट कर देती है। माचवी राजा ययाति की पुत्री थी। यह वैदिक काल से पहले की ही कथा है। महर्षि विश्वामित्र के शासन में वालव नाम के एक विद्यार्थी विद्याभ्यसन करते थे। वालव को विश्वामित्र का पुत्र भी माना जाता है। जब वालव की विद्या पूर्ण हो गई तो युव ने इन्हें जाने की आज्ञा दे दी। वालव ने युव दक्षिण देने की इच्छा प्रकट की। विश्वामित्र ने इसके लिए मना किया लेकिन वालव नहीं माना तब महर्षि ने बाध ली श्याम बर्तु बोड़े भनि। वालव पौड़ों के लिए सबसे पहले राजा ययाति के पास पहुँचा और वहाँ आकर उसने अपनी प्रार्थना रखी। राजा ने कहा—इ तपस्वी। मेरे पास श्याम बर्तु बोड़े तो नहीं हैं। एक तुम्हारी कन्या है। तुम इसे ले जाओ और इसके अपनी युव दक्षिण इच्छा कर लो।

वालव माचवी को लेकर चल दिया। वह सते तीन राजाओं के पास से गया जिन्होंने उसके गर्म से एक एक पुत्र प्राप्त करके उसे ६०० पौड़ों के साथ वालव को ही वापिस कर दिया। अन्त में वालव ने माचवी को महर्षि विश्वामित्र को समर्पित कर दिया। महर्षि ने भी उसके गर्म से एक पुत्र पैदा किया और ६० बोड़े वालव से लेकर अपनी नुदरखिला को पूर्ण माल लिया।

इस तरह माचवी बार समय समय व्यक्तियों के साथ रही और बारों ने ही उसके साथ सहस्रों विद्या और पुत्र पैदा किये।

इस कथा से कुछ ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं जिनसे विषय काफी स्पष्ट हो जाता है।

(१) स्त्री प्रमुख रूप से सन्तानीत्पादन का साधनमात्र थी। यही उसका कार्य था और यही उसके जीवन की शार्कनता थी। इसी के साथ उसके जीवन की बहिष्कार है। विचारणीय विषय है कि महाभारतकाल इतना होते हुए भी माचवी को बहिष्कार मानता है। उसके विषय में एक अप्रत्याशपूर्ण धारणा है कि माचवी की बरतान था कि वह बार-बार सम्भोग-सम्बन्ध स्थापित करके भी बर्बाद बनी रहती थी। यह क्रूर अप्रत्याश है। बाद में पौराणिक-वास्तविकता ने माचवी के इस हठ को उचित ठहराने के लिए यह अप्रत्याश मोड़ दिया है जिससे कई परिस्थितियों के बीच उठी ययाति की बर्बादों पर माचवी की कथा

कसी भी बाप तो भी उसमें मायबी के चरित्र पर किसी प्रकार का धब्बा पड़े मेल्लिग वास्तविकता तो यह है कि स्त्री किसी पुरुष से पुत्रोत्पत्ति के लिये सम्मान स्थापित करती थी उसे पापिनी नहीं समझा जाता था । केवल धार्मिक पुत्र के लिए जो स्त्री दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित होती थी उसी की निन्दा की गई है । संतानोत्पत्ति तो बड़ा ही पवित्र कार्य माना गया था और इसके लिए स्त्री को काफी छूट दे दी गई थी । तभी तो शर्मिष्ठा की शास्त्रकार ने किसी प्रकार निन्दा नहीं की ।

(२) दूसरी बात विचारणीय यह है कि जिस प्रकार आज कंबोरी कन्या को परपुरुष से सम्मान करने के लिए बोली माना जाता है और उसका सम्मान सदा के लिए समाज से भुप्य हो जाता है, इस प्रकार प्राचीन काल में नहीं होता था । उस समय कंबोरी कन्याओं के गर्भ से भी पुत्र पैदा होने की कम्पा है । सबसे पहली कन्या तो मायबी की है । मायबी कंबोरी थी । विभिपूर्वक उसका परिणयहण किसी के साथ नहीं हुआ था, फिर भी उसके गर्भ से संतान पैदा होने पर उस कन्या को किसी तरह भी पापिनी—नहीं कहा गया । बैसे पुत्रणकार ने उसके इस कार्य का भीषण एक बलत्कार के द्वारा स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि वह बार व्यक्तियों के साथ सम्भोग करके भी कंबोरी रह गई ।

दूसरा उदाहरण कुम्ती का है । कुम्ती के कंबोरेपन में ही कर्ण नामक पुत्र पैदा हुआ था । सोकनाज के कारण कुम्ती ने काफी दिनों तक उसे छिपाया लेकिन महाभारत के प्रारंभ में जब सबसे बड़ी बात खोकर बुधिष्ठिर के सामने रह गई तो बुधिष्ठिर ने एक बार अवसर घानेस में जाकर कहा कि आज मैं कहता हूँ कि त्रिबुओं के पेट में जबकि देर तक कोई बस्त नहीं पलेगी लेकिन फिर भी उसने सबसे पहले अपने ज्येष्ठ भ्राता कर्ण को ही पिच्छदान दिया । इसके पश्चात् भी कुम्ती के सम्मान में किसी प्रकार का भत्तर नहीं माया था । महाभारतकार ने सदा उसकी प्रशंसा की और उसको पूरे जीवन के साथ ही विवित किया है ।

इसके अलावा मत्स्यगन्धा भी कन्या तो थीर भी स्पष्ट रूप से सिद्ध कर देती है कि कंबोरी के साथ सम्भोग किसी प्रकार दोष का कारण नहीं समझा जाता था । पाराशर जैसे उपस्वी महर्षि ने जाकर मत्स्यगन्धा से उद्घात करने की इच्छा प्रकट की थी । इन पर मत्स्यगन्धा ने कहा—हे महर्षि ! मैं कंबोरी हूँ । आपके साथ उद्घात कैसे कर सकती हूँ । यह किसी प्रकार भी उचित नहीं है ।

इस पर महर्षि ने उसे बरबान दिया कि सहवास क परचाय भी उसका केवाचन नष्ट नहीं होगा ।

इस बरबान को पाकर मत्स्यगन्धा ने महर्षि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । महर्षि ने अपने उपोबस से चारों ओर कौहण छा दिया जिससे दूर ठट के लोगों को कुछ भी देख पाना असम्भव हो गया । उस समय महर्षि ने मत्स्यगन्धा के साथ नाम पर ही सम्बोध किया और उसका फलस्वरूप वृष्टछ पावन (महर्षि वेदव्यास) जैसे महापुरुष का रूप हुआ । इस कथा में भी ब्राह्मण शास्त्रकार ने वही बलत्कार लगा दिया है कि मत्स्यगन्धा का कोमार्य महर्षि के साथ सहवास करने के परचाय भी बाधित नहीं हुआ लेकिन वास्तविकता को बलत्कारों के नीचे के छीकने का प्रयत्न धात्र की परिस्थितियों के बीच किसी प्रकार भी नहीं छिप सकता ।

कथाकार ने तो महर्षि पण्डित के उपोबस की उस समय भी प्रशंसा की है जबकि महर्षि सामाजिक मर्यादा को टोड़ने के लिए उठाक हो रहे थे, फिर क्या कारण है कि उनकी समाज में मित्रा नहीं हुई और उनके पुत्र वेद व्यास को पूज्य ठहराया गया । सभी जगह उनके उत्कार किया गया । इससे यह साधून होता है कि जिस प्रकार की मर्यादा बर्बिक काल के धामपास नहीं थी । ठीक बर्बिक काल के पहले से लेकर महाभारत काल तक इसी तरह की अनेक कथाएँ मिलती हैं जिससे उस समय की बर्बर सम्यता के अन्तर्गत यौन-सम्बन्धों का एक दूतय ही चित्र धात्रों के सामने आता है । महाभारत में अनेकों कथाएँ हैं, जो जिस प्रकार के यौनसम्बन्धों को सामने रखती हैं । महाभारत के अनुसार तो पुरुष के लिये एक पत्नीघट के धात्र्य का कोई सूत्र्य नहीं था । धर्म, भीम धात्रि अपनी पत्नी द्रौपदी के रहने हुए अन्य स्त्रियों से भी अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं और उन्हें अपनी पत्नी बना लेते हैं । बहूपत्नी प्रथा के उदाहरण तो माछवर्ष में अनेकों मिलते हैं । फिर इसके लिए धात्रकारों ने ध्याय भी रखा किया है । राजा के लिये कई पत्नी रखने की धात्रा प्रधान की गई है ।

इसके साथ ही कई स्थानों पर इस प्रकार की भी कथाएँ मिलती हैं कि सुन्दरी काम से पीड़ित होकर पुरुष के पास जाती है और उससे प्रार्थना करती है कि वह उसके साथ सहवास करके उसकी नाम-बाधना दृष्ट करे । उस समय कामातुर स्त्री की इच्छा पूर्ण नहीं करने जाने पुरुष को बोयी टूट गया था है ।

इस तरह मूल रूप में देखा जाय तो पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध दो धात्राओं पर टिका हुआ था । एक तो रति और दूसरे धर्म के धात्रार पर ।

पुरुष का कर्तव्य है कि वह कम से पीड़ित स्त्री की इच्छा पूर्ण करे। स्त्री की रति की इच्छा पूर्ण न करने वाले पुरुष के लिए परलोक में पातना सही पड़ती थी। यह प्राचीन काल की समाज व्यवस्था के बारे में एक साफ भिन्न सामने रखता है, फिर बाब में इसी कामवासना के कारण स्त्री के ऊपर अपने ही दोष लगाये गये। दोष लगाने का विचारसिद्धा तो वैदिककाल से ही शुरू हो गया था लेकिन उस समय स्त्री को केवल इसी आधार पर नृपित नहीं समझा जाता था कि वह परपुरुष के प्रति आसक्त हो जाती थी। हाँ कभी कभी स्त्री के चरित्र के इस पक्ष की ओर संकेत अवश्य किया गया है। इसके अलावा भी और बाते उसके साथ दोष कम में लगी हुई हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र स्त्रियों को नीचे देखने का आदेश हमीलिए देता है कि स्त्रियाँ अपने मन को बस में नहीं रख पाती।

उर्बशी और पुवरवा की कथा भी ऋग्वेद में पाती है। उर्बशी अपने चिरह में व्याकुल पुवरवा को समझाती है कि स्त्रियों की भिन्नताएँ और तक टिकने वाली नहीं होती हैं। वे भेदियों के रूप में अर्थात् बिस्वास बिबाकर अपने बस में आये प्राणियों का बच करने वाली हैं।

तेल्लरीय ब्राह्मण में भी स्त्री की भिन्नता इन सभ्यों के साथ की गई है स्त्री को निरिन्ध्र होने के कारण बस में सोम का भाग लेने का अधिकार नहीं है और वह पापी पुरुषों से भी भरी बीठी बात कहने वाली होती है।

यहाँ तक स्त्री की भिन्नता का एक पक्ष है। इन तीनों बातों से यही साबुत होता है कि स्त्री व्यावहारिक पक्ष में बड़ी ही कुटिल और बिबासबाविनी होती है। इस पक्ष पर आये चलकर तो शास्त्रकारों ने स्त्री की ओर निंदा की है।

पंचतम में स्त्रियों के गुणों का बखान इस प्रकार किया गया है कुछ बिना बिचार किये कोई कार्य करना, उस का व्यवहार, मूर्खता, जाति भिन्न अपविणता और निर्धनता स्त्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।

इसी प्रकार विद्वत्पुत्र में भी स्त्रियों की निंदा की गई है। वे कामुक होती हैं। सदा दूसरे पुरुषों को अपने जाल में खँसाया करती हैं। वे कभी एक पुरुष से मुक्त नहीं होतीं। सदा नये-नये पुरुषों का सेवन करने की उनकी इच्छा रहती है।

महामारत में भी इसी प्रकार स्त्रियों की निंदा है।

विमर्ष में कहा गया है वे स्त्रियाँ एक पुरुष के साथ बात करती हैं दूसरे को अट्टाहों से देखती हैं और तीसरे का अपने बिच में स्मरण करती हैं।

परपुरुष के लिये जालसाज रहने के कारण वे भुलनाश, शोकनिशा और प्राणों के संकट की भी परबाहू नहीं करती ।

मैमायिछी संहिता में स्त्री के विषय में निम्न विचार प्रकट किये गये हैं  
 पति के द्वारा जन लेकर खरीदी जाने पर भी दूसरे पुरुषों के साथ विवरण का कार्य कर देने से स्त्री मूठ तथा बिनाश या आपत्ति या मृत्यु के द्वैता से सम्बन्ध है ।

इस प्रकार दोनों ही शोच क्षियों के साथ लगाये गये हैं लेकिन क्या कभी हमने विचार किया कि वे शोच केवल स्त्री के चरित्र के साथ क्यों लगाये गये, पुरुष की उसी स्वान पर निम्ना क्यों नहीं की गई क्या पुरुष पूर्णतः पवित्र होता है ? फिर स्त्री के इतने अधिक कुटिल होने का भी क्या कारण है ? ये प्रश्न विचारणीय हैं ।

स्त्री के साथ सारे शोच लगाने का एक कारण तो पुरुष का स्त्री के प्रति अपना विशेष दृष्टिकोण है जिसमें स्त्री उसकी सम्पत्ति होने के नाते उसकी है । इसलिए किसी दूसरे का उस पर अधिकार नहीं है । तभी तो मैमायिछी संहिता में कहा गया है कि पति के जन द्वारा खरीदी जाने पर भी दूसरों के साथ विवरण करने से स्त्री मूठ तथा बिनाश या आपत्ति या मृत्यु के द्वैता से सम्बन्ध है ।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के उठने के साथ ही कृषियुग में पुरुष ने स्त्री को श्रेष्ठ समझकर अपनी सम्पत्ति मान लिया था इसी कारण वहाँ स्त्री उसके आधिपत्य की हटा कर दूसरे की अपना स्वामी बनाने की बात सोचती है वहीं पुरुष उसे अशुभता का बोधी ठहराता है । अपने आपको उसने अनेक तरह से बचा लिया है । एक तो वह पत्नी रहने के उसके अधिकार में उसको इस तरह के शोचों से ऊपर उठा दिया है । फिर वह बिना अपनी पत्नी की आज्ञा के भी परस्त्री से सम्बन्ध स्थापित कर सकता था और फिर भी उसकी पत्नी बुरा नहीं मानती थी । इस तरह के अनेक उदाहरण महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं । फिर इसके अलावा भी पुरुष ने ही तो स्त्री के जीवन के बारे में अपने दृष्टिकोण से सोचा और अनेक स्थानों पर उसके चरित्र के दोषों की विवेचना की । शिष्यों का शिक्षा का अधिकार सिन बुद्ध या इसलिये पूरे भारतीय चिन्तन में नहीं भी ऐसा स्वतन्त्र नहीं मिलता जहाँ स्त्री ने दार्शनिक होकर पुरुष के सम्बन्ध में विचार किया हो । यानी अवश्य स्त्री दार्शनिक भी लेकिन वह अधिवाहिता की दृष्टिसे स्त्री और पुरुष के बीच रिक्त विनमता को नहीं समझ पाई और उसने इन सब पर अधिक चिन्तन नहीं किया । शिष्यों का चिन्तन के क्षेत्र में अधिक स्थान न होना यह स्पष्ट रूप से बताया है कि स्त्री का स्वतन्त्र समाज में



काफ़ी गिर चुका था वैदिक काल की तुलना में इसके जीवन में विपन्नता अधिक था नहीं थी । वैदिक काल में तो स्त्री भी विधुयी होती थी और पुण्य की तरह उसको भी यज्ञोपवीत धारि का अधिकार था लेकिन बाद में बसकर ही स्त्रियाँ को स्त्री के सिधे किसी प्रकार आवश्यक नहीं समझा गया ।

पातिषथ के इस आदर्श ने कि पति ही देवता है, उसकी सेवा ही को स्त्री के जीवन का साम्य माना है । वैदिककाल पढ़ने तथा तीर्थ स्वाम धारि करने से जो पुण्य पुण्य कमाता है, वह स्त्री केवल पति की सेवा करके ही कमा लेती है, स्त्री को मानसिक रूप से स्थितता हास बना दिया था । सामाजिक क्षेत्र में इसकी किसी प्रकार भी आवश्यकता नहीं समझी गई इसीलिये इसको पुहली कहकर घर की देखभाल करने तक ही सीमित कर दिया गया । यह सारा परिवर्तन सामन्तकाल में हुआ और वहीं स्त्री पुण्य की पूरी तरह हासी बन गई । जिस प्रकार वाद्ययुग में बालों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं थी इसी प्रकार स्त्रियों की भी सारी स्वतन्त्रता पुण्य ने छीन ली । उसकी ओर सदा अविरास की दृष्टि से देखा गया । सभी तो 'मित्रसाम' में स्पष्ट सब्धों में कह दिया गया है कि स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । यहाँ का शास्त्रकार कह गया है उनके स्थितानि मुखति परिरसणीय अर्थात् प्रक में सेटी मुखती की भी चौकसी करनी चाहिये ।

वर्चसुर्गों और स्मृतिगों में तो खुसे रूप से स्त्री की परतन्त्रता के सिधे एक बिचान बढ़ा कर दिया गया है । बसिष्ठ ने कहा है कि स्त्री को कभी भी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये । बचपन में तो पिता को जीवन में पति को बड़ा बस्या में पुत्र को उसकी रक्षवासी करनी चाहिये ।

पौतम वर्चसुम ने कहा गया है— अस्वतन्त्रता बने स्त्री ।

बसिष्ठ ने यही कहता है— अस्वतन्त्रता स्त्री पुण्य प्रमाण ।

ब्राह्मवस्त्र ने और भी स्पष्ट सब्धों में कह दिया है— न स्वातन्त्र्य नवविस्त्रिय अर्थात् स्त्री को कहीं भी स्वतन्त्रता नहीं है ।

स्त्रियों की इस परतन्त्रता का कारण बताया हुआ कारण कहता है— स्वातन्त्र्यादि प्रणवपन्ति खुसे जाता यदि स्त्रिय— अस्वातन्त्र्यमस्तामा प्रजापतिर कल्पयत । अर्थात् स्वतन्त्रता से कुनीन स्त्रियाँ भी बिगड़ जाती हैं अतः प्रजापति ने उनकी पराधीनता की व्यवस्था की है ।

इसके परचात पत्नी के कलभ्यों के बारे में भी शास्त्रकारों ने अपने मत दिये हैं ।

मनु ने पत्नी के चार कर्तव्य बताये हैं— वह सबैव ह्यनुस रहे, इहरागों में बध हो घर की गारी बस्तुएँ साफ़ मुखरी एवं और अपभ्ययो न हो ।

याज्ञवल्क्य ने पति की सेवा करना और सास दबसुर की वरसुमन्वना करना धर्म पत्नी के कर्तव्य निश्चित किये हैं ।

संक्षेप में पत्नी के किये ये बातें कर्तव्य स्वरूप निश्चित की हैं—पति या बड़ों की आज्ञा के बिना घर से बाहर न निकलना, ऊपर का बस्तन धोते बिना न निकलना स्त्रीप्रथा से न चलना व्यापारी सव्यासी मुख और बस के प्रतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से वार्तालाप न करना नाभि को न दिखाना मुक्त तक वस्त्र पहनना स्नान विवृत न करना अपना मुँह हाथ-बस्तन से ढके बिना और से न हँसना, अपने पति तथा प्रान्त सन्ध्याभ्यासों से दूर न करना गतकी, भूर्ता, प्रेमियों को मिलाने वाली साधुनियों प्रसन्नोक्तियों माया और बड़ीकरस के प्रयोग करने वाली तथा दुःखीत स्त्रियों से न मिलना ।

बृहस्पति ने भी पत्नी के धर्म की विवेचना की है । वह कहता है पति को पति आदि बड़े व्यक्तियों से पहले उठना चाहिये भोजन आदि उनके बाद लेना तथा उनके पीछे आसन पर बैठना चाहिये ।

माये चलकर स्वर्गपुराण में तो पति की निर्दोषता को भी ईसकर छह सेने का विधान किया गया है । पतिव्रता पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार है पतिव्रता स्त्री को अपने पति का नाम कभी नहीं लेना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से उसकी आयु में कृषि होती है, पति हाथ आसित होने पर और से नहीं बोलना चाहिये और पीटे जाने पर भी हँसमुख रहना चाहिए ।

पद्मपुराण में तो उपमा देकर पत्नी के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है वही पत्नी पतिव्रता है जो कार्य में दासी, काममुख में बैरवा, खिलाने में माता और विपत्ति में उराम परामर्शदाता होती है ।

पतिसेवा को शास्त्रकारों ने पत्नी का प्रमुख कर्तव्य माना है । बृहदेवर्त-पुराण में स्त्रियों का सबसे बड़ा व्रत, तप, धर्म और देवपूजन पतिसेवा ही है ।

महाभारतकार भी पति की सेवा को ही स्त्री का प्रधान कर्तव्य बताया है ।

मनु ने भी इहलोक और परलोक में स्त्री की पति सभी बताया है जब वह अपने प्रधान कर्तव्य पतिसेवा का धर्म-याति प्राप्त करे । वह कहता है साध्वी पत्नी कुशील, स्वर्णरत्न्यामी और गुणरूप पति की भी देवता की तरह सेवा करे, इसी से स्त्रियों की स्वर्ग में भी पूजा होती है क्योंकि स्त्रियों के लिये प्रत्येक धर्म से कोई एक व्रत या उपवास नहीं है ।

इसके बाद मनु पतिव्रता स्त्री के द्वारा वर्णित सोइने के अनन्तरूप उमर लिये सियार योगि की व्यवस्था करता है । मन, बचन और शिर से भी परपुरुष

के साथ व्यवहार न करने वाली स्त्री को पति के साथ स्वर्ग में निवास का वादा किया गया है और परपुरुष के साथ व्यवहार से स्त्री को नरक, पाप, रोगों से पीड़ित होने तथा विचार की बेचिनी पाने का विचार मनु द्वारा बड़ा किया गया है।

पातिव्रत की महिमा सभी धर्मग्रन्थों में पाई गई है और उनमें पति के सेवा की कोटि पर बढ़ाकर स्त्री को उसके चरणों की धाँसी के रूप में स्तुति दी गयी है।

विश्व स्वर्ग लोक को केवल बढ़ा पवित्र ऋषि और पवित्रात्मा प्राप्त ही पाते हैं उसको स्त्री अपने पातिव्रत का पालन करती हुई सदा में ही प्राप्त कर लेती है।

महाभारत में इसी बात का प्रतिपादन किया गया है। भावे जनकर महाभारत का कहता है पुरुषों के सब तीर्थ पवित्रों के चरणों में है। सब धर्म शास्त्रों और मुनियों का सेवक पतिव्रतों में है। उनके चरणों की धूल से पृथ्वी धीरे-धीरे पवित्र हो जाती है।

धर्म में मैं बृहस्पति का मत लिखता हूँ। बृहस्पति ने तो पति के स्वर्गवास होने पर पत्नी को बीबिस रहने तक का अधिकार नहीं दिया है।

यह कहता है — यही स्त्री पतिव्रता है जो पति के दुःखी होने पर धर्म उसके प्रसन्न होने पर हृष्ट विद्वेष्ट जाने पर मलिन और दुर्बल तथा पति के मरने पर स्वर्ग भी भर जाती है।

बृहस्पति के द्वारा यह धारण कर लेने के साथ ही जेष्ठ पत्नी पति की मृत्यु के पश्चात् अपने जीवन को धर्म समझने लगी। वैदिक की दास्यवासन की धर्मशास्त्रों में पति के साथ विवाह में जनकर मर जाता ही धर्म समझ और इसी कारण भारतवर्ष में काश्मीरियों तक सती-भ्रमा लगी। धर्म की रक्षकता तक हजारों स्त्रियाँ इसी धर्मविश्वास के कारण कि पति के साथ प्राण समर्पण कर देने से उन्हें पति के साथ ही स्वर्गलोक मिलेगा, अपने शरीर को विवाह की धर्म के बीच स्वाहा कर डालती थीं। सोची तो इस पातिव्रत का धारण ने भारतीय जाति की चेतना में कितना गहरा प्रभाव डाला सिद्धांत कि यह यह सोचने लगे यही धर्म तो पति के साथ जन्ममर्त्योत्तर तक रह कर उसकी सेवा करने में है। इस जीवन में जब तक विवाह इसके निमित्त प्रसर है जब तक पति के चरणों में बैठकर अपना कर्तव्य पालन करे और फिर परलोक तक न इसी कर्तव्य का स्मरण करके यथोचित रूप से इसका पालन करे। यही विचारवाला भारतीय स्त्री के अन्तरस्थ में ऊपर उठी थी। फिर वैदिक का धर्मशास्त्र भी स्त्रियों को कुछ बुरा देता था, इसीलिए स्वाम

रमान पर बिठाए, जलती भी और जीवित स्त्रियाँ बर्मे के नाम पर उनमें जल कर मर जाती भी । उसीसमय छताब्दी में राजा राममोहनराय धार्मिक प्रगति-शील विचार रखने वाले व्यक्तिमा ने उस प्रथा का जोर विरोध किया था तब कहीं यह बन्द हुई थी लेकिन फिर भी आज तक कहीं-कहीं इस तरह के एक दो सहाहरसु मिल ही जाते हैं ।

उसके साथ ही एक दूसरे पक्ष पर मैं और प्रकाश डाल दूँ । या तो पति-व्रता स्त्री अपने पति के साथ के साथ जलकर मर जाती भी और यदि जीवित रहकर वैधव्य जीवन आहूती भी तो शास्त्रकारों ने उसके लिये पुनर्विवाह को निषेध बताया है, जबकि पुरुष के लिये पत्नी के स्वर्णवासी होने पर पुनर्विवाह की आज्ञा दे दी है । स्त्री के जीवित रहने पर भी शास्त्रकारों ने किसी परि-स्थितियों के अन्तर्गत पति के लिये पुनर्विवाह को उचित माना है ।

मनु, वाङ्मन्य, नारद धार्मिक सूत्रकारों ने यही ता क़्या है कि यदि पत्नी अग्रिमवादिनी हो तो पति उसे छोड़कर पुनर्विवाह कर सकता है लेकिन स्त्री को पति के दोषों के बारे में न सोचते हुए विधुष्ट मन होकर पति की सेवा करनी चाहिये ।

पहले तो विधवा के लिये नियोग प्रथा का प्रचलन था लेकिन बाद में जन कर तो विधवा के लिये कठोर विधान बना दिया गया कि वह धृत्वापर्वन्त किसी पुरुष से किसी प्रकार का यौन-सम्बन्ध स्थापित न करे, फिर अनेक अन्य विस्वासों के कारण विधवा को असुख दिना जाने लगा । आज भी कुछ स्थानों पर विधवाओं को विचारियों की तरह फँतकर रोटियाँ दी जाती हैं । वैधव्य की पीड़ा हिन्दू परिवार में स्त्री के लिये असहनीय पीड़ा मानी जाती है । इसके मूल कारण यही हैं कि एक तो स्त्री की स्वतन्त्र आर्थिक मत्ता न होने के कारण उसे अपने और अपनी सम्पत्तियों के जीवन निर्वाह के लिये दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है और इनके लिये अनेक कटु बातें भी सहनी पड़ती हैं । एक बात तो भी यदा भीता उसके साथ व्यवहार किया जाता है, फिर पुरुष समाज तथा समरा व्यापारीय बनकर इनकी देखभाल किया करता है कि इसने किसी पद्य में पुरुष से बातें तो नहीं कर सीं या बातें करते-करते हमने धार्मिक ऊपर उठाकर देखा तो नहीं लिया । इसी आधार पर विधवा के ऊपर अनेक श्रद्धा लगा दिये जाते हैं, इससे उनका जीवन नरक की यात्रा सहने से भी अलग पाठनामय हो जाता है, यही कारण है कि मध्यकाल में स्त्रियाँ अपने पतियों की विधवाओं के साथ ही जलकर मर जाती थी ।

धार्मिक के अन्तर्गत के लिये भारतीय धर्म में धार्मिकी भीत यात्रा धार्मिकी धार्मिक दैवियों की कथाएँ पायी हैं । इसके साथ ही महाभारत में तो उन स्त्रियों

के कर्तव्य की भी विवेचना है जिनके पति कुछ काम के लिये बाहर चले गये हों। महाभारतकार उन स्त्रियों को धात्ता देता है कि वे अपने पति की अनुपस्थिति में किसी प्रकार के आशुपण्यादि से अपने शरीर को सुसज्जित न करें।

घाये बस कर व्यास भी लिखा है ऐसी स्त्री जिसका पति परबोध बना गया है, कभी स्वयं बिलाई नहीं बेनी चाहिये। उसका चेहरा पीला होना चाहिये। उसे चाहिये कि वह शरीर का गुरु भार न करके निराहार रहती हुई अपने शरीर को कृत्रु करे।

उक्त समय वह सदा पति का ही स्मरण करती रहे, इस प्रकार की व्यवस्था अनेक शास्त्रकारों ने स्त्री के लिये की है।

श्री पर पति के इस पूर्णधिकार के ही कारण पति स्त्रियों को पीट भी सकता था। श्री भूषा और कमुक भागी जाती है और उसके बारे में पुनः बार बार यह संकट करने मग जाता है कि वह वर्म की मर्त्या तोड़ने के लिये उत्तर रहती है, इसीलिय पति उसको पीट भी सकता था। तुम्हीबास जैसे बर्माभा भी श्री को ताड़न का अधिकारी बताते हैं। भारतवर्ष में वह ताड़न इतना बढ़ गया था कि बाद में चलकर शास्त्रकारों को इसके सम्बन्ध में नियम बनाने पड़े।

मनु ने इसके लिये मर्त्या निश्चित की है। वह कहता है यदि पत्नी, पुत्र बास लेकर और सदा भाई अपराध करे तो इन्हीं रस्ती या अपकी से पीठ पर ही पीटना चाहिये। शिर पर कभी ताड़न नहीं करना चाहिये। शिर पर मारने वाले को बोरी का दण्ड मिलना चाहिये।

शंख ने श्री के ताड़न को अच्छा समझा है। वह लिखता है साधन और ताड़न से ही श्री घर की शोभा बनाती है।

आज तक हिन्दू समाज में श्री का ताड़न चलता है। गाँवों में तो प्रायः प्रत्येक परिवार में श्री एक या दो बार पति के हाथों पीट ही जाती है। पीटने पर भी श्री पति के प्रति गुला नहीं करती। वह इसमें अपने सम्मान की क्षति नहीं समझती बल्कि इसे तो अपना गौरव समझ कर वह फिर उसी पति के चरणों की सेवा करने लगती है। पातिव्रत की यही मर्त्या भारतीय नारी के लिये अर्थ बताई गई है।

इन सारी बातों के आधार पर कुछ ऐसी बातें आती हैं जिन्हें प्रथम के रूप में खाना आज की परिस्थिति के बीच आवश्यक है।

(१) भारतीय नारी का व्यक्तित्व क्या है ?

(२) क्या भारतीय नारी के लिये पातिव्रत का उक्त आधार एक सार्वत्रिक सत्य है ?

(१) क्या स्त्री में ये सभी दोष होते हैं जिन्हें भारतीय ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मिलाया गया है ? और यदि होते हैं तो इनका कारण क्या है ?

(४) भारतीय नारी का अपना दृष्टिकोण पुरुष के प्रति क्या है ?

पहली बात पर विचार करते हुए मूल कारण होता है कि भारतीय नारी का व्यक्तित्व केवल आना बनाने, कपड़े धोने और पति की सेवा करने तक ही सीमित रहता है। इसके अलावा उसका कोई बापरा ही नहीं है। सामाजिक जीवन में उसका कोई भी भाग नहीं होता। अधिष्ठित बरेलू कामकाजों में सभी करने वाली स्त्रियाँ अब तक नहीं जानती कि आत्मकल सम्पन्न किम्बा है। कुछ दिनों पहले की ही बात है लोक-सभा और विधान सभा के लिये चुनाव हो रहे थे, उसमें स्त्रियों को भी बोट देने का अधिकार होता है। धर्म की स्त्रियाँ इतना भी नहीं जानती थी कि चुनाव क्या होता है और इतना तात्पर्य क्या है। इसका मूल कारण तो यह है कि इनके माय यह क्यों नहीं विचार करते कि यह अधिष्ठा केसी क्यों ? इसका यही कारण है कि स्त्री ने अपने व्यक्तित्व को परिवार तक ही सीमित समझा। पति की सेवा में ही उसने व्यक्तित्व की अन्तिम परिणति देखी। सभी उसके हृदय में शिक्षा के लिये कोई उत्सुकता नहीं बड़ी। किसी वस्तु को जानने की जिज्ञासा सदा के लिये क्षुब्ध हो गई और वहीं जाकर उनकी जड़ता प्रारम्भ हो गई। सत्ताधियों से इसी कारण भारतीय स्त्री सामाजिक जीवन से इतनी दूर जाती गई है कि आज समाज की समस्याएँ जोसूहा रूप में ही उनके सामने पड़ी हैं जिन पर विचार करने की आवश्यकता के नहीं समझती। पुरुष ने ही इस सब की जिम्मेदारी लेनी है और इसी कारण उसका भी स्त्री के व्यक्तित्व के विकास पर रोक लगाकर उसे अधिष्ठा की ओर प्रेरित किया है। आज भी अनेक परिवारों में यही धारणा प्रचलित है कि स्त्रियों को पढ़ना नहीं चाहिये। इसकी आवश्यकता ही क्या है। उनको नौकरी तो नहीं करनी ही नहीं है। पति उनका भरण-पोषण करेगा। इनका काम तो पति की सेवा करना है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि इस पाठिष्ठ के आदर्श के कारण स्त्री के व्यक्तित्व का विकास एक रास्ता तक गया। उसकी अंतर्गत केवल एक रास्ते की अंतर्गत हो गई जो सभी अपने जीवन की स्वतन्त्र सत्ता की वसुधा तक नहीं कर सकती।

दूसरी बात पर मेरा तो यही मत है कि पाठिष्ठ का आदर्श यद्यपि समाज में आज मान्य है और हमारी अंतर्गत के भीतर यह इतना गहरा जतर गया है कि हम अपनी पत्नी से इसी अर्थों के पालन करने की अपेक्षा करते हैं। लेकिन फिर भी विकासक्रम में यह आदर्श हीन ही समाप्त हो जायगा। कई परिस्थितियों के बीच अन्तर ही धीरे-धीरे दूसरे प्रकार के होंगे। इसीलिये यह विचार

करना असंगत होया कि यह भावार्थ स्थापित रह कर सदा स्त्री के व्यक्तित्व को मर्यादित करना रहेगा । मैं यह नहीं कहता कि उसके स्वाम पर कामाचार की अवस्था या जायेगी और मैं उस अवस्था को कोई प्रगति की अवस्था भी नहीं मानता हूँ लेकिन मेरा इतना निश्वास अवश्य है कि पातित्य का सामाजिकानीन रूप अवश्य बहल जायेगा और इसके स्वाम पर पुरुष और स्त्री के बीच स्वस्थ सम्बन्ध उठेगे जिनके बीच स्त्री के व्यक्तित्व को भी पुरुष के व्यक्तित्व के समान ही महत्व दिया जायेगा और फिर मीन-सम्बन्धों के साथ सम्बन्धकारीन पाप और पुण्य की धारणाएँ भी सम्भवतया काम हो जायेंगी । विकासक्रम को देखकर ही मैं इस प्रकार सोचता हूँ ।

तीसरी बात की ओर मैं पहले ही संकेत कर चुका हूँ । स्त्री में बोध होते प्रबन्ध हैं और धार्मिकताओं में जितने प्रकार के भी बोध बिनाये हैं वे सभी उनके चरित्र में मिल जाते हैं लेकिन प्रश्न तो यह है कि न्यायाधीश के रूप में बँठा पुरुष क्या इतना पवित्र है कि वह केवल स्त्री के बोध ही निकाले और अपने दोषों पर विचार भी न करे और फिर अधिकतर बोध तो इस तरह के बिनाये गये हैं, जो स्त्री के कार्यों के रूप में लिये गये हैं जिनमें इसने पुरुष की उन्नति भी अवहेलना करने की चेष्टा की है । क्या पुरुष को भी इतनी दृष्टिकोण से परखा गया है ! मेरे अनुमान से तो नहीं । यह बातों के बारे में निश्चय करने का दृष्टिकोण ही एकान्वी है इसलिए इनके लिये केवल क्षियों की ही दोषी समझना क्षियों के प्रति अन्याय होना । इसके अलावा यह भी है कि क्षियों इन दोषों की ओर क्यों बढ़ती हैं । इनके दो कारण हैं—

(१) एक तो उनका परलम्ब भीकन । सामाजिक है कि परलम्ब व्यक्ति मर्यादा तोड़ने के लिये सदा उत्सुक रहता है ।

(२) स्त्री का सामाजिक जीवन में कोई मान नहीं होता । स्त्री के जीवन में घर का काम-बन्धा करने तथा सन्तानोत्पादन करने के सिवाय और कोई कार्य ही नहीं होता इसी कारण उनका मन सदा असन्तुष्ट रहता है । स्त्री अपनी अवस्था में रहती प्रबन्ध है, लेकिन पुरुष का सा कठोर जीवन वह स्वीकृत नहीं करती । पुरुष उसकी अपेक्षा अधिक व्यस्त रहता है और परिवार की जिम्मेदारियों भी उसे अधिक रहती हैं, उसकी तुलना में स्त्री के पास अधिक प्रबन्ध होता है । वही कारण है कि उसका चित्त विषय-विकारों की ओर असाध्यमान हो जाता है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जितनी अधिक मर्यादाएँ किसी घर लदाई जाती हैं उतना ही अधिक वह व्यक्ति उनको तोड़ने के लिये उत्सुक होता है । लेकिन मैं भी इसका समर्थन करता हूँ । कहा है कि व्यक्ति तो पवित्रता से ही मर्यादाओं के बीच बँधकर सामाजिक जीवन स्वीकृत करना चाहता है, नहीं

तो स्वभाव से बहु स्वेच्छावादी होता है। यही कारण है कि स्त्रियों का चित्त अधिक चलायमान होता रहा है और उनके सम्बन्ध में विस्तार से दोनों की विवेचना की गई है। इन दोनों के लिये स्त्रियाँ अधिक उत्तरदायिनी हैं या उनके जीवन के विषय में काढ़ी की गई मर्यादों ?

बाँबी बाबू पर मैं इतना ही कहूँगा कि मध्यकाल में तो जर्म के रूप में स्त्री ने पुरुष द्वारा निर्दिष्ट सभी मर्यादों को स्वीकार कर लिया था और के उनकी चेष्टना में इतनी सहरी स्तर गई है कि आज भी स्त्रियाँ पति पाने के पश्चात् अपने जीवन के अधिक के बारे में कुछ सोचती ही नहीं। मुझे यह ब्रह्मकर बड़ा आश्चर्य होता है कि स्त्री तो विवाह के पश्चात् अपनी सभी जिंदा छोड़ देती है और पुरुष की जिंदा उस समय से प्रारम्भ होती है। लेकिन अब युग परिवर्तनों के परिवर्तन में स्त्री आपकक अवस्था होने लगी है।



## ६

## समाज, विवाह और प्रेम

विवाह के भी अनेक रूप रहे हैं। जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदलती रही हैं, उसी के अनुसार विवाह पद्धतियों में अन्तर आया जसा पया है। भारतवर्ष में भी सभी प्रकार की विवाह पद्धतियाँ रही होंगी। कुछ विद्वान जराहुरस्र लेकर यह चिन्त करने का प्रयत्न करते हैं कि भारतवर्ष में तो कभी भी वामाचार की अवस्था नहीं रही। यहाँ तो सदा से ही एक पुरुष के साथ एक स्त्री रही और सभी प्रकार लोहे के रूप में विवाह पद्धति जसी इस प्रकार की विचारधारा वाले लोग केवल अपने को ही समस्त ज्ञान का मुख्य मानकर अपने दम्भ को संतुष्ट कर लिया करते हैं। और, उनके तर्क का उत्तर भी क्या दिया जा सकता है। वे लोग तो वेद में एतद् वाक्य तक को लोभ लेते हैं।

पाण्डुरंग बामन काये ने वर्मसारन के इतिहास में विवाह के विषय में लिखते हुए अपना मत इस प्रकार प्रतिपादित किया है। यहाँ में ऐसे समाज के बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलते जहाँ स्त्री और पुरुष के स्वतन्त्र सम्बन्ध सम्मोघ पर आधारित हों। इस तरह के समर्पित समाज की ओर वेद कहीं भी संकेत नहीं करता। महाभारत में पाण्डु अपनी पत्नी कुन्ती से अवगत कहता है कि पूर्वकाल में रिश्दा स्वेच्छाचारिणी होती थी और वे एक पुरुष को छोड़कर स्वतन्त्रतापूर्वक दूसरे पुरुष के साथ विचरण कर सकती थीं। उत्तर कुन में ॥

प्रवस्था अभी तक रही है। उद्देशक के पुनः स्वेच्छाचार को रोकने के लिए मर्यादा स्थापित की थी।

समापर्व में भी बर्तन आता है कि यादृच्छिकता में स्त्रियाँ धर्म की हृषा से भी में आता या उसी प्रकार बिचरसु करती थीं और उन्हें किसी प्रकार भी नहीं रोक या चुनता था। कामाचार की प्रवस्था को सिद्ध करने के लिए इन उदाहरणों की प्रामाण्य नहीं माना जा सकता। पहली बात तो यह है कि उत्तर कुछ स्वयं पौराणिक है और फिर इन उदाहरणों से तो यही अधिक साक्ष्य होता है कि कामाचार ने प्राचीनकाल के यौनसम्बन्धों के बारे में हम तरह की कल्पना की थी। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि भारत में भारतवर्ष में हम प्रकार की स्थिति रही है और फिर समाजशास्त्रियों का यह मत कि प्रारम्भिक प्रवस्था में समान में स्वेच्छाचार या, धार्मिक आचरणमय मत नहीं रहा है।

हरिवंश वेदालङ्कार ने भी भी कारों के मत को स्वीकार किया है। फिर तो इनके मतानुसार भारतवर्ष में विवाह तथा स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्धों का विकास उस प्रकार नहीं हुआ जैसा अन्य स्थानों पर हुआ। आस्ट्रेलिया, हवाई द्वीप, मलेशिया, समोआ आदि स्थानों पर रहने वाली जातियों के बीच यौन सम्बन्धों का अध्ययन करके भोरयन तथा अन्य विज्ञानों ने उनके बीच प्रारम्भिक कामाचार से लेकर स्त्री-मुख के जोड़े के रूप में विवाह तक के विकास को स्पष्ट रूप में पाया है। फिर भारतवर्ष में रहने वाली प्राचीन जातियों को इन जातियों की कोटि में न रखने का तो धर्म यही है कि भारत के साथ सदा से ही विरक्त की अन्य जातियों की अपेक्षा धार्मिक सम्बन्ध और सुसंस्कृत रहे हैं। यह मानना उनके लिए अति स्वाभाविक भी है जो वेद की कुछ सात वर्ष पूर्व की रचना बताते हैं तभी तो वे वेद में उस प्रारम्भिक प्रवस्था के सम्बन्ध में प्रमाण ढूँढ़ते हैं और उनके न मिलने पर यह धोखा कर देते हैं कि भारत में कभी भी कामाचार की प्रवस्था नहीं रही।

इस विषय में कुछ बातों की ओर ध्यान आकषिप्त करना आवश्यक है।

(१) सबसे पहली बात तो यह है कि वेद सातों वर्ष पुरानी रचना नहीं है और न ही हमारी रचना के साथ ही सृष्टि का प्रारम्भ हुआ था। इतिहासकारों ने हमको ईसा से करीब ठीक-बार हजार वर्ष पूर्व की रचना माना है। स्वयं भी कारों वैदिक साहित्य आचार्य तथा उदनिषदों का समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व से लेकर १००० वर तक मानते हैं। फिर वेद की भारतवर्ष में मनुष्य के सम्पूर्ण विकास की जानकारी के लिए प्रामाणिक अन्य मान लेना वही तक उचित होता और फिर वेद के प्रमाण पर विरक्त विज्ञान या चुनता है तो महाभारत की कथाओं को नबि की कोरी कल्पना कहकर क्यों टापा

जाता है। यदि स्वेतकेतु और वीरवंसमा आदि की कोई कथा प्रचलित नहीं होता तो महाभारत में उसको सम्मिलित ही क्यों किया जाता। फिर इतिहास केवल त्रुटि तर्क प्रस्तुत करते हैं कि महाभारतकार तो प्रत्येक परिस्थिति का औचित्यपूर्ण करण करना चाहता है इसीलिये पाण्डु के मुह से उगने इस प्रकार कथा कहलवा कर कुन्ती के परपुरुष से सम्बन्ध जोड़ने को उचित ठहराया है। विचार करने की बात है कि यदि औचित्यपूर्ण करण का ही प्रयत्न था तो पाण्डु स्वयं ही इसके विषय में नीति निर्धारित कर सकते थे और यदि उन्होंने इस नय से नहीं की कि शायद कुन्ती उनकी बात को न माने तो वे इसके स्वाम पर धन्य कोई ऐसी कथा रख सकते थे जिसमें विशेष परिस्थितियों में केवल पुत्र की प्राप्ति ही एक पतिव्रता स्त्री पर-पुरुष के साथ सहवास करती है। इससे मर्यादा की रक्षा भी हो जाती और धर्मीय कार्य सिद्ध हो जाता लेकिन पाण्डु तो उस समाज के विषय में कुन्ती को बताया था वहाँ भीम-सम्बन्धों के साथ किसी प्रकार के पाप-मुष्ण का विचार ही नहीं था। बाद में श्वेतकेतु ने मर्यादा कापित की। कवि की इस कल्पित कहानी से तो समाज में बड़ा धनर्ष हो जाता था। इसके आधार पर तो सृष्टि के आदिपुरुष मनु और उनकी पतिव्रता पत्नी सतसमा की आत्मिक कथा को चुनौती दी जा सकती थी। फिर यदि इस तरह धर्म की मर्यादा का उत्सर्जन इस तरह की कथा की रचना करके क्यों करता। प्रश्न तो यह है कि यदि भारतवर्ष में पतिव्रता का आदर्श धर्म से ही रहा है तो कुन्ती के उस कार्य को औचित्य देने की आवश्यकता तो क्या थी। रामायणकार ने तो अप्सरा रक्षा के साथ रावण के बलहन्तार भी औचित्य नहीं देकर जबकि अनेक स्त्रियों पर बलता है कि अप्सरायें वेष्टाचारिणी होती थी।

आत्मिक बन्धों में प्राप्त कथाओं की यदि कोई कल्पना ही समझकर उनकी भारत के इतिहास की जानकारी में कोई आवश्यकता न समझी जाय तो सम्भव था कुछ से पहले भारतवर्ष के इतिहास का कुछ पता ही न चले। फिर वेद प्रमाण की सुझाई का ही क्या विश्वास किया जाये ?

(२) उस समय मनुष्य अपनी आदिम अवस्था की तुलना में कितना अधिक न्य हो चुका था, इसका प्रमाण सुझाई की रिपोर्ट पढ़कर हो जायेगा, फिर उस समय से भी हजारों वर्ष पहले यहाँ मनुष्य की जंगली अवस्था रही है। तब मात्र में कामाचार या यदि वेद बन्ने से हजारों वर्ष पहले के समाज का चित्र में नहीं आया तो क्या यह मान लेना चाहिये कि वह समाज भारतवर्ष में भी रहा ही नहीं ? यदि यह माना जाये कि वह यहाँ नहीं रहा और न इसके बीच उस तरह के भीम-सम्बन्ध यहाँ रहे जैसे धर्म स्त्रियों पर इसी

प्रकार के समाज में रहे तो फिर यही मानना चाहिए कि भारत में विकास विश्व के अन्य स्थानों में अलग तरह का हुआ लेकिन प्रेम इतना है कि इस तरह के विरहास करने वाले विद्वानों में वेद से पहले के समाज के अध्ययन की और अपनी कल्प नहीं उठाई है। यदि वे ऐसा करें तो सम्भवतया शक्ति के समकक्ष कोई दूसरा विकास का सिद्धान्त जो नरक भारत पर लागू हो प्रजाप में था जाये।

सबसे पहले तो विचार करना चाहिए कि विवाह का तात्पर्य क्या है। इनके सम्बन्ध में मैं धर्म ग्रन्थों व व्यापार पर धर्मों का इष्टिकोण सामने रखूंगा और प्राचीन धर्मग्रन्थों की भी विवाह के प्रति जो इष्टिकोण रहा है उसे भी तुलनात्मक रूप से रखूंगा।

अनुसंधान के अनुसार विवाह का तात्पर्य पुत्र को वृद्धिपति बना देना या विधवा देवताओं को उन्नत अथवा माय देवी पुत्र उत्पन्न करे। इसी व्यापार पर अथि ने बताया है कि पुराण विवाह द्वारा स्त्री को पार्श्वस्थ के लिये ग्रहण करता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अधिक इष्टिकोण को इन प्रकार रखा गया है धर्मग्रन्थसम्बन्ध वाले नामों कुलीन—धर्मात् धर्म और प्रजा के लिये ही स्त्री को ग्रहण करना चाहिए। स्त्री इन्हीं धर्मों को निष्ठ करती है। इनके अलावा रति को भी अथि ने विवाह सम्बन्ध में स्वीकार कर लिया है। इस तरह विवाह के तीन उद्देश्य हैं प्रजा को सम्पन्न करना धर्मात् पुत्र पैदा करना परिवार बनाकर देवताओं की उपासना आदि से धर्म का पालन करना और स्त्री के साथ रहकर रति को इच्छा को मृदु करना।

धर्म पुत्रों के लिये बहुत नामादित रहने से। उनमें लिए ही वे सदा देवताओं के धर्मात् विष्णु करते थे। जिस स्त्री के धर्म से पुत्र पैदा नहीं होता या उत्तम विवाह सम्बन्ध को धर्मात् नहीं माना जाता था। पुत्र के द्वारा ही तो पिता धनरत्न प्राप्त करता था। पुत्र ही उसकी मृत्यु के परभाव बंध पर प्यार को धार्य बढ़ाता था और अपने पितरों को पिच्छान देकर उनकी धारणाओं को संतुष्ट करता था, सभी तत्सारीय शास्त्रों में कहा गया है—प्रजामनु प्रजापदे तदु त्तर्यामनम् धर्मात् प्रजा धर्मात् सम्मान की उत्पत्ति ही धनरत्न है कि श्रद्धा धर्मात् धर्म से धर्मात् करता है प्रजापति धर्मरूपधर्मात् धर्मात् धर्म से सम्मान द्वारा धर्मरूप प्राप्त करे।

आगे चलकर महाभारत में स्पष्ट धर्मों में कहा गया है कि जो पुत्र सम्मान उत्पन्न नहीं करता वह धर्मात् ही होता है (धर्मरूपधर्मात् धर्मरूपधर्मियों में)। सम्मान की धर्मों के तत्त्वा देवताओं में पुत्रों की गई है। स्वर्गलोक

प्राप्त करने तथा वहाँ पर निवास करने और मरक की सातनामी से बचने के लिये पुत्रीत्पत्ति को धार्मिक माना गया है ।

इससे पहले ही गोपम ब्राह्मण में लिखा है कि पुत्र नामक मरक से पुत्र ही पिता की रक्षा करता है तभी वह पुत्र कहा जाता है ।

वसिष्ठ ने भी पुत्रहीन पुरुष के लिये किसी धर्म्य लोक की व्यवस्था नहीं की है । धर्मसूत्र का नाम है धनन्ता पुत्रियलोकः नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति अथैत धर्मात् पुत्र धर्मो के धनन्त लोक है लेकिन पुत्रहीन के लिए कोई लोक नहीं है ।

आपे वसिष्ठ किसी से यह कहना कि तेरी संतानें पुत्रहीन हों, इसे धर्मि धर्म के रूप में ही मानते हैं (प्रजाः सन्तपुत्रिस्तु इत्यभिधाप) ।

महामारुत धनुषा के प्रति अपना निम्न दृष्टिकोण रखता है धनुष का जीवन निरर्थक है । वह जिस पदार्थ को देख लेती है वैयता उस पदार्थ की हानि नहीं स्वीकार करते क्योंकि वह उसकी दृष्टि से दूषित हो जाता है । ऐसी हानि धर्म पुरुष के पिता से छह वर्ष तक संसृष्ट रहते हैं ।

महामारुत में वन्या स्त्री के धर्म को भी इतना बुरा माना गया है कि उससे खाने से शत्रु क्षीण हो जाती है ।

इस तरह प्रायः सभी प्राचीन धर्मों के अनुसार विवाह की सार्थकता तभी है जबकि विवाह सम्बन्ध के पश्चात् पुत्र उत्पन्न होने से परिवार समृद्ध हो । मनु ने तो सीधे धर्मों में कह ही दिया है कि स्त्री की रचना विवस्त्रा ने पुत्रोत्पादन के लिए ही की है ।

इसके पश्चात् धर्म का प्रबल उल्लाह है । वैदिक धर्म यज्ञादि कार्यों में पत्नी की आवश्यकता महसूस करते थे । उस समय विधेय रूप से धार्मिक कृत यज्ञ ही वा जिसके द्वारा धर्म वैयताओं को उनका धर्म समर्पित किया करते थे । ऋग्वेद में पति-पत्नी के साथ बैठकर यज्ञ करने का उल्लेख है । यजुर्वेद तथा सगर्वेद में भी पति के साथ पत्नी के यज्ञ करने की बात कई स्थानों पर मिलती है ।

अथर्व वेद ब्राह्मण में तो उस पुरुष को यज्ञ का अधिकारी ही नहीं माना है जिसके पत्नी नहीं होती (अयसीयो यय मोऽपत्नीकः)

पूर्व मीमांसा के अनुसार पति पत्नी दोनों ही सम्पत्ति के स्वामी हैं अतः उन्हें समुत्तरूप से यज्ञ करने चाहिए ।

यज्ञ में कई कार्य ऐसे होते थे जिन्हें पत्नी करती थी । धर्मिक उदाहरण प्राचीन धर्मों में ऐसे मिलते हैं जहाँ पत्नी के विना यज्ञ अपूरत माना जाता था । सबसे बड़ा उदाहरण तो सामायण का ही निबन्ध है । राजा राज ने

प्रजापतियों का असन्तोष देखकर अपनी बर्गपत्नी सीता को त्याग दिया था। सम्मग्न थाकर उसे बन में छोड़ आये थे लेकिन जब अश्वमेध यज्ञ का समय आया तो पत्नी की आवश्यकता पड़ी। पुरोहित ने कहा देव ! पत्नी के बिना अश्वमेध यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। उस समय सीता के न होने पर उसकी मुर्ख प्रतिमा बनाकर राम की बगल में रखी गई और तब अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ।

यह उदाहरण स्पष्ट रूप से बताता है कि प्राचीनकाल में स्त्री वर्ग-पालन में पति की सहकारिणी रही तभी विवाह का उद्देश्य वर्ग-पालन भी रहा गया और उसमें स्त्री को इतनी प्रमुखता दी गई। बाद में चलकर तो स्त्री का हन्त्र, बन्ध, अग्नि आदि देवताओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। पति ही उनके लिए देवता बन गया और उसकी सेवा ही देवपूजा के सम्युक्त हो गई। इस तरह विवाह के उद्देश्य का यह वर्गपालन का प्रारम्भिक रूप लुप्त हो गया और स्त्री और पुरुष के वर्ग के अलग-अलग क्षेत्र बन गये। अलग-अलग मर्यादाएँ स्थापित हो गई। इन्धुसि के रूप में वर्गपालन की भावना के साथ स्त्री पुरुष की समानता का आधार प्रायः मिट गया। बाद में तो स्त्री का वर्ग हुआ पति की अनन्यमात्र से सेवा करना और पति का कर्तव्य उसका भरण और रक्षक करना हुआ। इस तरह परिवार पातन तक ही वर्ग सीमित हो गया। उसके सामाजिक रूप के त्याग पर संकुचित मर्यादा पड़ी और उसने सदा के लिए स्त्री को सामाजिक क्षेत्र से हटा कर पति और परिवार के साथ बाँध दिया।

विवाह का तीसरा उद्देश्य उत्पन्न है। कामनामा की वृत्ति करना भी स्त्री और पुरुष के इन सम्बन्ध का उद्देश्य है। लेकिन शास्त्रकार ने केवल कामना सन्तान की वृत्ति के लिए ही विवाह को सार्थक नहीं माना है। सन्तानोत्पादन के साथ इसको बोलचाल में सम्मिलित कर लिया गया है। वास्तव्य वर्गपुरुष तो केवल वर्ग और प्रजा को ही पाली बहल करने के प्रयोजन मानता है। महा भारत में रति और पुत्र ही विवाह के प्रयोजन माने गये हैं। लेकिन जिन शास्त्रकारों ने प्रजा और वर्ग के साथ रति की सम्बन्धता नहीं की है वे ही वास्तव में विषय के प्रति व्यापक प्रस्तुत कर गये हैं। सब देखा जाये तो पहले-पहल स्त्री पुरुष के सम्बन्ध केवल काम कामना की वृत्ति के लिये ही प्रारम्भ हुए थे। पशु व्यवस्था में स्त्री पुरुष में इतनी साम्यव्यवस्था नहीं थी कि वे प्रजा और वर्ग की भी रति के साथ सम्मिलित कर सके। अतः यह मर्यादा है कि विवाह सम्बन्ध में रति की भावना की छोटा नहीं की जा सकती। रति की इच्छा को मन का विचार समझने की प्रवृत्ति किसी प्रकार का मनोवैज्ञानिक छाप नहीं रखती। भारतीय ग्रन्थों में अनेक इन तरह की बजाए मिलती हैं जिनमें स्पष्ट रूप से

रति की भावना से प्रेरित होकर स्त्री पुरुषों ने विवाह सम्बन्धों को स्थापित किया है। सकुन्तला और दुष्यन्त की कहानी क्या इस पक्ष को सिद्ध नहीं करती? इसलिए यह कारण प्रामाण्य है कि विवाह का तो एकमात्र उद्देश्य पुत्रोत्पादन है और यही स्त्री-पुरुष के पारिवारिक जीवन का पवित्र धर्म है। रति की कामना मन का विकार है, रति की इच्छा से स्त्री के साथ कभी सम्भोग नहीं करना चाहिये। यदि यही विचारचार सत्य है तो भारतीय धर्म यात्रा क्या बुराचरित्रता की भाषाएँ हैं? मेरे विचार से तो नहीं तो फिर रति की भी विवाह के उद्देश्य में सम्मिलित करने में क्या बाध है। रति के साथ अपवित्रता की कल्पना ही क्यों की गई है? क्या मनुष्य अपनी कामासक्त अवस्था में अपवित्र होता है?

भारत में इस विषय पर वास्तविकता माहि ने इसीलिये इतना लिखा है कि इसे आवश्यक माना गया था। 'कामस्तब्ध' भी इसीलिये कहा गया है। भारत में काम को एक विशेष प्रतिष्ठा दी गई है।

तो उक्त चर्चियों की पूर्ति के लिये पुरुष और स्त्री को विवाह करना आवश्यक बताया गया है। स्त्री के बिना पुरुष के जीवन को धबुरा ही समझा गया है। घटपक्ष ब्राह्मण में स्त्री को अर्द्धांगिनी कह कर स्पष्ट शब्दों में यह मर्मांश स्थापित की गई है कि जब तक पुरुष विवाह करके स्त्री को अपने घर नहीं ले जाता और उसके धर्म से मन्तान पैदा नहीं कर लेता तब तक उसका जीवन अधूरा है।

स्वर्ण जुह्वन में स्त्री को ही पुष्ट माना गया है। स्त्री के बिना पुत्र पूर्ण नहीं माना जाता है। इसीलिये प्राचीन ग्रन्थों में प्रत्येक स्वाम पर विवाह के ऊपर विशेष महत्व दिया गया। अनेकों इस प्रकार की कथाएँ पायी हैं कि जिन व्यक्तियों ने विवाह करके गार्हपत्य धर्म का पालन नहीं किया है उनको धृष्ट सोकों में कोई स्थान नहीं मिला है इसीलिये शास्त्रकारों ने इस शोक और परलोक की सिद्धि के लिये विवाह को आवश्यक माना है।

इस सम्बन्ध में मैं सकुन्तला और दुष्यन्त के बीच हुए संवाद को निकालता हूँ। महर्षि कश्यप की विदुषी पुत्री सकुन्तला त्रिमूर्ति अर्द्धांगि वक्षपन से ही पाता था विवाह के महर्ष्य की दुष्यन्त के सामने लोसकर रखती है और उसमें स्त्री के जीवन की महत्ता का भी बेह और दाख वा प्रमाण देकर प्रतिपादन करती है।

दुष्यन्त के द्वारा उनका और उनके पुत्र भरत का तिरस्कार देन कर यह प्रत्येक में धारण नहीं है। हे राजन् ! मैं धारण की अविचारितगी भाषा धारण के नाम स्वर्ण धार है कि धार क्यों नहीं धारण के गात्र मुझे प्रहृष्ट करने ? मैं

बार-बार आपसे प्रार्थना करता हूँ लेकिन आप इस पर ध्यान नहीं देते। मैं आपकी पवित्रता पत्नी आपके पास आई हूँ यदि आप मेरा निराहार करेंगे तो मैं रहूँगी आपके सिर के नीचे दुकानें हो जायेंगी।

वेदों के शास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि स्वामी भार्या के उदर में प्रवेश करके पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। इसी कारण स्त्री को 'आमा' कहते हैं। गर्भ पत्नी से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह गर्भ अभाकर पूर्व पुत्रों का उद्धार करता है। पुत्र-पुत्र नाम के मरक से पितरों की रक्षा करता है, इसी कारण उसको पुत्र कहते हैं। जो स्त्री गृहस्थ के कार्यों में असुर पुत्रवासी, पति से अलग प्रेम रखने वाली पवित्रता होती है नहीं वास्तव में भार्या है। भार्या पुरुष का आधा भाग है। भार्या सबसे उत्तम मित्र है। भार्या से ही गर्भ गर्भ और काम की सिद्धि होती है। भार्या से ही गृहस्थायम पूरा होता है। भार्या से ही मनुष्य धर्मात्म्यवासी होता है और भार्या से ही सुख मिलता है। मनुष्य बचन वास्तव में एकान्त में मित्र की तरह सुख देती है। गर्भ कार्य में पति की तरह लगाती रहती है और रोम आदि की पीड़ा के समय माता की तरह सेवा करती है। स्त्री के साथ में रहने से मनुष्य अपने सुने मन में भी सुख से रह सकता है। जिसके स्त्री नहीं है उस पर कोई विश्वास नहीं करता। इसलिये स्त्री ही पुरुष की अष्ट पति है। विपत्ति के समय और मरने पर पवित्रता स्त्री ही पुरुष का साथ देती है। इसी कारण विवाह की रीति बनी है। जो स्त्री एक बार किसी पुरुष को अपना पति बना लेती है वह अपने पति को परमात्म में जो पाती है।

पवित्रता का कर्म है कि पुरुष पुत्र रूप में आप ही स्त्री में उत्पन्न होता है इस कारण पुत्रवत् स्त्री का माता के समान आदर होना चाहिए। जैसे स्वयं को पाकर पुण्यात्मा पुरुष को प्रसन्नता होती है जैसे पति अपने पुत्र को छोड़ने में अपने बहरे की तरह देखकर आनन्दित होता है। जैसे धूप में जला हुआ मनुष्य ठण्डे पानी में नहाकर प्रसन्न होता है जैसे ही शरीर की पीड़ा और भय के उन्नाय से व्याकुल पुरुष स्त्री के साथ आश्रित पाता है। रीति, प्रीति और गर्म भार्या के ही आशीर्वाद है। इसलिये स्त्री से बड़ा अग्रिम वन्दन नहीं कहने चाहिए। स्त्रियों से पुराने पैदा होते हैं। वे ही पुरुषों की उत्पत्ति का पवित्र और निरव्यय स्थान हैं। स्त्रियों के बिना बड़े-बड़े ऋषि भी प्रजा उत्पन्न नहीं कर सकते।

हमारे परमात्मा मनुष्यता पति के लिए पुत्र की महत्ता बताती हुई कहती है जब पुत्र आकर पति के गले में गिरफ्तार है तो उनके हृदय को अत्यन्त सुख मिलता है। गर्भ, स्त्री का स्पर्श और उत्तम भी बड़ा शीतल और सुख



वायक नहीं होता । जैसे मनुष्यों में आहार्य, बीपायों में आम और पुष्पनीय पुरुषों में पुत्र मण्ड है वैसे ही पुत्र-स्पर्श वस्तुओं में पुत्र मण्ड है । पुत्र-स्पर्श से बढ़कर मुक्त इस संसार में नहीं है । मनुष्यों में देखा जाता है कि बोझी दूर पर दूधरे माँव की यात्रा से लौटकर जब घर भाते हैं तब स्नेह के मारे बालकों को गोद में लेकर प्रीति से उनका माथा छू बते हैं । कातकर्म संस्कार के समय जो वैदिक मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका अर्थ क्या है ? उन मन्त्रों का आशय है हे पुत्र ! तुम्हारे माँव मेरे माँव से और तुम्हारा दूध मेरे दूध से उत्तम हुआ है ।

हे पुत्र ! तुम केवल नाम-मात्र को मुझसे प्राप्त हो । तुम मेरी आत्मा हो । तुम्हारी पूरे सौ वर्ष की आयु हो ।

हे पुत्र ! मेरा जीवन और सब तुम्हारे सामीप्य है । तुम सुख से पूरे सौ वर्ष तक जीवित रहो ।

इस तरह मन्त्र बोलकर पिता पुत्र का माथा छू बता है । पिताओं का कहना है कि पुत्र कुल और सब को बचाता है, इस कारण पुत्र उत्पन्न करना सब बनों में श्रेष्ठ है । पुत्र पिता की कीर्ति और कुल के धर्म को बढ़ाता है और माता पिता को अपूर्व आनन्द देता है ।

सौ पुत्र सुदवाने की अपेक्षा एक सरोवर बनवाना श्रेष्ठ है । सौ सरोवर बनवाने की अपेक्षा एक यज्ञ करना श्रेष्ठ है । सौ यज्ञ करने की अपेक्षा एक पुत्र उत्पन्न करना श्रेष्ठ है ।

शकुन्तला के इस तरह विनय करने के कमस्वस्व आचरणवाली हुई कि हे राजा दुष्यन्त ! माता कभी धर्मकोप से उत्पन्न होने वाला पुत्र सब तरह पिता का ही रूप है । कारण पिता है, धर्म पुत्र है । माता तो सहायक मायार मात्र है । आप अपने पुत्र का मरुत-पोषण करिये । शकुन्तला का अपमान करना आपके लिए उचित नहीं है । पिता पुत्र रूप से आप ही अपने को नरक से बचावता है । यह पुत्र आपका है । जाया अपने स्वामी के साथे धर्म को लेकर पुत्र उत्पन्न करती है । जीवित रहकर भी अपने पुत्र को छोड़ कर उससे अलग रहना अर्थात् दुर्भाग्य की बात है ।

आचारवाली मुनकर राजा दुष्यन्त ने अपनी पत्नी शकुन्तला और पुत्र मरुत को स्वीकार दिया ।

शकुन्तला ने पत्नी का बड़ा ही उच्चारण प्रस्तुत किया है । उसके ये वाक्य कि मार्ग से ही धर्म धर्म और नाम की सिद्धि होती है, गहुर बचन बोलते वाली श्री एश्वत्थ में मित्र की तरह मुग देखी है, धर्म-कार्य में पिता की तरह

बग़ाती है और रोय आदि की पीड़ा के समय माता की तरह सेवा करती है, सारी समस्या को हल कर बैठी है।

छद्मता ने धर्म, धर्म और काम की सिद्धि में ही विवाह की सम्मति मानी है।

फिर आये छद्मता कहती है पुरुष पुत्र रूप में आप ही स्त्री में उत्पन्न होता है, इस कारण पुत्रवती स्त्री का माता के समान आदर होना चाहिए।

पुत्रवती स्त्री को अष्ट पत्नी के साथ ही माता का सम्मान भी मिला है तभी सम्मति का किन्हीं शास्त्रकारों ने रति को विवाह के उद्देश्यों में सम्मिलित नहीं किया। भारतवर्ष में माता का स्थान सदा से ही ऊँचा सम्मान प्राप्त रहा है। स्त्री विवाह के समय तो पत्नी बनकर अपने पति के घर आती है लेकिन उसने धर्म से पुत्र पैदा होते ही वह माता बन जाती है। पत्र को धर्म देना बड़ा ही पवित्र कार्य माना गया है। तभी प्रजनन-क्रिया के साथ किसी प्रकार पुरुष की कामवासना को जोड़ना शास्त्रकार ने धर्म का अपमान समझा है। फिर भी अधिकतर शास्त्रकारों ने काम और रति की व्यवस्था नहीं की है लेकिन केवल रति की इच्छा से ही स्त्री के साथ सहवास करने की प्रवृत्ति को सभी ने दूषित माना है। तभी विवाह ने मूलोद्देश्यों में पहले पुत्रोत्पत्ति को लिया है। फिर इसका एक और कारण भी था। जिस समय शास्त्रकारों ने अपने नियम रखे हैं उस समय समाज में बेव्या प्रथा भी प्रचलित थी। पुरुष अपनी धर्म पत्नी के समान कई एक रसैस भी रख लेते थे। उसके साथ सहवास करने का उद्देश्य केवल कामवासना की पूर्ति ही होता था। उनकी तुलना में धर्मपत्नी को अधिक सम्मान और मीरस देने के लिए ही सम्मति का कुछ शास्त्रकारों ने रति-क्रिया को विवाह के उद्देश्यों में सम्मिलित नहीं किया। कुछ भी हो यह तो मानना उचित ही होगा कि पत्नी केवल पुरुष की कामवासना ही पूर्ण करने के लिए नहीं होती और नहीं उसे पुत्रोत्पादन के लिए साधनभाव मानना ही उसके व्यक्तित्व के प्रति उचित सम्मान दिखाना है। स्त्री का प्रमुख कार्य प्रजनन अवश्य है लेकिन उसमें जिस तरह वह साधनभाव है उसी तरह पुरुष भी तो है, तभी तो छद्मता ने कहा है—पुत्रवती स्त्री का माता व समान आदर होना चाहिए। यह सभी सम्मति हो चला है जबकि पुरुष स्त्री को केवल लेश मात्र मानकर स्वयं दोषपाति के रूप में उसके विषय में सम्मति भी कारण हटा दे। विवाह में स्त्री पुरुष का स्थान बराबर होता है। कोई किसी एक दूसरे के धर्म का साधनभाव नहीं है। दोनों का एक समीप धर्म है और दोनों का ही जीवन समान दृष्टि में उस धर्म पालन के लिए एक दूसरे पर आश्रित है।

इसी आधार पर सारी विषमता दूर हो सकती है। तभी विवाह का पवित्रचूर्ण स्वस्थ रूप से स्थापित हो सकता है।

पुत्रोत्पादन, बर्मे वालन तथा रसिफल तीनों को सामूहिक रूप से विवाह का उद्देश्य माना जाना चाहिए लेकिन इसके साथ पति और पत्नी की समानता का प्राप्ति पहले स्थापित होना चाहिए तभी की पत्नी और माता के रूप में अपना उचित औरत रख सकती है।

संस्कृतशा ने पुनः समाज को चेतावनी दी है कि स्वामी धर्म के उद्धार में प्रवेष्ट करके पुनः रूप से उत्पन्न होता है। धर्मधर्मों में तो माता के औरत को काफी ऊँचा करके चिह्नित किया गया है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि आचार्य का गौरव इस उपाधियों से अधिक है, पिता से अधिक महत्त्व-सम्पन्न है और माता का गौरव एक हजार पितरों से भी अधिक है।

महाभारतकार ने माता को अष्ट पुत्र माना है।

वेदों में भी माता के गौरव का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद में ११ की आशा दी गई है कि वह माता के अनुकूल मन वाला होकर रहे।

मनु और याज्ञवल्क्य माता को पुत्र और पिता से भी ऊँचा स्थान देने हैं।

यजु के कहा है कि माता से बढ़कर कोई पुत्र नहीं है (नास्ति मातुः परो पुत्रः)।

माता के प्रति इसी सम्मानपूर्वक दृष्टिकोण ने विवाह की उच्च औरत प्रदान किया है और इसी कारण स्त्री को पुत्रोत्पादन का साधनमात्र धारण करने से माना लेकिन फिर भी उसके साथ धारणकार की स्त्री जीवन के प्रति पवित्र भावना ही रही। पत्नी रूप स्त्री के लिए अनेक मर्यादाएँ निर्दिष्ट करके समय धारणकार ने स्त्री को वह उच्च औरत प्रदान नहीं किया।

विवाह के उद्देश्य बताने के पश्चात् हम उन विवाह पद्धतियों से परिचित कराना चाहते हैं जो प्राचीन काल में प्रचलित थी और जिसका प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन भी प्राप्त है।

महाभारत के अनुशासनपर्व में युधिष्ठिर भीष्म से प्रश्न करता है पिता मह ! भीष्म वर के साथ कन्या का विवाह करने से हैं। देवताओं की पूजा पितरों का दर्पण, प्रतिधि का उत्कार और अपने कुटुम्ब का पालन आदि काम होना हैं। अतएव आप मुझे बताइये कि किस प्रकार के पाप को कन्या हैनी चाहिए?

भीष्म कहते हैं : हे वर ! वर ना स्वभाव, उसकी विद्या, कुल-मर्यादा

और उसके कार्यों की परीक्षा करके तब उसे कन्या दान करे। ऐसे विवाह को ब्राह्म विवाह कहते हैं। ब्राह्म-विवाह ब्राह्मणों के लिए अर्थात् है।

वर को वन घाटि द्वारा अपने अनुकूल करके जो कन्यादान किया जाता है, वह विवाह प्राजापत्य कहलाता है। प्राजापत्य विवाह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्गों के लिए अर्थात् है। वर और कन्या की पसन्द से जो विवाह होता है, उसे वान्धव विवाह कहते हैं।

वर बहुत सा वन देकर कन्या मांस लेता है और कन्या-भ्रम के पामन करने का मौक़ देकर जो विवाह करता है वह असुर विवाह कहलाता है।

कन्या-मद्य के सोमो को बलपूर्वक भारपीट कर राती हुई कन्या को बल-पूर्वक छीनकर जो विवाह किया जाता है वह राक्षस विवाह कहलाता है।

कन्यापक्ष की प्रस्तावधानी में कन्या को हरण करने से जो विवाह होता है वह पैशाच विवाह कहलाता है।

इन पाँच प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, प्राजापत्य और वान्धव, ये तीन वर्ग संमत हैं तथा राक्षस और पैशाच दोनों ही निन्दनीय हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ वैश्य विवाह कर सकता है। द्विर्गों में अपनी जाति की स्त्री ही प्रमाण है। किसी किसी की सम्मति है कि ब्राह्मण यदि तीनों वर्गों केवल मोन करने के लिये दूध की कन्या भी ले सकते हैं। लेकिन फिर भी हमना निषेध किया गया है। शायद यह है कि ब्राह्मण यदि तीनों वर्गों का दूध के वर्ग से सम्मान उत्पन्न करना सभी के मत से निन्दनीय है।

ब्राह्मण यदि दूध के वर्ग से सम्मान उत्पन्न करे तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। तीस वर्ग की आयु के पुरुष के साथ दस वर्ष की और इकतीस वर्ष के पुरुष के साथ चार वर्ष की कन्या का विवाह करना चाहिए। जिस कन्या का पिता और भाई दोनों न हों उसके साथ विवाह न करे क्योंकि उस पर यह मन्त्रेह रहता है कि हमने पिता से होने पुत्र के स्थान पर तो नहीं मान लिया है।

रजस्वला हो जाने पर कन्या तीन वर्ष तक अपने कुटुम्बियों के द्वारा विवाह होने का प्रतीक्षा करे, उसके बाद वह स्वयं अपनी पसन्द का पति चुन सके। जो कन्या देना जरूरी है उसका पति पर घटन प्रभ होता है और सम्मान की वृद्धि होगा। जो कन्या इनके विरुद्ध व्यवहार करती है वह निन्दनीय है। मनु के मत से माता के सपिण्ड में और पिता के मोत्र में कन्या का विवाह नहीं होना चाहिए।

भीष्म के दश वयन में विवाह के मन्वन्थ में अनेक श्रवण उक्ते हैं। शरी

बारी से हम प्रत्येक को भेजे और उसके विषय में साक्ष्यकारों के मत प्रस्तुत करेंगे और हम भी अपनी बात सामने रखेंगे ।

सब से पहले तो भीष्म ने केवल ब्रह्म प्रकार के विवाहों को विनाश किया है । महाभारत के धार्मिक पर्व में ही अक्रान्तसा बुध्यन्त के संवाय में बुध्यन्त प्राण प्रकार के विवाहों की विवेचना करता है । वे इस प्रकार हैं :

- (१) ब्राह्म विवाह
- (२) केव विवाह
- (३) प्रार्थ विवाह
- (४) प्राजापत्य विवाह
- (५) मासुर विवाह
- (६) बान्धव विवाह
- (७) राजस विवाह
- (८) पैशाच विवाह

विवाहों के नाम विनाश के साथ ही बुध्यन्त ने यह भी बताया कि कौन से विवाह किस वर्ग के लिये उचित हैं ।

इससे पूर्व कि हम उसके विवेचन का अध्ययन करें वह सोचना आवश्यक है कि एक ही समाज में प्राण प्रकार के विवाह किस लिये मान्यता प्राप्त कर सके थे । स्पष्ट ही इसका कोई निश्चित कारण होना आवश्यक है ।

यहाँ हमें कुछ प्रचार्य जातियों (races) के नाम पर मिलती हैं जैसे मासुर अर्थात् असुरों की विवाह प्रथा । बंधवों यानी गाँववालों की विवाह प्रथा । राजस प्रचार्य राजस विवाह प्रथा और पैशाच अर्थात् पिशाचों की विवाह प्रथा । यदि हम यह मानें कि (वर्षा इन चारों जातियों के स्रोत (source of origin) मानव जनन मिलने पर भी) यह जातियाँ (races) नहीं थी बल्कि यह सब एक ही जाति (Race) के अन्तर्गत सांस्कृतिक भेद थे, तब भी समस्या नहीं गुलझती क्योंकि एक ही जाति में इतनी संस्कृतियाँ संभव नहीं हैं । यदि भी भी ठो भी एक विपरीत अन्तर्गत किन्हीं थी । देव विवाह देव जाति की विवाह प्रथा है । देव जातियों को ही कहते थे । मनु से मान्य हुए । सबसे पहले देव होते थे ।

धर्म ब्राह्म और प्राजापत्य विवाह विभिन्न युगों की विवाह-प्रथाएँ हैं, जिसके बारे में व्याख्या करने को अब स्पष्ट आधार प्राप्त नहीं होते ।

जो हैं, इतना निश्चित है कि यह प्राण प्रचार्य प्राण संस्कृतियाँ की छोटकरी हैं, या किसी प्रकार एक ही समाज में अन्तर्गत मान्य हुए हैं । इसका अर्थ यह है कि संस्कृतियाँ में पारस्परिक संतुष्ट प्रक्रिया का जो धार्मिक भी और उसके

फलस्वरूप एक दूसरे के संपर्क से घटत में यह सब प्रभाव भारतीयों में भाव्य हो गई थी ।

हिन्दू समाज अनेक जातियों और संस्कृतियों के मिलन से ही बना है । आज प्राबल्यपन्था इस बात की है कि हम इन पुरानी संस्कृतियों के विषम में बहुरा अध्ययन करें और वास्तविकता का पता लगाने की चेष्टा करें ।

दुष्यन्त ने कहा—मनु भगवान ने कहा है कि इन साठ प्रकार के विवाहों में से पहले से चौथे तक ब्राह्मण के लिये और पहले से छठे तक क्षत्रिय के लिये विहित है । राजा राज्य साठवाँ राजस विवाह भी कर सकते हैं । वैश्य और सूत्र धामुर विवाह भी कर सकते हैं । पहले से पाँचवें प्रकार के विवाह तक पहले के तीन—ब्राह्म, वैश्य और प्राजापत्य वर्म-विहित धर्मवत् उत्तम हैं और चौथे व पाँचवें प्रकार के विवाह जिनमें धर्म और धामुर सम्मिश्रित हैं, वर्म विहित नहीं हैं । पद्माच और धामुर विवाह द्विती को कभी नहीं करने चाहियें । वे उनके लिये प्रशंसनीय नहीं हैं । विवाह की यही वर्मानुमोदित विधि है । एक की दृष्टि में या बानों की दृष्टि से होने वाले गान्धर्व और राजस विवाह ही क्षत्रियों के लिये सच्छ हैं ।

वासिष्ठ वर्मसूत्र केवल छ प्रकार के विवाहों का उल्लेख करता है । उनके नाम ये हैं : ब्राह्म, वैश्य, धाम, गान्धर्व, क्षात्र और मानुष ।

घटत की दोनों विवाह पद्धतियाँ राजस और धामुर पद्धतियों के ही समानुक्त्य हैं ।

धनुषासन पर्व में श्रीराम विनामह ने छ प्रकार की विवाह पद्धतियों की परिभाषा दे दी है । लेकिन वैश्य और धाम विवाह पद्धतियों की परिभाषा किसी में नहीं की है । उसके लिये मनु की परिभाषाएँ रखता है । मनु कहता है जब पिता अपनी पुत्री का बरवानुपणालि से युवायुक्त करके उसे किसी ऐसे पुरोहित को समर्पित करता है जो पूजा-कार्य सम्पन्न कराता है, तो उसे वैश्य विवाह कहा जाएगा ।

जब वैश्य एक माय और एक वैश्य उपहारस्वरूप लेकर किसी को कन्या समर्पित की जाती है तो उसे धाम विवाह कहते हैं । इसमें उपहार कन्या के मूल्य-स्वरूप नहीं लिये जात ।

इन सभी विवाह पद्धतियों में वैद्याच विवाह को अत्यन्त दुष्टित समझा गया है जब कि कोई पुरुष जोरी से जाकर उस समय कन्या के साथ समागम करता है जब या तो वह सीई हुई होनी है या मछ के कारण बेहोश भी होनी है ।

पहले चार प्रकार के विवाहों में तो त्रिषपूर्वक नग्नाशन नियम जाता है

बाकी चार प्रकार के विवाहों में कन्या के पिता तथा उसके संरक्षक की इच्छा या अनिच्छा का कोई अधिक मूल्य नहीं होता ।

इस सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न है कि साहूकार ने प्रत्येक वर्ग के कार्य के अनुसार ही उनके लिए मर्यादा निश्चित की है । वैश्य और शूद्र प्राचीनकाल में निम्न कोटि में गिने जाते थे, इसीलिए इनके लिए ब्राह्मण और वैशाख विवाह की उचित बताया है । अश्वि और योद्धा हीता है, अपने बल के आधार पर ही वह सारा कार्य करता है इसलिए राजस विवाह उसके लिये उचित ठहराया गया है । महाभारत में राजस विवाह के कई उदाहरण मिलते हैं । भीष्म पितामह स्वयं वनपूर्वक काशिराज की पुत्री अम्बा अम्बिका और अम्बिसिन्धु को विविचबीर्य की पत्नी बनाने के लिए हरकर लाए थे । इसी प्रकार अर्जुन ने कृष्ण की बहिन सुभद्रा का हरण किया था । दोनों ही योद्धाओं को कन्यापक्ष के लोगों का सामना करना पड़ा था । भीष्म के सामने तो परशुराम जैसे महावीर भी घाते थे लेकिन महावीर देवव्रत ने उसी को परास्त कर दिया था ।

इसी प्रकार बाल्यार्थ विवाह का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण लकुन्तला और दुष्मन्त का विवाह है । महर्षि कण्व की अनुपस्थिति में ही लकुन्तला ने दुष्मन्त के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और उसी क्षण से वह दुष्मन्त की पत्नी हो गई थी । फिर उसके गर्भ से दुष्मन्त का एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था ।

ब्राह्मण विवाह के उदाहरण भी यथ-तथ मिल जाते हैं । मासक ने बाकर मावडी को चार स्वामी पर चार विभिन्न व्यक्तियों को बेचा था । उन व्यक्तियों ने उसके गर्भ से पुत्र पैदा किये थे । वह एक प्रकार से ब्राह्मण विवाह ही कहा जायेगा । जैसे महाभारतकाल में मावडी को अन्त तक कंधारी ही कहा है और किसी व्यक्ति के हाथ उसके विवाह को स्वीकार नहीं करता लेकिन वन हैकर स्त्री लेता और उसके गर्भ से पुत्र पैदा करना ब्राह्मण विवाह-पद्धति के अन्तर्गत ही मानेगा ।

वैशाख विवाह पद्धति के उदाहरण काफी मिलते हैं । बसात्कार इसी वैशाख पद्धति के अन्तर्गत आता है ।

इनक घलावा पहले चार प्रकार के विवाहों का तो साधारणतया समाज में हर जगह प्रचलन था ।

पहली बार को छोड़कर बाकी समार्य विवाह पद्धतियाँ हैं । बाल्यार्थ विवाह प्राचुरी बाल्यार्थ और यश जाति के बीच चलती थी । बाद में प्राचीन में जो इसका प्रचलन हुआ गया इसी प्रकार राजस विवाह तथा वैशाख विवाह भी । राजस और वैशाख जाति के बीच चलता था । ब्राह्मण विवाह धनुरो के बीच चलता था ।

बाल्यार्थ विवाह पद्धति के विषय में तुम्हें एक बात याद रखनी चाहिये कि

जब कन्या किसी पुरुष को अपना पति बनाने का संकल्प कर चुकी है और उसके पिता या संरक्षक उसका विवाह किसी अन्य पुरुष के साथ करना चाहते हैं, उस परिस्थिति में यदि कन्या का प्रतीति इसके साथ विवाह करना चाहती है और आवश्यक उसका ह्रास कर ले जाता है तो उसमें रासस और सम्पन्न होने पर पक्षियों का समाने हो जाता है ।

स्वयंवर की प्रथा भी सम्पन्न विवाह के सम्पन्न होती है । स्वयंवर का अर्थ है ऐसा प्रसन्न जब कन्या स्वयं अपना घर चुनती है । स्वयंवर कई प्रकार के होते हैं । सबसे पहला प्रकार तो यह है कि जब कन्या पूरी तरह चुनती होकर विवाह के पूर्णतया योग्य हो जाती है फिर भी यदि उसके पिता या संरक्षक उसका विवाह नहीं करता है तो तीन मासिक चर्च हो जाने के पश्चात् उसके अधिकार हैं कि वह स्वयं अपने लिये घर सजा करे । अतिष्ठ धर्मसूत्र बोधा यम धर्मसूत्र मनुस्मृति आदि में यही विधान है ।

याम्यस्मृत्य धर्मसूत्र तो इस कन्या के लिये जो स्वयं अपना घर खोजने की आज्ञा देता है इसके में तो कोई माता पिता अधिक होते हैं और न कोई संरक्षक होता है ।

महाभारत में सावित्री की कथा आती है जिसमें सावित्री स्वयं उस समय अपना घर चुनने जाती है जबकि उसके माता-पिता उसके लिये घर चुनने में असमर्थ हो जाते हैं ।

दूसरे प्रकार का स्वयंवर यह होता है जबकि कन्या के पिता की ओर से कोई धर्म समी के सामने रखी जाता है । जो भी योद्धा स्वयंवर की धर्म पूरा कर देता है वही कन्या को अपनी पत्नी बनाने का अधिकारी होता है । सोदा और होपरी के स्वयंवर इसी प्रकार के हैं । इस पद्धति के अन्तर्गत कन्या की इच्छा का ध्यान नहीं रहता । उसे तो धर्म पूरा करने नाम योद्धा के साथ विवाह करना पड़ता है चाहे वह उसको पसन्द करे या नहीं ।

इनके साथ कुछ ऐसे स्वयंवरों का उदाहरण मिलता है जिनमें कन्या का अपना घर चुनने की पूरी स्वतन्त्रता होती है । इन धार समयों की कथा में यही पता लगता है कि समयों ने बिना किसी धर्म के अनेक योद्धाओं के बीच मन को पसन्द किया और उसे ही अपना पति बनाया । यही हम से देखा जाय तो वास्तव में स्वयंवर तो यही होता है । धर्म रखकर समर्थ योद्धा को घर के रूप में चुनना एक प्रकार से रासस पद्धति का परिचायक है । कभी-कभी तो वास्तव में उस प्रसन्न पर कुछ छिड़ भी जाता है ।

इन परवाह शीघ्रकाल में यह भी धारणा थी कि स्त्री-पुरुष के बीच



और व्यवहार पर उस विवाह पद्धति का पूरा प्रभाव पड़ता है जिसके अन्तर्गत जनक विवाह हुआ है। उनकी सन्तान तक पर उसका प्रभाव पड़ता है।

मनु कहता है कि ब्राह्मण प्राजापत्य देव और धार्ष्ट विवाह पद्धतियों के अन्तर्गत जिसका विवाह हुआ है उनके पुत्र पवित्र विचार वाले सुन्दर और सुलभीत होते हैं। वे धन-आय से सम्पन्न होकर समृद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी धातु भी लम्बी होती है। इनके अलावा बाकी चार प्रकार की विवाह पद्धतियों के अन्तर्गत हुए विवाह के फलस्वरूप दुष्ट निर्बन्धी, फूटे पुत्र पैदा होते हैं जो वेद और धर्म की व्यवहेलना करते हैं।

शास्त्रनायक मुद्गसूत्र बताता है कि पहले चार प्रकार के विवाहों में से किसी प्रकार के विवाह से जो पुत्र पैदा होता है वह अपनी माता और पिता के पीछे और अपने की बाराह पीढ़ियों का उद्धार करता है। इसी प्रकार का मत कई शास्त्रकारों का है।

यदि आज के समाज में देखें तो हमको कई विवाह-पद्धतियाँ बड़ी बहुत प्रचलित मिलेंगी।

ब्राह्मण विवाह पद्धति तो साधारणतया प्रत्येक स्थान पर प्रचलित है। देव विवाह पद्धति आजकल कहीं नहीं मिलती। प्राचीनकाल में तो इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। प्राजापत्य विवाह पद्धति भी अब नहीं मिलती। जैसे देखा जाये तो कन्या का पिता अष्ट बार को अपनी कन्या की उपहार के रूप में ही समर्पित करता है। धार्ष्ट विवाह का प्रचलन भी अब नहीं है। राजस विवाह आजकल नहीं चलते लेकिन फिर भी विवाह की प्रचलित रीति में हमें राजस विवाह पद्धति की ओर स्पर्श मिलता है। पहले-पहल चार कन्या के द्वार पर तोरन मारने के लिये आता है। उस समय वह तलवार उठाकर अपनी बधू के घर के द्वार पर लकड़ी के बोझों पर मारता है। इसका अर्थ है कि वह इसपूर्वक कन्या को उसके पिता के घर से छीनकर ले जा रहा है। पहले ही दिन वह अपनी सामर्थ का परिचय देने के लिये कन्या के द्वार पर आता है। यह निश्चित रूप से राजस विवाह पद्धति का चिह्न है जो ब्राह्मण विवाह पद्धति के साथ जुड़कर केवल परम्परा के रूप में रह गया है। यही कारण है कि चार बधू के घर कोई न कोई राख बाँधकर जाता है। मामूली तौर से उनके हाथ में एक कटार दे दी जाती है।

जैसे अपने वास्तविक रूप में राजस विवाह पद्धति अब नहीं प्रचलित नहीं है। वह सामान्यतः तक ही जाती। नृष्णीराज चौहान के द्वारा संयुक्त हरण का अन्तिम उदाहरण हमें मिलता है जिसमें राजस विवाह पद्धति को अपनाया गया है। इसके पश्चात् उदाहरण नहीं मिलते।

घासुर विवाह पद्धति अक्सर आज भी समाज में प्रचलित है। बहुत से पिता अपनी कन्याओं का विवाह करते हैं और उनके द्वारा बनोपाजित करते हैं। निम्न जातियों में यह प्रथा अधिकतर चलती है। उनमें पिता जितना अपने व्यवसाय से नहीं कमा पाता है उतना वह कन्या बेचकर कमा लेता है। कन्या को एक तरह से लीजें की नीज सम्पत्ति लिया जाता है। फिर अकेले उम्र बसे या कुछ विधुर भी बन बेचकर कन्या के पिता की सन्तुष्टि करते हैं। यह हमका विवाह कन्या के साथ होता है। इस तरह के अनेक उदाहरण समाज में मिल जाते हैं। फिर भी इस प्रकार के विवाह को कुरा सम्पन्न जाता है और उस पिता को जो इस तरह कन्या विवाह के द्वारा अपनी जीविका कमाता है या बन मंचय करता है और पापी माना गया है। इस पद्धति के अन्तर्गत जन के सोम से कई एक निष्ठुर पिता अपनी सुकुमार कन्याओं को साठ घास के बूड़ों के साथ बाँध देते हैं और इस तरह कन्याओं का जीवन अमिताभ बन जाता है।

पैसाच विवाह तो उस समय तक चलता ही रहेगा जब तक मनुष्य की कृत्रुति नहीं बदलेगी। आज भी अनेक कन्याओं के साथ समाज में बलात्कार होता है। यही पिशाचों का सा कार्य है। पिशाच मूल रूप से कन्या मान माने वाली जाति थी। धर्म इनसे छुला करते थे। इसी प्रकार पिशाच वृत्ति से आज भी सज्जन छुला करते हैं। केवल दुष्ट और पापी ही इन पद्धति को ग्रहण करते हैं।

वाय्वर्ष विवाह आजकल काफी चलने लगा है। आजकल काफी विवाह बन लड़की लड़कों के होते हैं। विवाह विवाह से पहले प्रेम सम्बन्ध कुछ कुछ होता है। घर के दोनों पक्ष के माता पिता विवाह की स्वीकार कर लेते हैं तो विधि-पूर्वक बाह्य विवाह पद्धति के अन्तर्गत दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है और यदि किसी प्रकार का विरोध होता है तो लड़के और लड़की दोनों आकर अदालत में अपना राजिस्त्रेशन करा लेते हैं और इन तरह 'कोर्ट मैरेज' करके अपनी इच्छा पूर्ण कर लेते हैं। इस तरह उनके माता-पिता की भी विवाह के समय आवश्यकता नहीं होती। लेकिन कभी-कभी इन प्रकार के विवाह बाद में सफल नहीं होते। कुछ लोगों के मुँह से सुना जाता है कि प्रेम विवाह होते तो बड़े ओषध के साथ हैं लेकिन बाद में चलकर वे इस कुरी तरह से असफल होते हैं कि रात-दिन की पुरुष के बीच कसह और लड़ाई चलती रहती है।

इसका कारण यही है कि अधिकांश इस तरह के विवाह पुरुष और युवतियों के बीच गैरमैत्री के उस ओशीले जीवन में तम होने हैं जब मनुष्य एक सुन्दर वस्तु बनकर अपनी योग्यता पर ध्यान देता है लेकिन जब बाह्यविक

जीवन की कठोरता उस सपने को तोड़ देती है तो प्रणय की सारी मधुरता नष्ट हो जाती है और उसके स्थान पर जीवन के प्रति एक भीम सी पैदा होने लगती है। सारी प्रणय भीड़ा एक उपहास के रूप में अन्तर को कुरेदने लगती है। बस यही है सम्पत्ति के जीवन में विषमता का प्रारम्भ हो जाता है।

इसके बाद दूसरा कारण यह भी है कि इस तरह की प्रेम-भीड़ा में प्रेम की गम्भीरता कम होती है बल्कि अधिकतर काम-निष्ठा होती है और इसी के आधार पर पारिवारिक जीवन का साथ मायावक्त होता है। कुछ समय पश्चात् ही यह जोश अंतर जाता है। विवाह के पहले और उसके कुछ दिनों बाद तक की मधुरता फिर एक भीम में बदल जाती है।

इसी कारखानों से कभी कभी प्रेम-विवाह अकस्मत्त हो जाता करते हैं लेकिन जिन प्रणय-सम्बन्धों में प्रेम की गम्भीरता होती है और पारिवारिक जीवन से समझौता करने की क्षमता होती है, वे सम्भवतया कभी असफल नहीं जाते। कई एक परिवार हैं जिनमें प्रेम विवाह हुए हैं और पति पत्नी के जीवन में किसी प्रकार की विषमता नहीं पाई है बल्कि उनका जीवन इस तरह के विवाह सम्बन्धों से और अधिक सुखी हो गया है। तो प्रेम विवाह का सफल होना व्यक्ति को चेतना पर अधिक निर्भर रहता है। जब व्यक्ति अपनी माँकाँझों को समेट कर किसी परिस्थिति के साथ समझौता करने की क्षमता रखता है तभी उसके जीवन में सुख और सन्तोष का उदय नहीं होता है तो दुष्सा का हाहाकार सर्वत्र अन्तर में मचा रहता है। जो कितनी स्थितियों में रह कर अपनी जीवन-यात्रा पूरी करती है। विवाह से पहले वह कम्पा रहती है और विवाह के पश्चात् पत्नी बनती है लेकिन इसके भी पश्चात् सन्तान को जन्म देकर माता बनती है। पत्नी और माता की स्थिति में जो अपनी चेतना का तात्कालिक परिवार के स्वार्थ के साथ करना पड़ता है। जो कम्पा अपने प्रिया के स्वरूप का पत्नी और माता के स्वरूप के साथ तात्कालिक करके परिवार के स्वार्थ के साथ अपनी चेतना का साम्य स्थापित कर लेती है वही अपने जीवन में सफलता और सुख का अनुभव कर सकती है।

अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख उपन्यासकार टीमस हार्डी (Thomas Hardy) के उपन्यास 'स्वदेशवासी की वापसी' (Return of the Native) में यूस्टेसिया वार्ड (Eustacia Vye) नाम की एक साहसी लड़की है जो दो व्यक्तियों के साथ अपने प्रणय सम्बन्ध स्थापित करती है। एक के साथ विवाह भी कर लेती है लेकिन उसके हृदय में दुष्सा और महारानीता का सर्व शरा अपना फन चढाये खड़ा रहता है और विवाह तथा अपने पति को वह इस दुष्सा को पूरा करने के लिये एक साधन के रूप में लेती है। उसका अपने प्रेमी के साथ

आकर्षण ही इसलिये था कि वह उसकी सारी इच्छाओं को पूर्ण करेगा। वह धामा करती थी कि उसका प्रेमी उसे पेरिस जैसे नगर में ले जाकर सहर की सभी स्त्रियों के बीच बिठावेगा। वसत्र में उसे ले जायेगा। वह बड़े धानदार तरीके से वहाँ रहेगी। यहाँ उसके जीवन की तृप्ति भी लेकिन उसके प्रेमी का रास्ता दूसरा था। वह अपने जीवन को दूसरे ही धार्मिक पर आसने का प्रयत्न कर रहा था। उसने गाँव में आकर ग्रामीणों की शिक्षा और धर्म-विश्वास देने से तभी उसके हृदय को कबोट लगी थी और अपने गाँव में ही रह कर ग्रामीणों को शिक्षित करके उनके धर्म विश्वास दूर करने का निश्चय कर लिया था। सहर की बमक बमक वह काफी देर चुका था और उसको सार हीन देखकर वह उससे ऊब चुका था। वह भव गाँव में ही सादा जीवन व्यतीत करके अपनी साधना में लय आना चाहता था और इसी कारण उसने यूस्टेसिया नाई में विवाह किया था कि वह भी शिक्षा बन कर ग्रामीण स्त्रियों के धर्म विश्वास मिटावेगी। वह यही सारी विषयों की जड़ थी। दोनों के जीवन की मित्र मित्र दिगामें थी। दोनों के उद्देश्य समान-समान थे। दोनों ने ही एक दूसरे को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये साधन समझकर परस्पर विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था।

विवाह हो गया तब यूस्टेसिया नाई ने अपने पति से सहर चलने से सिने कहा और इसके साथ ही अभिषेक के बारे में अपनी मधुर वचनार्पण को उसके सामने रख दिया। इसके साथ ही क्लियम ने भी (Clyde) को अपना पति था अपनी नीरस और कठिन साधना के पूरे चित्र को पत्नी के सामने रखा। वह वहाँ ने यूस्टेसिया के हृदय का हा-हाकार बड़ गया और धर्म में यहाँ तक हुआ कि एक दिन जब यूस्टेसिया अपनी तृप्ति पूरी करने के लिये अपने पहले प्रेमी 'बाइबल' के साथ पेरिस जाय जाने के लिये तैयार हो रही थी, बाइबल के निश्चित समय पर न पहुँचने के कारण उसकी जीवन में निराशा होकर आत्महत्या करनी पड़ी। उसी समय उगना असन्तोष और हा-हाकार धाम्य हुआ। मृत्यु से पहले एक दिन भी वह अपने पति के साथ भुग और सन्तोष को मान लेकर नहीं रही।

इस सबसे क्षिप्त का जीवन भी घोर विवाह में फिर गया। पत्नी की मृत्यु और पारिवारिक जीवन के हा-हाकार ने उसके सभी मधुर स्वप्नों का नाश कर दिया और धर्म में तो उसका जीवन पूरी तरह अभिषेक बन गया। उसकी माना धर्म तब उससे इसी कारण प्रभावित रही कि उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध अपनी पत्नी की मृत्यु से शादी की थी और धर्म में जब वह बड़ा भार

गई तो विलम के हृदय पर एक बीस और ठुक गई । जिस माता की इच्छा का तिरस्कार करते पारिवारिक जीवन के मुख के बिये यूस्टेसिया से विवाह किया था, वह सारा सपना ही टूट गया और उसके साथ ही माता और यूस्टेसिया सदा के लिये उसके जीवन को बुझी बनाकर इस संसार से चली गईं ।

इसी प्रकार की विपत्ति गार्सबरी के उपन्यास सम्पत्तिवान मनुष्य (The man of property) में भी सोम्स (Boams) और आयरीन (Irene) के बीच भिद्यती है । सोम्स आयरीन को प्यार करता था और अपने पारिवारिक जीवन की सुखी बनाने के लिये ही उसने आयरीन से विवाह किया था लेकिन जोड़े दिन में ही आयरीन को स्या कि उसका पति उसे अपनी सम्पत्ति समझता है । वह यहीं से दोनों के बीच दूरी बढ़ती चली गई । आयरीन पति के साथ समानता का अधिकार चाहता थी । वह कभी इस विचार को सहन कर ही नहीं सकती थी कि एक व्यक्ति को उसका पति है उसे अपनी सम्पत्ति समझ कर अपने पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने की कल्पना करे । अन्त तक दोनों के बीच यही संघर्ष चलता रहा और इसने सोम्स के जीवन को इतना बुझी बना दिया कि वह अपार सम्पत्ति का स्वामी होकर भी अपने को भ्रमारा समझने लगा । सम्पत्ति और सामाजिक सम्मान उसके हृदय को सम्भोष नहीं दे सके । अपनी पत्नी के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से उसका हृदय निरंतर जलता रहता और वह कोई ऐसा उपाय सोच करता जिससे उनकी तनिक छान्ति और सुख मिले लेकिन अन्त तक उसका जीवन हा-हाकार ही बना रहा । आयरीन भी सदा के लिये बुझी हो गई । वह अब एक बूझे ही व्यक्ति बोसिनी को प्यार करने लगी थी लेकिन ध्यानक ही उनकी मृत्यु हो जाने के कारण उसके जीवन के सामने खिंचा छा गया और जीवन का एक-एक क्षण उसको खपने लगा ।

इस तरह की अनेक कहानियाँ हैं जहाँ प्रेम-विवाह सफल नहीं हुआ है । उनका प्रारम्भ तो बड़े ही मधुर सपनों के साथ हुआ है लेकिन अन्त भीषण हा-हाकार, मृत्यु, निराशा और घुटन के साथ हुआ है ।

हाई और गार्सबरी की यूस्टेसिया बार्ड और आयरीन से बिगट सर्वों को हमारे सामने भाकर रख बैठी हैं । प्रेम विवाहों के प्रगल्भ होने के कारण यही है । जब व्यक्ति की लुब्धता समष्टि और परिवार के साथ किसी प्रकार का समझौता करने के लिये तैयार नहीं होती तब विपत्ति पैदा हो जाती है कि प्रेम विवाहों की तुलना में पितामों द्वारा जो विवाह निश्चित किये जाते हैं, वे अधिक सफल होते हैं । जगत् मूस कारण यही है कि वहाँ स्त्री और पुरुष के बीच एक प्रकार से समझौते की भावना रहती है ।

स्त्री अपने स्वार्थों को छोड़कर पति और परिवार के स्वार्थों के साथ ही अपने जीवन का समझौता कर लेती है, उसी परिवार मुचाक रूप से बनता है। जीवन में विपत्तियाँ पदा नहीं होती। अगर कहीं विपत्तियाँ पैदा होती भी हैं तो उसका मूल कारण यही है कि पति-पत्नी के जीवन के बीच सामंजस्य पैदा नहीं हो पाता। इसका पहला आधार तो दोनों की भेदना और मानसिक स्तर की भिन्नता है। हमने कई परिवारों में देखा होगा कि जहाँ पुरुष मीम्य स्वभाव का है और स्त्री कोधी और कलह-प्रिय होती है, वहाँ कभी भी पति पत्नी सुधी नहीं रह पाते।

वहीं जहाँ पत्नी पूरी तरह निर्द्वार और जड़ होती है और पति काटी सिमित और सँकट होता है वहाँ भी विपत्तियाँ पैदा हो जाती हैं।

इसी तरह जहाँ पुरुष व्यक्तिचारी और गुण, सराब धाँधि घनेक दोषों का धारी होता है वहाँ भी विपत्तियाँ पैदा हो जाती हैं।

इस प्रकार जिस तरह भी यह सामंजस्य रहता है वहीं सम्बन्धों में वपश्य पैदा हो जाता है। इसीलिये मैं उस विवाह प्रणाली को अच्छा समझता हूँ जहाँ लड़के और लड़की विवाह से पहले एक दूसरे के स्वभाव धाँधि से परिचित होकर अपने विवाह-सम्बन्ध स्थापित करें। या पुरुष केवल दुरापमन के पश्चात् ही अपनी पत्नी का मुँह देख पाते हैं, वे कभी-कभी अपनी पत्नी के स्वभाव, रूप धाँधि के कारण जीवन भर दुःखी रहते हैं। भारतीय क सद्गुणों परिवारों में अभी तक यह धर्म-विवाह चलता आ रहा है कि विवाह से पहले लड़के और लड़की का न तो मिलना चाहिये और न एक दूसरे से बातचीत करना चाहिए लेकिन क्या हमने कभी सोचा कि यह क्या जितनी हानिकारक है? इससे कभी-कभी तो पारिवारिक जीवन झुलता बट्टा हो जाता है कि मैंने स्वयं इस तरह की कटुता के बीच जियों का घालमहला करते देखा है। लेकिन मैं 'कोर्टशिप' की परम्परा का कभी भी प्रशंसक नहीं रहा हूँ। परस्पर एक दूसरे से मिलने का धर्म मैं एकमत मिनन में नहीं समझता, वह सामाजिक और सांस्कृतिक समय में होता चाहिये।

मूल बात यह है कि चाहे प्रेम-विवाह हो या पुराना शास्त्रीय पद्धति का विवाह उनमें मर्यादा इसका विचार पहले होना चाहिये कि जिन मुक्त-मुक्तियों ने विवाह-बन्धन में बँधने का निश्चय कर लिया है, उनमें त्याग और समझौते की भावना होनी चाहिये। व्यक्ति की अहमन्त्रता पारिवारिक जीवन की भ्रष्ट करती है। मैंने कई ऐसे भी उदाहरण देखे हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों ने उद्यमपूर्वक अपनी अधिशित पत्नियों के साथ मुरा और धाँधि

जि जीवन बिताया है और सब अपनी पत्नी के जीवन और उसकी बेतमा को समझ बनाने की ही प्ररक्षा सममें रही है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण महारमा गांधी और कस्तूरबा का है। बा पुरुषों अशिक्षित भी और गांधी इंग्लैंड से बार एट लॉ (Bar at Law) पास करके आये थे लेकिन फिर भी उन दोनों के जीवन में कभी विपत्ति नहीं आई। प्रारम्भ में तो उनकी बेतमा भी निम्न प्रकार की थी। कस्तूरबा जाति-पाति का विचार रखती थी। अशिक्षा के कारण सभी तरह के भेद-भाव की भावना उनके अन्दर थी और इसी कारण जब एक बार गांधी ने उनसे कार्यकर्ताओं के झूठे बरतन साफ करने के लिये कहा तो उन्होंने मना कर दिया तब पति-पत्नी भी सझाई हो गई। लेकिन कस्तूरबा पातिघट के आदर्श का पालन करने वाली अच्छे पत्नी थी। अपने पति से विमुख होने की क्षमता तक उनके हृदय में नहीं आ सकती थी। बीरे बीरे उन्होंने अपने पति को समझने की चेष्टा की और उसके साथ ही उनकी संकीर्ण बेतमा विस्तृत होती गई और अन्त में हमने देखा कि गांधी और बा दो घरीर और एक प्राण होकर रहे। त्याग और समझने का इससे अधिक सुन्दर उदाहरण प्राप्त नहीं मिलेगा।

आखिर यह समझौते और त्याग की भावना व्यक्ति में कैसे पैदा होती है ! जिस समय व्यक्ति अपने ग्रहण की लज्जा को स्वीकार करके विकास के लिये बिनाश हो उठता है तभी उसके जीवन की संकीर्णता अन्धित होने लगती है। जब जब व्यक्ति ने अपने को महान समझने का प्रयत्न किया है तभी उसके जीवन में विपत्ति बढ़ती लगी गई है। जब व्यक्ति को अपनी लज्जा का आवास होता है तभी वह दूसरे को समझने की चेष्टा करता है और तभी वो हृदय में सम्मानों में चुड़ैल है। जब एक का ग्रहण दूसरे के ग्रहण को कुचलकर केवल स्वाधिकार की ओर ही आकर रहता है तभी विरोध और असन्तोष का जन्म होता है। त्याग की भावना का मूल भी ग्रहण है लेकिन यह ग्रहण का उग्र रूप न होकर वह शीघ्र का है जो दूसरे के ग्रहण को कुचल कर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिये स्थापित नहीं रहता बल्कि दूसरे के ग्रहण के साथ समझौता करके उसको भी अन्धित सम्मान देने की अभिभाषा करता है।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि बिनाह और पारिवारिक जीवन तभी सफल होते हैं जब पुरुष और स्त्री में एक दूसरे को समझने की बिनाश होती है और ऐसे सार्वभौम सम्बन्ध स्थापित करने की सामसा होती है जिनमें व्यक्ति के संकुचित स्वार्थ और ग्रहण सामूहिक स्वार्थ में अपना सार्वभौम हूँ भेते हैं।

इस दृष्टि से देखने पर भारतीय नारी ने नारी-समाज के सामने एक सब

समाहरण रखा है। यद्यपि मैं भारतीय नारी के उस रूप का अधिक प्रशंसक नहीं रहा हूँ जहाँ वह पति को अपना ईश्वर भगवान् आदि समझकर अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को उसके अरखों पर समर्पित कर देती है लेकिन आदर्श की दृष्टि से देखा जावे तो क्या ऐसा उच्च आदर्श कहीं भी संसार में मिल सकता, जब एक स्त्री अपने पति के स्वार्थ के लिये अपने स्वार्थ और अहंकार को पूरी तरह जीत देती है? स्त्री के इस तपस्वुत जीवन से निमित्त उसके आदर्श पत्नी और माता के रूप ने सदा मुझे प्रेरणा दी है। यहाँ अगर निम्ना भी देने की है तो पुण्य की की है जिसने स्त्री के इस उच्च आदर्श का उन्नत अनुभव भी न करके सदा उसे दासी के रूप में ही देखा है और समय-समय पर अहंकार-वश होकर उस तपस्वुत स्त्री का अपमान किया है।

यदि भारतीय नारी के समक्ष ही पुण्य की चेतना हो जाए और एक दूसरे का अपने जीवन का साधन-मात्र समझना छोड़ दे ती मैं सोचता हूँ इनमें अधिक भ्रष्ट सुन्दर और मुखपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध और कहीं नहीं हो सकते।

स्त्री-पुरुष के बीच विवाह से पहले का प्रेम-सम्बन्ध खोष्ट है या विवाह के पश्चात् का? इस बात में पश्चिम और पूर्व के आदर्श की समस्या है। पश्चिम में अधिकतर विवाह सम्बन्ध स्त्री पुरुष के बीच तभी स्थापित होता है। जब पहले एक दूसरे के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। पूर्व में पाने विशेष रूप से भारत में तात्पर्य है। पिता किसी अपरिचित पुरुष के हाथों में अपनी कन्या को समर्पित करता है। विवाह के पश्चात् के अपरिचित पुरुष और स्त्री आपस में परिचय प्राप्त करते हैं और तब एक दूसरे से प्रेम करते हैं। इनमें कौनसा मार्ग अधिक भ्रष्ट है—यही प्रश्न है।

मैं तो जब स्त्री पुरुष के बीच प्रेम की वसूला करता हूँ तो सहसा ही मुझे पश्चिम के उन अभ्यवासीन माताओं (highbys) के प्रेमोत्सव याद हो जाते हैं। वे जोड़ा निम्नी सुन्दरियों से प्रेम किया करते थे। उनको प्राप्त करने के लिए वे उनकी हर एक इच्छा पूर्ण करते थे। यहाँ तक कि हर तरह की कठिनाइयों का सामना करके वे अपनी प्रसंगी को प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। उनका वह परीक्षाकाल होता था। पहले वे इस तरह धातिसियों से टकरा कर अपनी प्रसंगी के सामने अपनी परीक्षा दे देते थे और फिर अपने आपको उनका प्रेम के लिए पूरी तरह योग्य सिद्ध कर देते थे। उनके प्रेम को भावनाओं में द्विती प्रकार की बनावट नहीं होती थी। हर समय वे अपनी प्रसंगी के सामने अपना हृदय खोलकर दिखाने के लिए तैयार रहते थे। यह 'चिवात्रिभुज प्रेम' (Chivalrous love) कहा जाता है।



इसमें मुझे एक ही बात धन्यगी लगती है और वह है प्रेमी की भावना की सच्चाई । मैं इसी सभ्यताशील योद्धाओं की सन प्रणय-कीड़ाओं का हामी नहीं हूँ जब वे किसी दूसरे की पत्नी के पास खोटी लिये राजि के समय जाते थे और मोर हीने से पहले ही वहाँ से भाग जाते थे । वह सब अल्प वर्षों का विश्वास था जिसमें सदा का वायरा था, सत्य की भावना नहीं थी लेकिन उनके प्रसादां अनेक कवियों ने सन योद्धाओं के भी प्रेमोद्गार अपनी कविताओं में प्रकट किये हैं । जिसका प्रेम केवल विश्वासयोग्य नहीं बल्कि उसमें उनकी आत्मा की सच्चाई और वज्जीरता प्रकट होती है । वह केवल प्रदर्शन-भाव नहीं है, उसमें प्रेम की सच्ची लगन है । कुछ नवयुवक अपनी कमक-कमक से या अपने बाल्यपने से या और किसी बात से लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं । लड़कियाँ उनके बाह्यरूप की ओर आकर्षित होकर उनसे प्रेम करने लग जाती हैं । इस तरह घुनीबसिटी या कामेज की बहारलीबारों के भीतर उनका प्रेम धुक् हो जाता है, लेकिन उस प्रेम का आधार होता है कम । अपनी वास्तविकता छिपाकर पाखण्ड के ढांचे जीवन को मुझी बनाने का एक स्वप्न और उसके लिये न जाने क्या-क्या नामें प्रेमियों को बसती पड़ती हैं । पूरा इन्द्र होता है जब कहीं जाकर प्रेम के पश्चात् विवाह का व्यवसर आ जाता है । कभी-कभी तो वह सदा भी नहीं । प्रेम केवल ज्ञाना-भाव बनकर जीवन की एक ओर का बक्का मारकर समाप्त हो जाता है । इस इन्द्र हैं कभी लड़की का जीवन मष्ट हो जाता है और कभी लड़का मरवाता होकर अपना जीवन मष्ट कर बैठता है ।

इस सबका स्मरण क्या है ? प्रेम-सम्बन्धी में सत्य और स्वाभाविकता का प्रभाव । कोई पाखण्ड क ऊपर जो भी सम्बन्ध लड़े होंगे वे निश्चित ही असफल रहेंगे । जीवन का विखलापन कभी भी आत्मा को सान्ति और सुख नहीं पहुँचा सकता । आत्मकल नवयुवक और नवयुवतियों के बीच प्रेम करने का एक फँसल सा हो गया है । पश्चिम की संस्कृति ने इतना अपना घमर बना लिया है कि भारतीय संस्कृति के प्रति युवक और युवतियाँ पहासीमता का दृष्टिकोण ही रखते हैं । वे भारतीय विवाह के आदर्श को समझने की चेष्टा ही नहीं करते ।

प्राचीन काल में हमारे अधि मुनियों ने धर्म धर्म काम, और मोक्ष को जीवन के लिये आन्यक बनाया है । इन चारों का सामंजस्य ही भारतीय पारिवारिक जीवन का मार है । अधियों ने किंगी एक के अभाव को जीवन की अछटा नहीं माना है । यदि हमको भारतीय परिवार के उन्नावर्ध को समझना है तो पहले इन चार बातों का समझना होगा । पहले इस धर्म को ही में । धर्म क्या है ?

धर्म की वह चेष्टा जिसके द्वारा वह सत्य की खोज करता हुआ अपने

घर दूसरों के जीवन को सुन्दर और सुखी बनाने की साधना करता है। धर्म है। धर्म केवल बेबी-देवताओं की उपासना-भाव नहीं है। न ही धर्म केवल सन्ध्या स्नान करना या बाह्य भोजन करना या कीर्तन गादि करना है। ये केवल उपासना के बाह्य-कार हैं। धर्म धारमा की वह चेतना है जिसके बलीभूत होकर व्यक्ति अपने सुख-सहम् को सर्वेय जीतने का प्रयत्न करता है। धर्म वह साधना है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने आपको अपनी सम्पूर्णता में समझने की चेष्टा करता है और फिर लालिक वासनाओं के परे जीवन के विराट सत्य की ओर अपनी चेतना को प्रवृत्त करता है। स्वयं कष्ट सहकर दूसरे को सुखी बनाने की भावना ही धर्म का मूल रही है। बाह्य-कार बलसता रहता है लेकिन धर्म की मूल भावना बही रहती है। विश्व में जिसने भी महापुरुषों ने धर्म की शिक्षा दी है उनके उपदेशों का सार यही है। त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन ही धर्म के मूल तत्व को आत्मसात करता है। प्रेम ही धर्म का मुनीदेय है। व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग करके प्रेम की भावना का प्रसार करना ही धार्मिक कृत्य है। जो इस प्रेम की बरिमा समझकर अपने बाह्य-कार द्वारा दूसरों को सुख पहुंचाता है और उनके जीवन को धार्मिक सुन्दर बनाने के लिये प्रयत्न चीन रहता है, वही सच्चा धार्मिक है। बृहदारण्यक उपनिषद् में एक स्थान पर मानव मानव और देवता आकर प्रजापति है अपने-अपने कर्तव्यों के बारे में पूछते हैं उन समय प्रजापति भेष के द्वारा 'द' 'द' 'द' का बोध करा देते हैं। तीनों उस 'द' का प्रत्यय प्रत्यय धर्म लगाते हैं।

वहसे मानव धर्म द का धर्म दत्त धर्मात् देना जपाते हैं। अनुप्य स्वभाव से स्वामी होता है। वह अपने जीवन के सुख के लिये दूसरे के सुख को चीनने के लिये सबब उत्तर रहता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की परिधि में वह इस तरह चिन्त रहता है कि उसका बाहर वह कुछ देखता ही नहीं। दूसरों का मन अपने हृदय करने से उसको मूल पहुंचाता है। इसीलिये प्रजापति ने दत्त धर्म में उसका कर्तव्य निश्चित कर दिया धर्मात् अनुप्य में देने की भावना हानी चाहिये। उसकी धारमा में इतना बल होना चाहिये कि वह अपने संकुचित स्वार्थ का परित्याग करके दूसरों के जीवन को सुखी बनाने के लिये उनके कुछ दे। देने का धर्म केवल धार्मिक सहायता ही नहीं है बल्कि दूसरे व्यक्ति के प्रति सहृदय मता और प्रेम विनाशना और अपने प्रपत्नी में उसके दुःख को दूर करना भी उसके देना है। प्रेम इसी महानता के अन्तर में जाता है। यदि हम समर्थ हैं तो प्रत्यय अपने अमान-अस्त आदि के जीवन को हर प्रकार में अपनी मामर्मा मुनार सुखी बनाने का प्रयत्न करेंगे। यही प्रेम और त्याग की भावना का परस्पर सामंजस्य होता है। व्यक्ति में यह त्याग की भावना स्वाभाविक बनकर

ही भानी चाहिए। उसको आत्मा में त्याग के लिये बल होना चाहिये। भनी भावनी मन द्वारा जब दूसरों की सहायता करता है, तो उसमें उसका कोई अङ्गुष्ठ त्याग नहीं होता। इस तरह से वह प्रायः अपने धाँकार की तुष्ट किया करता है। उसमें उसका व्यक्तिगत स्वार्थ मिहित होता है। नाम और बल की पठित वासना आकर उसकी भेदना को कुच्छिन्न कर देती है। उसका बैसा इन्हीं के लिये तो होता है, इसके विरुद्ध त्याग का वास्तविक उदाहरण मैं सामने रखता हूँ।

संस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध कवि माघ एक अत्यंत ही भनी व्यक्ति था। पहले वह कुछ भी पढ़ा सिखा नहीं था लेकिन बाद में हृदय पर किसी कारण से आघात लगने पर वह पढ़ने लगा। गुरु ने पहले तो उसको पढ़ने के लिये उत्साहित नहीं किया क्योंकि उसकी धातु काफी हो चुकी थी लेकिन धम्मयन की ओर उसकी प्रवृत्ति बलित होकर गुरु ने उसे अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। गुरु के घर रहकर ही वह विद्याभ्यसन करने लगा। बड़ी बड़ भोजन करता था। गुरु-पत्नी उसके भोजन में दो चम्मच रेंडी का तेल डाल दिया करती थी। माघ उस भोजन को बिना किसी तरह की शिकायत किये खा लिया करता था। इस तरह कई वर्ष उसको धम्मयन करते हुए बीत गये। गौर परियम करके वह गुरु के वतार पाठ याद करता। कहा तक कि वह पूर्ण पण्डित हो गया। उसका धम्मयन प्रायः समाप्त हो गया तब एक दिन भोजन करते समय उसने गुरु पत्नी से कहा—माता। इस भोजन में मुझे कुछ हीक की मालूम होती है।

माघ के शब्द सुनकर गुरु पत्नी ने कहा—तब जब तुम्हारी विद्या पूर्ण हो गई क्योंकि नित्य मैं तुम्हारे भोजन में दो चम्मच रेंडी का तेल डालती थी लेकिन तुम अपने धम्मयन में इतने व्यस्त थे कि तुम्हें कभी उसका आभास तक नहीं हुआ लेकिन आज तुम्हें उस तेल के कारण भोजन में है हीक आने लगी, इसका अर्थ है कि अब तुम्हारा ध्यान धम्मयन के अलावा भोजन का तरफ भी जाने लगा। अब तुम्हारी विद्या पूर्ण हो गई।

गुरु ने माघ को आशीर्वाद देकर बिदा कर दिया। वह माघ इतना दानी था कि उसने अपना सारा धन दान में सुट्टा दिया और अन्त में वह बहुत ही निर्धन हो गया। जब उसके पास जाने के लिये भी कुछ नहीं रहा तो वह कुछ जीविकार्जन करने के लिये राजाभाज के राज्य की ओर चल दिया। संभावना यह भोज की नगरी में पहुँचा और बाहर ही किसी स्थान पर ठहर गया। उसने किसी व्यक्ति के हाथ अपने आगमन की सूचना राजा के पास ज़िजबाई भेजिन् कुर्माप्यवश वह व्यक्ति संघ्या को ही वह सूचना राजा के पास नहीं पहुँचा सका।

माथ की प्रतीक्षा करनी पड़ी। शिघ्रि जलू थी। बड़े धीरे की सही पड रही थी। माथ के पास केवल एक कम्बल था। उसी से उसने अपने नंगे शरीर का ढँक रखा था। रात्रि को एक भिक्षारी उसके पास आया। भिक्षारी के शरीर पर भी वस्त्र नहीं था। वह सर्दी के कारण काँप रहा था। माथ ने अपना कम्बल उतार कर उसको दे दिया। भिक्षारी कम्बल लेकर चला गया।

प्रातःकाल उक्त व्यक्ति में जिसको माथ ने राजा के पास अपने धायमन की सूचना देने भेजा था जाकर राजा भोज को महाकवि माथ के धायमन की सूचना दी। राजा भोज माथ का नाम सुनते ही उसने भिक्षु के लिये आसावित हो उठे। उनको यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि महाकवि ने उनके राज्य में पहा पहुँच किया है। उन व्यक्ति ने यह जो कह दिया था कि महाकवि ने कम संपत्ति को ही उनके धायमन की सूचना देने के लिये कहा था लेकिन किसी कार्य में व्यस्त होने के कारण वह सूचना न दे सका। यह जानकर तो राजा भोज तिस्रोस धौड़कर उठ बैठे और स्वयं माथ से मिलने के लिये बन दिये। नगर से बाहर वे उसी स्थान पर आये जहाँ महाकवि संन्यास आकर ठहरे थे लेकिन राजा भोज को उस स्थान पर महाकवि माथ का सब मिला। उक्त की कड़ी सर्दी में वे लगे थे तभी उनके प्राण निकल गये थे। राजा माथ की मृत्यु पर बहुत रोये और उन्होंने बुझी होकर माथ की अन्त्येष्टि किया कराई।

यह है त्याग का बल जो माथ में था। जब व्यक्ति में दूसरे के सुख के लिये स्वयं बलि देने की भावना पहा हा जाती है और उस भावना में किसी प्रकार का छद्म और पाखण्ड सब नहीं रह जाता है तभी वह जीवन के महान सत्य को पहचानने समर्थ है। तभी उसके जीवन का उदासीकरण होता है। उसकी बेचना संजीर्ण स्वार्थी से ऊपर उठकर प्रेम की भावना का साधन बन करती है।

परिवार में आकर जो इस पर्व का पातन करना है। इसी धार्मिक का कामने रखकर वह पारिवारिक जीवन का सुधार बनाने के लिये स्वयं भी बलि दे रही है। प्रेम और त्याग का सामंजस्य उसके जीवन में पूरी तरह हो जाता है। भोष्ठ गृहणी बड़ी कहनाती है जो पति के घर आत ही उसे अपना समझने लगती है और उस परिवार के हित के लिये अपना व्यक्तिगत स्वार्थ का परि त्याग कर देती है। वह परिवार के सभी व्यक्तियों का अपना स्नेह देती है। उसके प्रति ही नहीं बल्कि अपने दास-पदोम के प्रति भी स्नेहपूर्ण व्यवहार रस कर वह उनको मुग पत्रवानी है। जो स्नेह में अधिक और है या बरा सबकी है। उसी स्नेह की भावना के कारण ही तो वह पति के घर लगे जो भोग्य में भीपण परिस्थितियों का सामना कर गती है और उन परिस्थितियों के बीच

स्वयं कठिन जीवन व्यतीत करके अपने पति पुत्र तथा अन्य परिवार के व्यक्तियों को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती है। भारतीय नारी का यही त्याग-मय रूप पुरुष के जीवन को प्रेरणा देता है।

जब मानव ने अपना कर्तव्य समझ लिया तो शान्त ने 'व' का अर्थ 'दया धर्म' समझा। शान्त स्वभाव से ही कुर होता है इसलिये प्राणी पर दया करना ही उसने अपना कर्तव्य निश्चित किया। इस तरह उसने अपने निर्दयता पूर्ण व्यवहार को छोड़कर प्राणियों को सुख पहुँचाने का विचार कर लिया।

समा की भावना भी बर्म के अन्तर्गत आती है। पीड़ित के प्रति दया दिखाना, उसकी सहायता करना और अपराधी को भी क्षमा कर देना हमारे यहाँ बर्म की मूल भावनाएँ रही हैं। महापुरुषों ने इसी भावना पर बस कर संसार में बर्म का प्रचार किया था। महात्मा ईसा यीशुस कुछ महात्मा बाँबी जैसे महापुरुषों ने कभी भी किसी पर क्रोध नहीं किया। क्षमा हो सदा उनके जीवन का अल्प रहा। महात्मा ईसा ने तो मरते समय भी उन लोगों के प्रति जिन्होंने उन्हें सूती पर टांगा था परमात्मा से वे राह कहे थे हे परमात्मा। तू इनको क्षमा कर देना क्योंकि वे नहीं जानते कि इस समय वे क्या कर रहे हैं।

इसी प्रकार महात्मा बाँबी ने भी योसी नगते नम्र अपराधी के सम्मुख विनम्रपूर्ण हृदय जोड़े थे।

यीशुस ने तो अपराधी के प्रति कभी रोष नहीं दिखाया। तभी उनकी क्षमाशील मुद्रा के प्रभाव से कुर काकु संयुक्तिमान तक अपनी तलवार फेंककर उनके चरणों पर गिर पड़ा था।

अपराधी को भी क्षमा कर देने की भावना व्यक्ति की चेतना की उदात्त बनती है। यह उसकी आत्मा में ध्वस्त बल पैदा करती है। क्षमा हृदय की आवश्यकता नहीं है बल्कि यह तो हृदय की वह धारा सक्ति है जिसके कारण व्यक्ति पूरी तरह निर्भीक हो जाता है और अपने जीवन के संकुचित राज और द्वेष से परे हो जाता है।

भारतीय नारी में क्षमा की यह भावना भी हमें मिलती है। शास्त्रकारों ने उसके सामने आदर्श रूप ही बह रखा है जबकि वह अपने पति के जैसे भी अपराध को क्षमा करके उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। उसकी यह क्षमाशीलता ही उसकी महानता प्रदान करती है। वह अपने शत्रु स्वतुर का कठोर व्यवहार भी सह लेती है। कभी-कभी उसे अपने दुःख की दृष्टता भी सहनी पड़ती है, लेकिन वह सदा अपनी चेतना में बर्म का दीप जलाकर

अपना मार्ग देखती रहती है और अपने तपस्वुत जीवन के प्रकाश से दूसरों को भी मार्ग दिखाती रहती है। इस दृष्टि से देता पाये तो नारी का जीवन एक कृत्य नहीं है, वह एक तपस्या है, एक साधना है जिसमें वह अपने महम् को धूती हुई निरन्तर मग्न रहती है।

मानव और मानव के परभाव देवताओं ने 'द का धर्म' 'दम्पत' सथाया। देवता स्वभाव से ही कामुक होते हैं। उनका मन उनके वश में नहीं रहता, इसी लिये अपनी कुछ बाधनाओं का समन करना उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित किया।

भारतीय नारी का जीवन अपनी कुछ बाधनाओं के समन में ही तो अपनी सफलता है। उसमें यदि बाधता है तो यही कि वह काम के ऊपर अपनी धर्म-भावना को रखती है। इसके अलावा भी वह परिवार और पति के सुख के लिये अपने तुल्य स्वार्थों को भी छोड़ देती है। वह मुन्दर बल पाशु पशु प्रादि की तुल्य का परिग्रहण इसी आधार पर कर देती है कि कहीं उसके सुख के लिये दूसरे के जीवन को दुःख नहीं पहुँचे।

वह बृहदारण्यक उपनिषद् के इन तीन वाक्यों अर्थात् दत्त दयाध्वन और दम्पत में धर्म का सार का वाता है। मैं इसी विवाह की प्रशंसा करता हूँ जिसमें जो धर्म की मूल भावना को समझकर निरन्तर अपनी चेतना का विकास करती है। भारतीय नारी की प्रवृत्ति मैंने हमीनिये की है कि उसमें धर्म की वह भावना अपने पूरे उदात्त रूप में विद्यमान है। मैंने ऐसी अनेक गृहस्थियों का देखा है जो अतिशयित होते हुए भी धार्मिक रूप में हृदय को प्रेरण देती हैं। उसका एकमेव कारण उनका धर्म में अटल विश्वास ही है।

मैंने पहले पाणिनय के धार्मिक की वर्ण करते हुए शास्त्रकारों के उन वाक्यों की बहुत आलोचना की है जहाँ उन्होंने नारी को हीन समझकर उसे पुरुष की एक दासी-भाव बना दिया है। नारी के चरित्र में दोष कब पैदा होते हैं ? वे उनी क्षम्य पैदा होते हैं जब वह धर्म के मूल स्वभाव को न पहचान कर केवल तुल्य माननाओं के पास में ही भटकती रहती है। लेकिन इसके साथ मैं हमकी भी आश्चर्यचकित समझना हूँ कि जिस धर्म के मूल की धारणमान करके स्त्री पति वार को सुग्री बनाने के लिए प्रयत्न करती है उनी धर्म के साथ जो पुरुष को समझे और उनके साथ अपनी चेतना का तारतम्य बरके स्वयं भी परिवार को सुग्री बनाने का वास्तव अपने ऊपर में सभी पति और पत्नी के बीच स्वयं सम्बन्ध स्थापित हो सके। धर्म के बिना यह सामंजस्य असम्भव ही है। हमी लिए शास्त्रकारों ने महा नाम के ऊपर धर्म की महत्ता स्थापित की है। प्रजनन की शास्त्रकारों ने पति-पत्नी के जीवन का प्रयुक्त धर्म माना है। प्रजनन के साथ

ही स्त्री के सम्बन्ध मातृत्व की भावना बाधित होती है। वह और भी उसके चरित्र को उदात्त बना देती है। अपने पुत्र को पावन-पासकर बड़ा करने में माता क्या-क्या कष्ट नहीं उठाती। रात-रातभर जागकर वह अपनी संतान को पालती है। कठिन परिस्थिति में स्वयं सूझी उझकर वह पहले अपने पुत्र और पति को भोजन देने की विनता करती है। कष्ट सहने की यह प्रवृत्ति ही प्रेम में उन्मार्द और यत्कीरता पैदा करती है। इसी कारण पति-पत्नी के सम्बन्ध घट्ट बनकर पसले हैं और इसी जीवन में नहीं बल्कि अपने जीवन में भी वे एक दूसरे के साथ रहने की क्षमता करते हैं।

प्रजनन क्षमता का बर्तन है। काम का इसके साथ गौण स्थान है। विवाह का तात्पर्य पति-पत्नी की कामवासना की वृत्ति नहीं है, उसके साथ दोनों के जीवन के कर्तव्य हैं। उनका अपना-अपना दायित्व है। काम तो स्वाभाविक रूप से बर्तन के साथ मग्न हुआ है। जो व्यक्ति काम को ही विवाह का मुक्तोद्देश्य समझता है वही पत्नी के बारे में बार-बार रसता है कि वह एक वैध बच्चा (Legal prostitute) है जिसके जीवन की सार्थकता पुरुष की काम वृत्ति है। अधिकतर प्रेम-विवाहों में प्रतीति का अपना प्रतीति के प्रति यही दृष्टिकोण रहता है तभी वे विवाह नाम में बनकर पसल हो जाते हैं। केवल काम को ही विवाह का केन्द्र बनाने से सार्वर्धन परिवार नहीं बन सकता। बर्तन की भावना का न होने के कारण जीवन में बार-बार एक दुसरे और बीच-बीच में पैदा होने लगती है। पुरुष को कामवासना क्या उसी को वे वृत्ति हो जाती है जिसे वह अपनी पत्नी बनाकर लाता है? मैं समझता हूँ, ऐसा नहीं होता। काम की वृत्ति कभी नहीं होती। उसके बिना पुरुष भी घटकता है और स्त्री भी और इस तरह व्यक्तिगत फेलता है और समाज में जीवन को निराशा और दुःख मिलाने हैं। इसलिए भारतीय अधिपति ने बर्तन के साथ काम का सामंजस्य रखा है। बर्तन के बिना काम उलझन होकर परिवार की व्यवस्था को कुच्छिन्न कर देता है। काम को तो केवल अपनी शक्तिशाली भावना की वृत्ति के बिना ही प्राथमिक समझना चाहिये फिर इसके ऊपर धर्म का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। बर्तन की भावना का परिणाम करके केवल नाम के लिए ही पत्नी से सम्बन्ध स्थापित करना वैवाहिकता के समान है।

इनका पञ्चाङ्ग धर्म होता है। परिवार में धर्म का जो प्रमुख स्थान है। सब ऐसा नाम तो धर्म की विनमता का निराकरण परिवार में ही होता है। प्राणीमात्र के दुःख का काफी दूर तक धर्म ही कारण है। इसी धर्म के कारण एक प्राणी दूसरे प्राणी का साधन करता है। अपने स्वार्थ के लिये एक दूसरे की हत्या करने के लिये उत्साह हो जाता है। यही धर्म-विनमता पूरे समाज में

है। परिवार में यह मही रहती। वहाँ सभी व्यक्ति सामूहिक रूप से काम चलाते हैं। धीरे-धीरे प्रकार उसका व्यवहार है। यह प्रश्न नहीं उठता कि काम चलाता क्या है धीरे-धीरे वह किसका कर्म करता है। यदि परिवार का एक सदस्य नहीं भी करता है तो भी परिवार में उसका काम होता है। बच्चों को शिक्षित करके माय और समर्थ बनाया जाता है। सभी मायों के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध होता है जिसमें किसी प्रकार की ईर्ष्या या द्वेष पैदा नहीं होता धीरे-धीरे होता है वहाँ परिवार सच-सच होकर बिकर जाता है। की इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट, स्पष्ट रहती है। मेरे अनुमान से परिवार को एक मूल न बँध रहने की वजहों के लिये यह काफी हद तक उत्तरदायी होती है। परिवार में जब बंटवारे का प्रश्न उठता है तब स्त्रियों के भयों के कारण ही अधिकतर यह होता है। मुख्य तो मिलकर रह भी लेते हैं लेकिन स्त्रियों का अहसास बनता रहता है। देवरानी मिठाई के बीजन्त के कारण ही भाई भाई पलत हो जाते हैं। यदि देवर काम करता है तो मिठाई देवरानी पर काम करना चाहती है और उसे हर समय यही ताने दिया करती है कि उसका पति काम करता है। इसके साथ वह अपने पति को भी यह सिखाती है कि उसको बेकार अपनी नमाई में से दूसरे को हिस्सा देने की क्या आवश्यकता है। जब बीजन्त काफी बढ़ जाता है तो और भी लड़ाई होती है। देवरानी का काम सम्मान जाग उठता है और उसका परिणाम यही होता है कि दूसरे ही दिन ही वो चूल्हे जलने प्रारम्भ हो जाते हैं। अधिकतर परिवारों में यदि इसी तरह की लड़ाई होती देती है। पुरुषों से पूछने पर वे यही उत्तर देने हैं कि भाई क्या करें औरतों में नहीं बनती इसलिये रात दिन की ककक से बचने के लिये यह अच्छा है कि पलत पलत ही प्रसन्न कर लिया जाय। इस तरह व्यक्तित्व स्वार्थ के कारण परिवार विभ्रमिष्ट हो जाता है। क्या यह विचारणीय नहीं है कि सामान्य प्रायः ऐसा क्यों होता है? कभी-कभी तो इसे ऐसा भी देखा है कि जिस पुरुष को माता-पिता पाल पोसकर बड़ा करते हैं, अपना विवाह कराते हैं और अपना पैतृक सम्पत्ति भी उसकी पढ़ाई और विवाह के लिये खर्च करते हैं, वही अपनी बहू की सीख मानकर माता-पिता का विराग हो जाता है। उनकी बुढ़ावरदा की भी उचित परवाह नहीं करता और जो भी करता है उसे अपनी पत्नी के हाथ में देता है। पत्नी की ही सारा धीरे-धीरे धन-सम्पत्ति सँभाल लेती है। वह पति की कुछ न कुछ कहकर उनके खिलाफ चढ़ावा करती है। कुछ लोग पत्नी की सीख मान भी लेते हैं और कुछ नहीं भी मानते हैं। आखिर इस सारे बीजन्त को बढ़ाया है?



में समझता हूँ स्वार्थ की पतिव्रता भावना ही इस सारे वैभवंस्य का कारण है। जब व्यक्ति का स्वार्थ उठकर बूझने के स्वार्थ के साथ समझौता करने के लिए तत्पर नहीं होता है और जब तब और में का प्रश्न उठ सका होता है तभी विवशता पैदा होती है। तभी परिवार का सामूहिक रूप खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाता है। इसी स्वार्थ के कारण भाई भाई का बैरदानी-बिठाणी की, पुत्र-पिता और माता का छद्म हो जाता है, फिर तो अपनी कमाई अपने लिये की भावना पैदा हो जाती है। यह पतिव्रता भावना यहाँ तक अपना असर बना लेती है कि अपने माँ-बाबे भाई को घर-घर का भिखारी बैठाकर भी बूझता भाई समर्थ होते हुए भी उसको एक पैसे की मदद नहीं करता। की उसकी दुर्बला पर हँसती है। इस तरह एक ही माता के घर से पैदा हुए भाइयों में शत्रुता रहती है और एक ही घर में जब असम-असम भाइयों की पत्नी बनकर माँ बाबी बहिर्ने जाती है तो वे भी बैरदानी-बिठाणी बनकर अपने-अपने स्वार्थों के लिए रात दिन लड़ती झगड़ती रहती है। स्वार्थ ही सारे वैभवंस्य का कारण है। धार्मिक स्वार्थ के कारण कुछ सग्यों में वो व्यक्ति अभिन्न भिन्न होते हुए भी पराये हो जाते हैं। इसी धार्मिक स्वार्थ के कारण वो भी एक दिन अपने स्वभाव में छील और संकोच लेकर नवबहु रूप में पति के घर की बेहरी पर पैर रखती है और जिसके कुछ प्रायमन में मर्मल-भौत पाये जाते हैं, जिसे घर की लक्ष्मी समझकर सम्मानित किया जाता है, वही अपना सारा छील और संकोच छोड़कर अपने और अपने पति के स्वार्थ में अपनी संकुचित प्रकृति वाली हो जाती है कि उसका रूप घर की लक्ष्मी से बदल कर घर की भावना हो जाता है, जो आकर परिवार के समस्त को ओढ़ती है। स्वयं को के बीच बहाव जाती है।

इस सबका कारण धर्म की भ्रम भावना का विस्तृत कर देना ही है। जब धर्म ही एकमात्र पारिवारिक जीवन का नियन्त्रण हो जाता है और उसके साथ धर्म का सामंजस्य नहीं रहता तो इसी प्रकार के जड़-जाद पैदा हो जाते हैं। जो भी धर्म, धर्म और काम का पूरा सामंजस्य अपने जीवन में कर लेती है, वही घर की लक्ष्मी बनकर रहती है। कहीं-कहीं ऐसे एनी ब्रह्मचारियाँ होती हैं जिनके जीवन में इन तीनों का सामंजस्य होता है, तभी वे परिवार के सभी व्यक्तियों के जीवन को सुखो बनाती हैं। वो स्त्री केवल एक ही प्रश्न को लेकर रहती है, बहो पारस्परिक सम्बन्धों में विवशता पाती है। स्त्रियों की निम्ना होती भी है तो इन्हीं कारणों से होती है। काम को ही जीवन का केन्द्र बना देने से स्त्री का जीवन अधिभार की ओर संमुख हो जाता है। स्वेच्छाचार यदि इसी के दुष्परिणाम है। शास्त्रकारों ने स्त्री की काम के दोष में काफ़ी निन्दा की है। पंचतंत्र में जब स्त्रियों के बारे में यह कहा गया है कि उनका

स्वभाव समुह की तरफों के समान बचल और धर्म सध्या-काल के बादलों के समान शक्ति होता है, वे एक पुरुष के साथ बाँट करती हैं, दूसरे को कटावों से दिकती हैं और तीसरे का अपने चित्त में स्मरण करती हैं, इसका भूल कारण यही है कि जब स्त्री केवल काम को ही अपने जीवन का साध्य समझने लगती है और धर्म की भावना को पूरी तरह विस्तृत कर देती है तभी वह दुश्चरित्र होकर निम्ना की पात्री बन जाती है। इसी काम के पीछे स्त्री इतनी क्रूर और पतित हो जाती है कि मने ऐसी पत्नियों को भी देखा है जिन्होंने किसी पार के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक विचारण करने के लिए अपने पतिव्रतों को बिच देकर मार डाला है, और इस प्रकार के पति भी मने देखे हैं जिन्होंने किसी अन्य लड़की के रूप की ओर आकर्षित होकर और उसके साथ विवाह करके जीवन का मानव लेने के लिए अपनी धोमबान पत्नियों को बिच देकर मार डाला है। काम बढ़ी से बढ़ी विषमता पैदा कर देता है। जब स्त्री या पुरुष काम से ही अपनी चेतना का साध्य कर देते हैं तभी त्यागहार बुद्धि विद्वत् धारि बढ़न हैं इसीलिए भारतीय अधियों ने काम के नियन्त्रण के लिए धर्म की व्यवस्था की है और पतिपत्नी के सम्बन्ध की केवल काम जोड़ा का लेख न मानकर धर्मपालन का साधन कहा है।

इसी प्रकार धर्म का भी सामंजस्य उन्हें धर्म के माय ब्रह्म है। धर्म पर भी जब तक धर्म का नियन्त्रण नहीं होता तब तक निरन्तर ईर्ष्या विद्वत् धारि पनपते रहते हैं। पतिव्रत स्त्रियों के लिये विवाह जठ सखे होते हैं। वस्त्राण की भावना पूरी तरह सुप्त हो जाती है। उन समय मनुष्य इतना दुरित हो जाता है कि मुझे कभी-कभी तो मनुष्य के विवाह पर ही सन्देह हो उठता है। पशु व्यवस्था से लेकर मनुष्य में भूतभूत परिवर्तन बना आ पाया। पहले भी व्यक्ति अपने मोक्ष के लिए एक दूसरे से लड़ता या आज भी वही सबकुछ होता है फिर यह विवाह कैसा? इसीलिए और धर्म और धर्म के सम्बन्ध की जीवन की ध ध्या माना गया है।

इसके पञ्चानु मोल पर विचार करना आवश्यक है। मोक्ष का तात्पर्य केवल अप-सप करके स्वर्ग प्राप्त करना नहीं है। यह तो वीरगति का नाम है। मोक्ष का तात्पर्य है बिराट सत्ता की शोख और उनका साक्षात्कार। मोक्ष का धर्म है धारणा की शक्ति। अपने आपको पहचानने की क्षमता। यह सब बही कर गजता है जो निरन्तर चिन्तन करता हुआ अपने जीवन की समझने की शिष्टा करता है। वह हर समय जीवन की विषमताओं के बीच उनका भूल कारण बूझ करता है और फिर जीवन के उदात्त स्वरूप की पहचान कर करती चेतना का साक्षात्कार उनमें जोड़ता है। यह महानता का केवल परिचय प्राप्त



स्वभाव समुह की तरफों के समान बर्चस और प्रेम संध्या-काल के शायनों के समान शक्ति होता है, वे एक पुरुष के साथ बातें करती हैं, दूसरे को कटाक्षों से देखती हैं और तीसरे का अपने चित्त में स्मरण करती हैं, इसका मूल कारण यही है कि जब स्त्री केवल काम को ही अपने जीवन का साम्य समझने लगती है और धर्म की भावना को पूरी तरह विस्तृत कर देती है तभी वह दुर्बल होकर जिन्दा की पत्थरी बन जाती है। इसी काम के पीछे स्त्री इतनी क्रूर और पतित हो जाती है कि मने ऐसी पत्नियों को भी देखा है जिन्होंने किसी पार के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक विचारसु करने के लिए अपने पति को बिप देकर पार डाला है, और इस प्रकार के पति भी मने देखे हैं जिन्होंने किसी अन्य लड़की के रूप की ओर धाकवित्त होकर और उसके साथ विवाह करके जीवन का आनन्द लेने के लिए अपनी हीमवान पत्नियों को बिप देकर पार डाला है। काम बढ़ी से बढ़ी विषमता पैदा कर देता है। जब स्त्री या पुरुष काम से ही अपनी बेचना का आश्रय कर लेते हैं तभी व्यवहार दुसा विद्वय प्राप्ति बढ़ते हैं इसीलिए भारतीय नृत्यों ने काम के नियन्त्रण के लिए नारदा व्यवस्था की है और नृत्योत्सवों में काम के नियन्त्रण के लिए नारदा व्यवस्था की है और नृत्योत्सवों में काम के नियन्त्रण के लिए नारदा व्यवस्था की है। इसका मूल कारण यही है कि स्त्री के मानकर धर्म की भावना हमारे हृदय में इतने नीचे तक गढ़ जमा गई है कि हम नहीं अपनी तरह जायकक देखने की कल्पना तक नहीं कर सकते। कहीं कहीं तो इसके लिए इस तरह के बर्चस उठ करे होते हैं कि स्त्री की बुद्धि पुरुष से कम होती है। पारिष्टिक धर्म में भी वह पुरुष से कमजोर होती है इसलिए स्त्री सर्व प्रकार से पुरुष से हीन है। इस तरह कहकर वे स्त्री के बाकी रूप का भौतिक्य हटा करने हैं लेकिन इस तरह की विचारधारा निम्न है। पारिष्टिक धर्म में पुरुष स्त्री से अधिक ही सचता है लेकिन वहाँ तक मानसिक बेचना का प्रश्न है इस तरह का भेद करना असंगत होगा। पारिष्टिक धर्म तो स्त्री को प्रजनन के कारण हीन होती जाती है। यह सोचना कि स्त्री पुरुष के समान जायकक नहीं हो सकती भूल होगी। यदि स्त्रियों को प्रसिद्ध किया जाए और उन्हें भी स्वतन्त्र चिन्तन का दायित्व मिले तो मैं समझता हूँ कि एक धार्मिक ही स्वल्प समाज इस जड़ता और अन्धविश्वास से अकड़े समाज के भीतर से उठ सकता है।

मेरे सामने तो स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का यह रूप धार्मिक बनकर पाठा है जब दोनों ही जीवन के प्रति जायकक होकर परिवार की इस तरह बनाये जैसे दो बैल याड़ी को बनाते हैं।

स्त्री केवल पुरुष की दासी नहीं है वह तो उसके साथ जीवन के संघर्ष में

कामों से कामों मिलाकर संघर्ष करने वाली प्रजापतिनी है। सीधा और साफ़ी के जीवन से उसे यही प्रेरणा लेनी चाहिये। उसे बीबाबाई की तरह ही समाज और राष्ट्र के प्रति अपना बाधित पुरा करना चाहिये। बीबाबाई ने शिक्षा की जैसे और को पैदा किया था जिसे जन-कल्याण के लिये साम्राज्य की मुक्त बाइबाबाई औरंगजेब से टकरा भी थी। उसके जीवन की शक्तता की बीबी स्वामिनाथिनी नारियों के चरित्र से प्रेरणा मिलनी चाहिये। जब बुद्धि ने शक्तता के प्रति दुर्बल कहकर उसका विरक्तार किया था तब उसने जिन शक्तों में बुद्धि को उत्तर दिया था, वे शक्त नारी के औरों की ऊँचा उठते हैं। नारी की शक्त की भावना का परिवर्तन करके अपने जीवन में धर्म, धर्म, काम और मोक्ष का सामंजस्य पैदा करना चाहिये। भारतीय चिन्तन इन चार शक्तों के अन्तर्गत ही नारी परिवार तथा समाज की समस्याओं का हल प्रस्तुत कर गया है।

इसको समझकर जीवन के साथ इसकी एकरसता स्थापित करने में ही मुक्त और शक्ति है। सारी विषमता अभी दूर ही सकती है। ध्यान से देखा जाय तो परिवार विश्व के एक आदर्श राज्य का लघु रूप है। इसके अन्तर्गत शक्ति का अर्थकार अपने लघु रूप में उठकर विषमता और दुःख पैदा नहीं करता बल्कि पारस्परिक स्नेह के कारण सहिष्णुता में उसका अन्तर्भाव हो जाता है। मात्र विश्व में सारी विषमता का कारण यह अर्थकार ही तो है।

## प्राधुनिकता और अतीत का संघर्ष

प्राधुनिकता के नाम पर उन्मुख बलता भाव बन रही है, उसका ठीक तरह निर्णय होना चाहिए कि यह सबकुछ प्रगति है या मनुष्य की कुप्रवृत्ति का ही रूप है। आज बायें ओर क्री-स्वातन्त्र्य के ऊपर कापी ओर बिना का रखा है लेकिन इस प्रश्न पर हम सम्मीरता-पूर्वक विचार करें कि यह क्री-स्वातन्त्र्य है क्या ?

क्या यह प्राचीन धर्म-स्वच्छन्दता की माँग है ?

यह तो ठीक है कि पाप पुण्य की कारणों से सुख-दुःख की परिस्थितियों से अपनी सापेक्षता रखती है लेकिन समाज की चेतना का भी तो उसी प्रकार निरन्तर पुनः और परिस्थिति की सापेक्षता से विभाव होता है और इस विभाव में एक बार यह देखकर कि प्रमुख नियम जब मनुष्य की प्रगति को रोकता है उसके नियम में बिपरीत कारण बन जाती है। एक बार वास्तव्यता का प्रारम्भ भी पूर्व स्थिति की तुलना में मनुष्य के लिए कल्याणप्रद ही हुआ क्योंकि पहले तो शत्रुओं को लाकर मार डाला जाता था, उस स्थिति में शत्रुओं को जीवित रखकर केवल भोजन वस्त्र के आधार पर उनसे काम लेने की व्यवस्था करना मानवता की दृष्टि से एक भाव का कदम ही था। इसी आधार पर क्रान्तान्तर में जाकर मनुष्य की हत्या पाप के रूप में स्वीकार कर ली गई। फिर जब शत्रु-धना

के धर्मार्थ स्वामी बापों के प्रति धमानुषिक व्यवहार करने से भी धर्मार्थ हटि से भी धर्मार्थ सामवासी सिद्ध न होने के कारण यह दृष्ट नहीं तो बाप में बिना बना कि किसी धर्म मनुष्य को बाप बनाना ईश्वर के नियम के विरुद्ध पाप समझा जायेगा । इस तरह पाप और पुण्य की श्रुति बलती जाती है लेकिन देखना तो यह चाहिए कि क्या इस प्रकार की चारणार्थों के बिना समाज धर्म बन सकता है, जैसे अनुमान से तो नहीं । मनुष्य और समाज के विकास के लिए ये चारणार्थ अत्यन्त आवश्यक हैं । हाँ उसके विषय में यह चारणार्थ हमें स्वीकार नहीं करनी चाहिए बल्कि परिवर्तन में उनके रूप को देखना चाहिये और उनके नीचे एक अपरिवर्तनीय तत्व मनुष्य के कल्याण की भावना के पुण्य रूप को भी देखना चाहिए । उस सबको देखने के पश्चात् पूरी तरह बुद्धि चालकर हमें विचार करना चाहिए कि प्रत्येक चारणार्थ कहीं तक मनुष्य का कल्याण करती है । वस वही पुण्य है और जो चारणार्थ मनुष्य कल्याण न करके उसको अधोपतन के मार्ग पर ले जाने वाली हो उसे ही पाप के रूप में स्वीकार करना चाहिए । यही हमारी मनुष्यता के आधार पर पुण्य और पाप के निर्णय का आधार है ।

इसी दृष्टिकोण से आज हम प्राकृतिक जीवन को परखने का प्रयत्न करें तो देखेंगे कि उच्च वर्ग और उच्च मध्य वर्ग की स्त्रियाँ जो स्त्री-स्वातन्त्र्य की पुकार उठाती हैं वह स्वतन्त्र विचार की कामना के प्रतिरुद्ध और कुछ नहीं है । वे परिवार की सहता को स्वीकार नहीं करती और पूरी तरह व्यक्ति परक होकर अपने अहंकार से समाज की व्यवस्था को कुनौती देती हैं । उसमें उनका व्यक्तिगत स्वायत्त होता है । व्यक्ति का समष्टि के स्वार्थ के लिए नष्ट हो इस प्रकार की भावना उनमें अस्मात् भी नहीं मिलती । उनकी बनावट, चमक चमक सभी उनकी वासना और अहंकार के मुखरित रूप हैं । इस तरह के उच्च परिवारों में स्त्री और पुरुष के बीच एक प्रसार या द्वन्द्व और स्पर्धा होती है जिसके धर्मार्थ भावनाओं की सम्भीरता का स्वाभाविक ही धर्मार्थ होती है । भारतीय धर्मार्थ की दृष्टि से देखा जाय तो इन परिवारों में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध अस्मात् पाप और धर्म की भावनाओं के ही निपन्निष्ठ होत हैं । हमारे व्याख्या के धर्म और मोल की भावनाओं का वहाँ पूरी तरह अभाव होता है, सभी तो यदि पाप का कोई निश्चय धर्मार्थ के रूप में करीब आता है तो उसकी उच्चरूपि परती उसके लिए रास्ता तक बनाने में अपनी हीनता समझती है । वहाँ तो नीकर के बल पर ही उन स्त्री पुरुष की समानता बनती है और उसी के बल उनके बड़े आदमी होने का सबूत मिलता है । इनकी गुणवत्ता में दगा जाये तो बपा के मनीषी मुख के जिन्होंने आतिथ्य संस्कार का इतना ऊँचा

बर्ज स्थापित किया या कि धर्म के घाने पर भारतीय परिवारों में उसका प्रसार स्वायत्त होता था। आज मध्यवर्ग के चेतना में इस सबको उस उपासक रूप में स्वीकार ही नहीं किया है।

इसका कारण क्या है ?

कारण है भारतीय धार्मिक का भूल जाना और प्राधुनिकता के चमक में पश्चिम की ओर घटकना। पश्चिम से भी कई बातें सीखनी चाहिए, लेकिन पश्चिम को धार्मिक मानकर भारतीय धार्मिकों को केवल धर्मविरास के रूप में देखना हमारी पताविष्यों से अभी धार्मिक वास्तविकता का ही चोटक है। जब तक हम अपने संस्कारों को उससे मुक्त नहीं करेंगे जब तक किसी समस्या के बारे में समझौता और निष्पक्षता से विचार नहीं कर सकेंगे। पूर्व और पश्चिम भारत और यूरोप का विचार-विचार न करते हुए हम मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के विकास के विभिन्न रूपों को देखना चाहिए और फिर अपनी विचारधारा बनानी चाहिए ? केवल पश्चिम ही जहाँ सम्प्रदाय का धार्मिक नहीं है। भारतीय धर्म जिसमें हम रहते हैं, क्या कोई इसके सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् एकमात्र पश्चिम की संस्कृति से प्रभावित हो सकेगा ? मानव संस्कृति के विभिन्न विभिन्न रूप इस प्राचीन देश में मिलते हैं और मनुष्य के व्यवहार के लिए विभिन्न तरह के प्रयोग यहाँ किये गये, क्या उसने और नहीं सहज विवेक ? मैं समझता हूँ नहीं तो फिर हमें अपने देश की संस्कृति को अपना-पूर्ण दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। प्राधुनिकता की बाढ़ में हमें अपनी तरह नहीं बह जाना चाहिए कि हम अपनी आधारभूमि का ही भूल जायें।

धर्म में धर्म में एक बात और यह है। धर्म ने प्रकृति के कारण को मानवत्व दिया है, उसी के कारण उसने वास्तव को वास्तव में स्वीकार किया है। मानवता का धर्म की इसी मनोवृत्ति का परिणाम है कि वह जिम्मेदारी को पुरुष पर डेनती रही और इसीलिए उसने रूप के रूप पर पुरुष की प्राधुनिकता को उकता कर अपना काम निहालने की चेष्टा की।

समस्त भारतीय धार्मिक भी धर्म के भीतर की शक्ति है। परिवार-मानव समाज के व्यापक प्रश्न को संकट करके 'मेरे तैरे' की जुगा को जन्म देता है। यह समझा इतनी बड़ी है कि इसका सुमाधने के लिए हमें अपने समस्त चिंतन के मूलाधारों को बदलना होगा।

विशुद्ध चिंतन के बदलने से भी समाज धीम नहीं बदल सकता। समाज में परम्परा धीरे-धीरे बनती है। बनसूत्र परिवर्तन किये जा सकते हैं, विष्णु उसमें दम-न-बोध का आशय रहता है और उसमें वास्तविक परिवर्तन नहीं होता, एक दुपहरि हटती है, तो दूसरी अपने आप पता हो जाती है।



## प्राकृतिक उपादान तथा भौगोलिक पर्यावरण

मानवशास्त्री मानव जाति के तीन विभाजन करते हैं—

- (१) मंगोलॉयड ।
- (२) कफिडॉयड ।
- (३) नीग्रॉयड ।

किन्तु वेकमस और स्टर्न ने निम्नलिखित विभाजन किया है—

- (१) कफिडॉयड ।
- (२) मंगोलॉयड ।
- (३) अफ्रीकन नीग्रॉयड ।
- (४) मेसिनेसियन ।
- (५) माइक्रोनेसियन—पोसिनेसियन ।
- (६) कापो या मध्य अफ्रीकन पिग्मी ।
- (७) सुदूर पूर्वीय पिग्मी ।
- (८) ओस्ट्रोमॉयड ।
- (९) कुरामेन हॉर्टेनटो ।
- (१०) धायनू ।
- (११) कैहा या कैहॉयड ।

१६ वीं सदी तक बहु प्रमुख जातियाँ (races) थीं। प्रत्येक महाद्वीप पर स्थानीय छपजोड़ इनके पारस्परिक मिस्रण तथा भौगोलिक पर्यावरण से जन्म लेते रहे।

यहाँ हम प्राकृतिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जिन्होंने प्रत्येक जाति पर अपना प्रभाव डाला है।

मनुष्य ने प्रकृति से निरंतर संबंध किया है और अपने को ऋणित रखने की चेष्टा की है। प्रकृति के प्रति उसने—

(१) भय से उत्पासना की है।

(२) कड़ि से उसकी आज्ञा मानी है।

(३) ठक से उसकी मारवा की है।

(४) और विज्ञान से उसने उसे अपने प्रयोग में लाने की चेष्टा की है।

संसार में मानव के लिये इतनी प्रमुख वस्तु कोई भी नहीं है जितना कि मौसम। मौसम का उसके जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मौसम का प्रभाव मानव को प्रारम्भ से ही प्रभावित करता रहा है। मौसम प्राचीन बर्ष में, विज्ञान में, तथा वर्तमान धारण में एक स्वाभाविक वस्तु के रूप में है। यह एक रहस्य बना हुआ है। इसके बारे में एक बात में सर्वसम्मति है, और वह है इसकी अस्थिरता। लेकिन यह पूर्णरूपेण नहीं कहा जा सकता कि बसन्त ऋतु में ही मायेना या मार्च में। वहीं हमें एक सी नहीं पड़ती तथा बर्षों भी कभी समान नहीं होती। कभी अधिक सर्दी पड़ती है, तो कभी सर्दी मध्यम पड़ती है। इसी प्रकार गर्मी की हानत होती है। कभी गर्मियों में अधिक गर्मी पड़ती है, तो कभी गर्मियों में गर्मी हो जाने से गर्मी कम पड़ती है।

प्रारम्भिक मानव पर बसा कर नहीं पड़ता था। उसको अपनी रक्षा की तथा अपने भोजन की बड़ी परवाह करनी पड़ती थी। उसको मौसमों के संबंध में ज्ञान भी कम था। वह अपने अविष्य के लिये किसी प्रकार का संघर्ष नहीं करता था। धीरे-धीरे इसका ज्ञान मानव को हुआ, वह इसे जादूकारक विद्या के नाम से जानने लगा। आज हम प्राकृतिक नियमों पर बड़ी सावधानी के साथ बोलते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हमने घातकियों के अनुभवों के बाद उसे समझा है तथा हमें प्रकृति के नियमों का ज्ञान हुआ है। जैसे-जैसे मानव का अस्तित्व बढ़ता गया, वह प्राकृतिक शक्ति से परिचित होता जाता गया। मानव के लिये मूर्ख बाल्या, तथा नसब बहने एक मादकीय डंग बन-सा घातक होने लगे। वह इनकी बड़े आश्चर्य के साथ देखता था और इनके बारे में वह समझता था, कि ये सभी सृष्टि के कर्ता हैं। इनका निरन्तर और धीमा बड़ा घातकत्व बढ़ता था। एक और इनसे घातक होता था तो

हूसरी और नदियों और पेड़ों ने जीवन को शुरू प्राप्त होता था । इनके हस्त तथा इनका कस-कस, छस-छस करना पेड़ों का वायु-वेध से शक्तिता मानव को बड़ा आवश्यकमित्त कर देता था ।

पौराणिक कहानियों में भी ज्योतिष विद्या का विकास किया । इसके द्वारा इस बात की कल्पना की जाने लगी कि मौसम अच्छा रहेगा या बुरा । इस प्रकार की कल्पना के द्वारा एक देवता कस कस घाया और लोगों ने मौसम की खातिर इन देवी देवताओं की प्रार्थनाएँ तथा पूजाएँ प्रारम्भ कीं, ताकि मौसम अच्छा रह सके । इन देवताओं के लिये घनेकों प्रकार की भेंटें चढ़ाई जाने लगी ताकि मानव की भलाई हो सके । इन प्रार्थनाओं तथा भेंटों के कारण मौसम का विवरण साहित्य और कला के अन्तर्गत आया । हमारे प्राचीन ग्रन्थों में, यहाँ तक कि वेद जो कि संसार का सबसे प्राचीन साहित्य है, उसमें भी मौसम को ठीक रखने के लिये सूर्य चन्द्रमा, नक्षत्र तथा अन्य देवताओं की प्रार्थनाएँ की गई हैं ।

वाल्वात्स्यों का मत है कि मौसम के बारे में सबसे पहले अमबद्ध अध्ययन मिथ के लोगों ने किया । ग्रीस के प्राचीन मन्दिर इस बात के द्योतक हैं । प्राचीन ग्रीक-निवासियों ने भी मौसम पर काफी ध्यान एकत्रित किया । उनके देवता अमबद्ध बुद्ध की प्राकृतिक शक्तियों को बतलाते हैं । ये देवता इसी शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में हैं । ये लोग अपने वैज्ञानिकों को विस्मयदेवतावादी सिद्धान्त को मानने बाधा मानते थे । अमबद्ध सम्बन्धी विद्या (climatology) अमबद्ध ग्रीक लोगों से लिया गया है । कोई २२०० वर्ष पहले हेरोडोटस ने ग्रीकों के छिपने तथा उदय होने के बारे में बड़ा आवश्यकमम वर्णन किया है तथा बताया है कि मानव को उनके उदयास्त के समय कोसा बनना चाहिये । उसने बताया है कि सर्दियों के मौसम का गुरुत्व प्रभाव वर्षा के प्रभाव को सूचना देता है । उसने अपने अनुभव तथा अन्य लोगों के ज्ञान के द्वारा दिन के कार्यों का एक कैलेंडर बनाया था जो कि एक प्रकार से जलवायु-जीवन का कैलेंडर कहा जा सकता है । अरस्तू ने भी हम सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला है । प्राचीन लोगों ने मौसम के बारे में काफी अध्ययन किया तथा अपने अनुभव द्वारा यह बताया कि हमका मानव के ऊपर जितना शारीरिक तथा धार्मिक प्रभाव पड़ता है । इसके विस्तृत अध्ययन ने भी मानव की शक्तियों को जोसा । इसके द्वारा ही मानव को बिजली की शक्ति का ज्ञान हुआ । इसी मौसम वैज्ञान ने विज्ञान को एनेमोमीटर बैरोमीटर थर्मोमीटर, ऐन्थ्रोपमीटर साइमोमीटर मीटरोराफ तथा टैलरकोप का ज्ञान कराया । उसने इस बिजली की शक्ति के द्वारा ही अपना विकास किया । गर्तना तथा बैलुनी की मीटरोसोमी की तथा

में लाया गया। मौसम के सम्बन्ध में हमने पहले ही कहावतें मिलती हैं। म्योसिपी लोग इस सम्बन्ध में पहले ही उपग्रहों को देखते हैं। वे जूपीटर के उपग्रह होते हैं। इनका प्रभाव पृथ्वी की नियमितता पर पड़ता है। यह एक ग्राम विश्वास प्रचलित है कि जब चन्द्रमा एक बेरे में बिना हुमा-सा दिखाई देता है, तो वर्षा होती है। इस बेरे को 'पारस में बैठना' के नाम से उत्तरी भारत में पुकारते हैं। जितना बड़ा बेरा होगा उतनी ही अच्छी वर्षा पायेगी। जब महीन चन्द्र छविभार को निकलता है तो यह कहा जाता है कि वह वर्षा की सूचना दे रहा है। चर्मा छविभार का महीन चन्द्र वर्षा का संकेत होता है। अगर चन्द्रमा रविभार को निकलता तो यह विश्वास किया जाता है कि माह समाप्त होने से पहले पहले बाढ़ अवश्य पायेगी। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अगर चन्द्र प्रथम दिन से चतुर्थ दिन अच्छा और चमकदार निकलता है तो यह माना जाता है कि मौसम अच्छा रहेगा। यदि यह बारिशों से पिछ रहेगा तो वर्षा अवश्य होगी। यदि चन्द्र निकलने के छठ दिन रंगीन सहरो में दिखाई देता तो यह विश्वास किया जाता है कि सूखन अवश्य पायेगा। इस प्रकार प्रतिदिन का बदला हुआ चन्द्र भविष्य के मौसम की सूचना देता है। मंत्र ज लोगों ने चन्द्रमा से मौसम का बड़ा सम्बन्ध माना जाता है।

मंत्र ज लोग अपने देश से विजयी तथा सुखान प्राप्ति को हटाने के लिए वर्ष की बंदिनों को बजाते थे। बुरी आत्माओं को दूर करके के वन में भी इन बन्तों का प्रयोग किया जाता है। ग्राम के सभी व्यक्ति ने इस सम्बन्ध में काफी परिवर्तन कर लिया है।

ग्राम का प्रसिद्ध भविष्यवाद्य फ्लेमोरियन बीनम पर चन्द्रमा के प्रभाव को नकारात्मक रूप से स्वीकार करता है। उसने लिखा है कि—चन्द्रमा और मौसम आपस में बदल सकते हैं। लेकिन चन्द्रमा का बदलना मौसम को नहीं बदल सकता।

इसी प्रकार के पहले विद्वान सूर्य के बारे में प्रचलित हैं। प्राचीन बहामों में यह कहा जा सकता है कि—“राशि के आठ घंटों में वह बिना अपने ताप के रिकर के समय प्रगट होता है।” एक विश्वास जिग कि विज्ञान भी मान्य करता है, वह यह है कि मैग्नेटिक सूक्ष्मों के द्वारा मौसम प्रभावित होता है। सूर्य के सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि अगर रात बाल आकाश साफ होगा तो अचानक समग्र जायेगा और अगर राशि को आकाश साफ दिखाई देगा तो मौसम अच्छा समग्र जायेगा। यह सुम सूर्य की दिमागी माना जाता है। एम. म्यून् ने बताया है कि मान आकाश हाव पर मौसम अच्छा रहेगा

और इसीलिए सूर्य को मौसम बताने वाला पुत कहा गया है। वेद में भी प्राकृतिक वस्तुओं को देवता मानकर प्रार्थना की गई है। बिकला सूर्य को धर्म दिया जाता है।

कोहरे के निषम में कहा जाता है कि यदि वह किसी पहाड़ी से आ रहा है तो मौसम बुरा होगा और यदि समुद्र की ओर से उठ रहा है तो मौसम अच्छा रहेगा। मौसम की पहचान के लिए चिह्नियों और मौसम के अन्य चीजों को भी देखा जाता है। पक्षी मौसम के बारे में बताते हैं। टिटहरी के घंघे घिमे जाते हैं और उनकी संख्या या उसके बोलने से अनेक अनुमान लगाये जाते हैं। जब वह झुंझी का बोलना बनाती है तब प्रकाश पड़ता है।

जब कुत्ते जमीन के अन्दर बड़ा खोदते हैं तथा बास खाते हैं, मवेशी और भेड़े साथ-साथ मैदान में बसती हैं बिस्मियाँ छटी होकर छोटी हैं, मुर्गा सत्रिकाल को बाँध देता है, कभी चिड़िया प्रातः जाती है मँढ़क चिल्लाते हैं मकड़ी अपना जाल छोड़ देती है तो वह विश्वास किया जाता है कि ऐसे छन्दे कार्य होने से बर्षा प्रलय होगी। जब मवेशी इधर-उधर घूमते हुये नजर आते हैं तो यह माना जाता है कि सुन्दर मौसम आने वाला है।

घनाका में तुखन टोकने के लिये शीप लम्बाऊ पीना छोड़ देते हैं। जब प्रकाश में बिजली कमकती है तब यह माना जाता है कि वह साँप और तुखन को खा जायेगी। लूना जाति में ऐसा विश्वास है कि प्रकाश में यदि किसी पशु या जन्तु की छी प्राकृति बन जाती है तो वह बुराईयों को मष्ट करती है।

बुद्धो में मौसम के प्रति एक विशेष आवश्यकता दिखाई देती है। आने वाले मौसम को वे इ मित करते हैं। जब पत्तियाँ एक बूछरी से गिर जाती हैं तो वर्षा की आशा की जाती है।

सम्य समाज में मौसम का जीवन प्रयोगशालायों द्वारा को जाती है। सन् १८७२ से मुख्य-मुख्य राजधानियों से मौसम सम्बन्धी चार्ट प्रकाशित किये जाते हैं, किन्तु उनके आधार वैज्ञानिक अनुसंधान पर निर्भर होते हैं।

मनुष्य की संस्कृति पर प्रकृति का सीधा प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति ॥ मनुष्य की निम्नलिखित बातों पर प्रभाव पड़ता है—

(१) रहन-सहन

(२) सृष्टि के प्रादि कारण की खोज की वसुधा

(३) ज्ञान-यात्रा को नियमावली

(४) माया की बनावट

(५) जीवन और मृत्यु की व्याख्या

(६) जातीय भावना-मर्ब या हीमत्व की भावना।



जर्मन कर सिमा है वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक ऐसी बातियाँ हैं जो धमी तक सांस्कृतिक जीवन व्यतीत कर रही हैं। हमकी संस्कृति और संस्कृति पर सांस्कृतिक जीवन का स्पष्ट प्रभाव सक्षित होता है। सांस्कृतिक पर्यावरण से धमी तक उनका जीवन प्रभूता है। इन बातियों के बारे में सम्भवतः तथा अनुशीलन हमें जीवोत्पत्ति पर्यावरण के प्रभाव को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

कनाडा के उत्तरी हिस्से को टुन्ड्रा कहते हैं। टुन्ड्रा के रहने वालों को स्किमों कहते हैं। जो वहाँ की जाति है। बरफ भर के आवासर महीनों में वहाँ सरभी पड़ती रहती है। करीब १० महीने तक वहाँ पर सर्दी पड़ती है। सर्दियों भी कम नहीं पड़ती है बहुत ज्यादा पड़ती है। ठण्ड के दिनों में तो वहाँ जई फ्रीड तक बरफ कम जाती है। सब जगह सफेद बरफ ही बरफ दिखाई पड़ती है। ठण्ड के प्रभावों दूसरे मौसमों में भी वहाँ बहुत बरफ पड़ती है।



सफेद चीक

स्किमों लोगों का देश बहुत ही ठण्डा है। बरफ की बजह से तो धीर भी ज्यादा ठण्डा रहता है। वहाँ पर इतनी ज्यादा बर्फ धीर शीत पड़ती है कि ठण्डा जल-



लोमड़ी

बाहु के मांस उसे सहन नहीं कर सकते । सिर्फ़ दो महीने के लिए यहाँ गरमी



बाहर

पड़ती है पर वह गरमी इतनी नहीं पड़ती जैसे कि हमारे देश में पड़ती है । गरमी का मौसम बहुत छोटा होता है । जैसे यहाँ दिन बहुत लम्बा करीब २१ घंटे का होता है, परन्तु सूर्य आसमान में ज्यादा ऊपर नहीं उठता है जिससे उसकी रोशनी तिरछी पड़ती है । रोशनी तिरछी

पड़ने की वजह से उसमें गरमी बहुत ही कम होती है ।

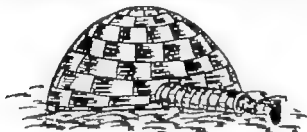
इस गरमी से ऊपर की वरक बोझी सी दिख जाती है । वरक बहुत ज्यादा पड़ने की तथा ठंड ज्यादा होने की वजह से यहाँ पर कुछ भी पैदा नहीं होता है और हमारे देशों की तरह व तो वहाँ घन्टे-घन्टे फल होते हैं, व हो घस जैसे फल जो आसन घास बीज ही होती हैं । गरमी के दिनों में यहाँ बोझी सी काई होती है और बोझी सी मिचन होती है । मिचन एक पौधे का नाम है । मिचन और काई आसमो के काम की नहीं हैं वे तो बारह सिंघे के साने के काम आती हैं जो वहाँ का मुख्य आनवर होता है ।

यहाँ पर पौधे से ही आनवर मिलते हैं । इनमें बारहसिंघा सबसे ज्यादा मशहूर है जो यहाँ पर महत्वपूर्ण कार्य करता है । बारहसिंघा कई नाम करता है । यह एस्किमो को खाने-पीने के पत्र तथा घर बनाने के लिए सब चीजें देता है । बारहसिंघे के घनापा यहाँ पर सफ़ेद पीछ कस्तूरी बैल और सफ़ेद रंग के कुत्ते भी पाये जाते हैं । इन कुत्तों को वे लोग वास्तव में और अपनी मादियों में जोड़ते हैं । नीचे की तरफ यहाँ पर कटीली भड़ियाँ और हथर-हथर पड़े हुए ठिन्के बाले हिरसे पाये जाते हैं । इन हिरसों में वे लोग आनवर बनाते हैं । गर्मी के दिनों में इस जमीन पर तरह-तरह के रंग बिरंगे फूल उग जाते हैं । यहाँ की बसबास ही ऐसी है कि यहाँ पर काम के आनवर मिलते ही नहीं हैं । इसलिए इन लोगों का जीवन हमारे किसानों की तरह सुगमपूर्ण नहीं होता है, वे लोग एक जगह टिकने ही नहीं हैं । एक जगह से दूसरी जगह घूमने ही रहते हैं । भौतिक परिस्थितियों में आधीन होकर उन्हें अपना इन प्रकार जीवन व्यतीत करना पड़ता है । पर्यावरण के अनुसार वे लोग अपने को लाभ लें हैं और अपना जीवन बिताते हैं ।

दुनिया में कहीं पूरे साल वरक पड़ती रहती है जिसमें वरक कारों और घासपास हो जाती है । इसी वजह से एस्किमो लोग अपने रहने के लिए बर्फ़ की मोप भेड़ियाँ बनाते हैं । इसकी इनसे रहने हैं । इसका भेड़ियाँ में एक छोटा घर बनाया या रखा होता है । इनसे ठंड से बचते हैं । यह रास्ता



एक घुरंग की तरह होता है, जिसमें वे लोग झुककर या सेटकर भीतर जाते हैं और जाते हैं। इन झोपड़ी की भीतरी दीवारों को वे लीम बाण्डसिबे, लीम मखनी और टील के बगड़े से ढँक देते हैं, जिससे घुरी झोपड़ी परम बनी जाती है और वे लीम ढँक से बच जाते हैं। बगड़े को दीवारों में ठोकने के लिए वे लीम बानवर मार कर उसकी हड्डियों का काँटा बनाते हैं। फिर बगड़े को काँटों के सहारे दीवारों में मसा देते हैं। जब प्राकृतिक बरसी से या बूढ़े की बरसी से बरफ पिनसती है तब उसे दीवारों के पीछे बनी गलियों से बाहर



झोपड़ी

निकाल देते हैं। परन्तु उनकी झोपड़ियों के बाहर हमेशा बरफ बनी जाती है, क्योंकि बाहर बहुत ज्यादा ठण्ड पड़ती है जिसकी वजह से झोपड़ी के चारों



सफ़र कुत्ता

तरफ़ बरफ़ ही बरफ़ जम जाती है। वे लोग बरफ़ की झोपड़ी इसलिए नहीं बनाते कि बरफ़ को बनी झोपड़ी उन्हें बहुत पणखी लगती है, बल्कि इसलिए



सीम पाकी

बनाते हैं कि बरफ के घनाभा वहाँ कुछ घीर बीज हैं ही नहीं जिससे उसकी भोपड़ी बनाई जा सके। न तो वहाँ पर मिट्टी ही होती है न पत्थर। सीमेंट घीर बूने का तो वहाँ नाम भी नहीं है।

पेशावर तथा मजस्पति का वहाँ पर पूर्णतया घमाब है। येहूँ, बी, घने का तो नाम ही नहीं है। ऐसी हासत में ये लोग शिकार करते हैं घीर मछली मारत हैं। शिकार करना मछली मारना ही इनका मुख्य काम है। शिकार करने के लिये ये लोग बारहूँतियों के सींगों के भासे बनाते हैं घीर उसकी हड्डियों के भी भासे बनात हैं जिन्हें सीम बासरस घीर छल नाम की मछलियों का शिकार करते हैं। मछली के शिकार में ये लोग हारपुन नाम का हथियार भी काम में लाते हैं जिसको ये लोग बहिरुही कतावा से बरत कर ले जात हैं। इस हथियार के बरतने में कामें बेश जात हैं। गरमी के दिनों में ये लोग एक नाम पर बैठ कर शिकार करते हैं उस नाम को कायक कहते हैं। यह नाम से घासानी से बरफ पर फिसल जाती है। सीम, छेमे बासरस मछलियों घीर लफेद भावू घीर लोमड़ी की बर्तों से ये लोग तेज निकाल कर उसे भोपड़ी परम करने घीर जाना बनाने के काम में लाते हैं। इन जानवरों घीर मछलियों की बर्तों से ये लोग बत्ती बना लेते हैं। बीपक तो ये लोग जानवर घीर मछलियों की बर्तों से बना लेते हैं।

सीम मछलियों की हड्डियों से ये लोग मृदुया बना लेते हैं घीर इनकी बर्तों या बमड़े के भागे से बारहूँतिये सीम छेमे घीर मफेद पीछ के बमड़े सीकर अपने लिए बूते घीर कपड़े बना लेते हैं। इस प्रकार ये लोग अपने बूते घीर कपड़ों का इन्तजाम कर लेते हैं। इस तरह ये लोग अपनी ठण्ड से रक्षा करने में समर्थ होते हैं। बारहूँतिये से इन लोगों को बहुत सहायता प्राप्त होती है। घर जाने पर इनमें जास जास हठी मजबुद्ध मिलता है। बारहूँतिये ही इनके लवारी के भी काम में लाते हैं। ये लोग स्तेज नाम की माड़ी में जाते हैं, जिसको बारहूँतिये या बूत लीजते हैं। यह माड़ी अगर पहिली की होती है घीर बर्फ पर फिसलती है। बारहूँतिये का बूब भी ये लोग पीते हैं। बारहूँतिये के बिरे हुए गुर होने की वजह से वह बरफ पर फिसलने नहीं पाता। यह जानवर बर्फ को तोड़कर अपना खाना बूब ही बूड लेता है।

जब यहीं का समय होता है तब बरफ पिघलनी शुरू हो जाती है। तब इनका बर्फ का बना घर भी पिघलना शुरू कर देता है। तब ये उन बर्तों को छोड़ देते हैं घीर नीचे की तरफ जा जाते हैं। यहाँ जाकर ये लोग अपना घर बरफ का नहीं बनाते, यहाँ वे तम्बू में रहते हैं। इनका तम्बू सीम घीर बारहूँतियों की घास का बना होता है। इन हिस्से में बारहूँतियों को खाने को बूब

मिल जाता है। यहाँ सिवार, लिचन और कई होती है जिसे बारहसिंघा नाम से जाना है। यहाँ बारहसिंघों का खाना है।

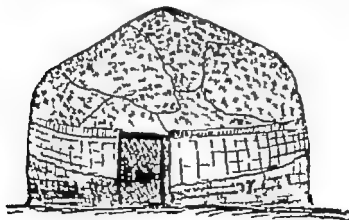
नीचे घाटे समय में लोग अपने साथ स्नेह भाइयों में खान, लम्बा और तेज खाते हैं और यहाँ धाकर उन्हें व्यापारियों के हाथों में बेच देते हैं। इन चीजों के बचने में वे व्यापारियों से सक्कर, चाय और शराब, खरीद लेते हैं और अपने काम में खाते हैं। हारपून नाम का मछली मारने का छिपकार भी खरीद लेते हैं। बगी में तो वे लोग ताजा मांस खाते हैं। इन दिनों इनको ताजा मांस मिल जाता है। सर्दियों में वे सोम मांस को खूबा लेते हैं। उस घूबे हुए मांस को फिर बड़े चाव से खाते हैं। इन लोगों का खाना मांस मछली और दूध है। दूध इन्हें बारहसिंघों का मिल ही जाता है।

एस्किमो लोगों का जीवन-शैली छोटा होता है। परन्तु वह बड़ा ताकतवर और स्वस्थ होता है। वे लोग एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते हैं। घाने लिए और बारहसिंघों के खाने के लिए इन्हें एक जगह से दूसरी जगह घूमना पड़ता है। घाने उन्हें एक जगह खाना मिल जाता है तो वहाँ रह जाते हैं। दूसरे दिन घाने की उम्मीद में फिर चल देते हैं। यहाँ तक कि ठंड के दिनों में भी इन्हें छिपकार के लिए जाना पड़ता है। खाने के दिनों में मछलियों और जानवरों के छिपकार के लिए कुत्तों की माड़ी में बड़कर मुकीसी पत्ती वाले जंघनों के पास जाते हैं। वे लोग वहाँ छिपकार भी करते रहते हैं और जानवरों को खराते रहते हैं। बारहसिंघों को भी खरने के लिए छोड़ देते हैं। जानवरों और मछलियों को मारते-मारते उनका स्वभाव भी कठोर और हठधारी का हो जाता है। वे लोग बड़े दुःख सहने वाले होते हैं। चाहे कितनी ही खुरदरी परेशानी और दुःख घायें तो भी वे बहसते नहीं हैं, उनका सामना करते हैं। दुःख सहन करने की उनकी शक्ति बल शायी है। इस प्रकार की कठिन हालातों के कारण वे लोग कुछ भी उन्नति नहीं कर पाते हैं। कुछ उनका जीवन ही ऐसा बन गया है कि वे उसके साथी बन गये हैं। उन्नति तो तब ही हो जब उनके रहने-सहने की खाने-पीने की हासत ठीक हो और वे हासत तब ही ठीक हो सकती है जबकि बसवासु बनछ ठीक हो। भ्रमरुल ही इनको इस तरह का जीवन बिताना पड़ता है। अपना जीवन जसी में यह जानते हैं।

घान भी दुःख-मिषाही एस्किमो लोग इसी तरह का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनमें कोई बदलाव नहीं आया है। न तो उनके पास पहिने के लिए धूती, ऊनी, रेयमी कपड़ हैं, न ही खाने के लिये धान्य स्वाद के भोजन है। वे घब भी मांस, मछली खाते हैं और बारहसिंघों का दूध पीते हैं। उनके यहाँ न तो घान की सी-बोटें हैं, न रेलें हैं, न ही हवाई जहाज। उनके लिए तो

ये भी बड़े नामुमकिन ही हैं। इस तरह इन लोगों का जीवन धाज की उपरति करती हुई जातियों के जीवन से बिस्मृत समान है। प्रापुनिक स्तर की उन्नति और संस्कृति उनके लिए स्वप्न सहस्य है।

जिरमीज—कभी श्रमि से पहले के जिरमीजों का यह एक सम्मेलन है। स्टेपी देश के रहने वालों को जिरमीज कहते हैं। स्टेपी देश की विशेषता है कि वहाँ बरसात कम होती है और वायु अधिक होती है। ऐसे प्रदेश ही स्टेपी के प्रमुख भाग हैं। एशिया के बहुत ठण्डे हिस्सों में वहाँ कि वायु के मैदान हैं वहाँ ज्यादातर वे लोग रहते हैं। कैस्पियन सागर और कालाई पहाड़ के नीचे वे लोग अधिकतर घूमते हुए मिलते हैं। इस देश में घरेलू के दिनों बड़ी बड़ी घरेलू पकती है। ठण्ड के दिनों में बहुत ठण्ड पकती है। केवल जब बसन्त का मौसम आता है तब वहाँ थोड़ी सी बरसात हो जाती है इसीसे वहाँ पर बहुत वायु पैदा हो जाती है। वायु के वहाँ पर बड़े-बड़े मैदान हैं। मैदान ही उनके बहुत बड़े सहारे हैं। इन्हीं मैदानों में वे लोग अपनी घायों बैलों भेड़ों बोकों ऊँटों बकरियों और मुषरों को पालते हैं। वहाँ की करीब-करीब घरेलू जलवायु है जिसमें पेड़ उगते ही नहीं हैं। अगर कोई पेड़ उग भी जाता है तो छोटेपन में ही वहाँ के जानवर उसे खा जाते हैं। वहाँ के लोगों का मुख्य काम जानवर पालना ही है। वास्तव जानवरों में घाय, मुषर, भैंस, भेड़, बकरी, बकरी, भेड़, मुषर हैं। इन जानवरों के घनाग वहाँ पर हिम गलने से भी शहर उबर घूमा करते हैं। वहाँ पर पेड़ ही होते



भैंस, भैंस, भेड़, बकरी, भेड़, मुषर हैं। इन जानवरों के घनाग वहाँ पर हिम गलने से भी शहर उबर घूमा करते हैं। वहाँ पर पेड़ ही होते

ही नहीं है इसलिए यहाँ पर ऐसी चिड़िया और पक्षी पाये जाते हैं जो छड़ नहीं सकते हैं, क्योंकि इनके चढ़ने के लिए पर तो होते ही नहीं। ये पक्षी सुतलुर्ग नाम के पक्षी की जाति के होते हैं। इनके अलावा यहाँ पर कोई चढ़ने वाला पक्षी पाया ही नहीं जाता। खिरनीज जाति के सोय अपने साथ पालतु जानवर तो रखते ही हैं ये सोय कभी-कभी भुमियाँ भी पाल लेते हैं।

खिरनीज सोय एक जगह रह नहीं पाते क्योंकि वहाँ बलबाबु और मौसम ऐसा है कि मजबूरन उन्हें एक जगह ही बूझी जगह घूमना पड़ता है। सर्दियों के दिनों में वहाँ सर्दियों का पक्षी है। सर्दियों के दिनों में वहाँ की सारी जमीन बर्फ से ढक जाती है। इसलिए इस समय इन सोयों को अपने जानवरों के साथ अगली बगह की ओर में शर-उत्तर घूमना पड़ता है। गर्मियों के दिनों में यहाँ बूब नामी पक्षी है जिसकी बगह से मांस सूखने लगती है। ठंड हरी पास की ओर में उन्हें एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ता है। इनका बलबा-फिरवा गुप्ता नर होता है जो 'कबिलका' कहलाता है और जो कि ऊन के नमरे का एक डीगा सा होता है। इन तम्बुओं की पूर्त भी रहते हैं। ये तम्बू घासानी से मोड़कर ऊँटों पर बांधे जा सकते हैं। तम्बूची में ही इनके बगड़े और नमरे के बिस्तर होते हैं। अपने जानवरों से ही जाना कपड़ा डेर सवारी, कामीज पसीने ऊन बगड़े के जैसे और बहुत सस्तर बने रहें उन्हें मिल जाता है। इन्हीं चीजों से बुनने वाले कारिगर्सों से छाटा चाय तम्बाकू बदल लेते हैं। ये सोय चाय और जैस नर बूब पीते हैं। बूब जमा कर खाने के लिए पनीर बनाते हैं। बूब मक्कर मक्कर भी निकालते हैं। लट्टे दूध को सड़ाकर उसकी एक घराब भी बनाते हैं जिसे बयूमिड कहते हैं। ये सोय जानवरों का मांस भी खाते हैं। बर्बों के लिए सुघर भी पाल लेते हैं। बर्बों की ऊन को जमाकर तम्बुओं के लिए नमरे और पहिने के लिए कपड़े भी बना लेते हैं। जानवरों के बगड़े से चूते टोपियाँ, डाल, पैटिया प्यामिन्टी टोकरियाँ और पानी भरने की मर्कें भी बना लेते हैं। जानवरों की हड्डियों से लूटे, कटि और गुहरी बनाते हैं। नर्बों और बगड़ों के ये सोय बांधे बना लेते हैं। जानवरों के सीबों से बठन और सुरही नाम के बांधे बनाते हैं। पाड़ों से ये सोय सवारी का काम लेते हैं। बीनों और ऊँटों से मांस होने का काम ले लेते हैं। मांस होने में इनका लाने-पीने, पहिने-ओड़ने और तम्बुओं का सामान होता है। बूब पक्षियों से ये सोय बांधे भी लेते हैं। इनकी पोशाक में शेर की जान का भारी घर्म कीट ऊन का पाबजामा नमरे की टोपी बगड़े के साथे बूब और कपड़ की वेष्टे होती है। लाने में राई को कानों राखे होती है। भग्ना,

दूध, घास, मीठ, घास भी खाते हैं। जब एक जगह की घास खत्म हो जाती है तो दूसरी जगह पहुँचे ऊँट नेत्रे खाते हैं जो बड़ी-बड़ी घास खाते हैं। फिर मोठे गाय, बैल चलते हैं। सबके बाद भेड़-बकरियों का बसूष सा चलता है, जो बची हुई छोटी-छोटी घास को चर लेती हैं। जाड़े के दिनों में जब इन घास के मैदानों में बर्फ जम जाती है तब यह लोग अपना बैल तम्बू उठा कर भोजन कर रहते हैं। यह भोजन घास, सूँठ और मिट्टी से बनाई जाती है।

विरपीज जाति के लोगों का जीवन-शैली छोटा होता है परंतु कसा हुआ और ठाकुरदार होता है। जमातार झुमते रहने की बजाय वे इन्हें एक जगह छोटा है कि वे सोय भोजन की सहायता में बहुत हीसिद्ध हो जाते हैं। घास के बनाने में तो वे सोय बड़े अच्छे विचारियों का काम दे सकते हैं। इनमें धर्म, परीक का भी भेदभाव होता ही है। जिसके पास जितने ज्यादा जानवर होने वह उतना ही मनवान होया और जिसके पास कम होंगे वह परीक समझा जाएगा। इनका कुटुम्ब जितना ज्यादा बड़ा होया उनके पास चलने ही ज्यादा जानवर होंगे। बड़े कुटुम्ब वाला ही इनका सरदार होता है। इन कुटुम्बों का सरदार 'विश' कहलाता है। इस सरदार का ये सोय बड़ा भारी करत है। उसका कहना सभी जानते हैं। अपने कुटुम्ब को बचाने के लिए ये सोय कई साधियाँ करते हैं जिससे बहुत से बच्चे पैदा हो जाते हैं। इनकी धीरों पर का समस्त कार्य करती है। इनका जीवन कठिनाइयों से भरा हुआ और घातक से रहित होता है क्योंकि बहों का मोहम बलवान, प्राकृतिक दशा भी ऐसी ही है। ये लोग बहुत ही भोजन विचार के होते हैं। अपने पुराने कामों पर ही बलमा पड़ाने करते हैं। ये सोय अपने जीवन में किसी तरह का बदलाव तो चाहते ही नहीं हैं। ये सोय स्वभाव से बड़े धार्मिक होते हैं। धर्म भी इनमें बूट-बूट भरा हुआ है। अगर इन पर कोई कठिनाई आ जाती है तो उन्हें बचने का तरीका तो सोचते नहीं हैं, परन्तु भाग्य का भरोसा करते हैं। कभी-कभी ये भोजन आपस में मिलकर दूसरे देश जो इनके पासपास होते हैं उन पर हमला कर देते हैं। इस तरह इनके जीवन में कोई बड़ा हुआ टीका काम नहीं होता है। विरपीज के घुमते रहने और बचन विचारों विचारों की बजाय वे इनके देश को "बचन और घुमने वालों का देश" कहा जाता है। ऐसा होता है विरपीज जाति का जीवन।

विरपीज जाति के लोगों का जीवन हमें घरने धार्मिक कामों की दाद दिताता है जब के भी एक जगह से दूसरी जगह जानवरों को साथ लिये घास के

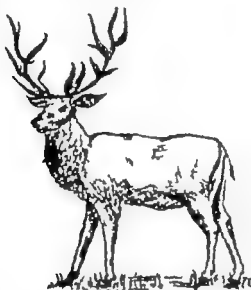
मैदानों की कोख में बूमा करते थे । खिरनीच का भीजन भी उसी तरह का है । अब जब दुनिया बहुत बरस गई है, वे लोग अपने पुराने डरों पर ही बस रहे हैं । इसमें उनका दोष नहीं, कुदरत से भयभूर होकर उन्हें ऐसे ही रहना पड़ता है ।

[ परन्तु इन देशों की हालत अब बहुत कुछ बदल गई है । ये ही मैदान अब यहाँ की खेती के लिए समझे हो गये हैं । पुराने रहने वाले या तो सुबर मये हैं, वहीं तो उन्हें पहाड़ी और अनुपजाऊ स्थानों पर मया दिया गया है । अब यहाँ खेती और जानवर पालने में बहुत ही ज्यादा उपति कर ली गई है । इन मैदानों में अब काफी लोग रहते हैं जिनमें पहिले कोई नहीं रहता था । अब यह भाग विश्व में बैलें, बूब, मज्जन, पनीर, मांस, अन्न बमझों, हड्डियों सीमें, फाँड़ों और सुन्दर, सानतकर जानवरों के निचे मज्जूर हो गया है । वे सभी चीजें अब यहाँ पर बहुत ज्यादा होती हैं । पुराने रहने वाले भी यह देखकर अब कुछ-कुछ सम्मनते जा रहे हैं । अपनी पुरानी सकीर को छोड़ रहे हैं । परन्तु अब भी उनमें ज्यादातर पुरानी चिन्तनी ही बिठा रहे हैं । इन मैदानों में होकर रैस की एकड़ें उठा जाने जाने के रास्ते भी बहुत बन गये हैं । दुनिया का सबसे बड़ा रैस का मार्ग ट्रांस साइबेरियन यहीं होकर गुजरता है । इस रैस के घनाबा कई बड़ी रैसों की यहीं होकर जाती है—बीसे कैनेडियन पेंसेलिक और ट्रांस ऐशियन । ]

अब हम अन्य देशों की कुछ जातियों का उल्लेख करते हैं ।

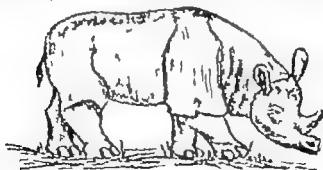
नीग्रो—नीग्रो अफ्रीका की प्रमुख जाति है । अफ्रीका महाद्वीप में मूबान एक राज्य है । यहाँ की रहने वाली जाति को हम्पी या नीग्रो कहते हैं । इन लोगों का रंग काला, बाल घु पचने, नाक चपटी होती है । मांस की हड्डियाँ चमटी हुई होती हैं । इनके आँठ मोटे और चौड़े होते हैं । इनका जबड़ा मज्जूर और बाहर निकला हुआ होता है । इनकी लोपड़ी रंग और लम्बी होती है । कद इनका डिगना होता है । ये लोग मूबान के पुराने रहने वाले हैं और सपाटार घूमते रहते हैं । यहाँ गरमी के दिनों में बहुत गरमी पड़ती है और गरमी का मौसम लुक होते ही यहाँ पर बहुत बरसात होती है । ठण्ड के दिनों में यहाँ पर बहुत कम बरसात होती है । यहाँ की बरती की बनावट औरत के कहीं-कहीं ऊँचे हिस्से या बने हैं । यहाँ की बनावट और बरती की बनावट के कारण बहुत लम्बी और मोटी घास होती है । यहाँ पर घास ही ज्यादा होती है । इन घास के मैदानों के बीच-बीच में कहींसे पेड़ भी जन पाते हैं । घास बहुत ज्यादा होने की वजह से यहाँ खेती का काम होने नहीं पाता । इन घास के मैदानों में मांस खाने वाले जानवर घिर, बघेर, चीता इत्यादि बहुत

होते हैं। बास खाने खाने जानवरों में हिरण केका निराफ, और भैंसे पाई जाती है।



हिरण

बास के मोहनों का होना ऐसी न होना प्रायः बातें इन्हें घूमने वाले पिराये और जानवरों को बचाने वाले लोगों के व्यवहार होती है। वे लोग बास, बंस, भैंसे, घोड़े गधे खर और ऊँट पासते हैं और इन जानवरों को बचाने के नियम



भैंसा

में लोग हथर से उधर घूमा करते हैं। घाने जानवरों की रसा के निचे इन्हें पाकों पर उमार होकर बास खाने वाले जानवरों का निवार भी करना पड़ता है। लवाजार निवार करना भी इनके स्वभाव को बड़ा बठोर बना देता है। वे



मैदानों की सीज में घुमा करते थे । शिरगीज का जीवन भी उसी तरह का है । अब जब दुनिया बहुत बदल गई है, ये सोच अपने पुराने करें पर ही बस रहे हैं । इसमें उनका दोष नहीं, मुराव से मजबूर होकर उन्हें ऐसे ही रहना पड़ता है ।

[ परन्तु इन देशों की हालत अब बहुत कुछ बदल गई है । ये ही मैदान अब गेहूँ की बेटी के लिए अच्छे हो गये हैं । पुराने रहने वाले या तो सुपर गये हैं । नहीं तो उन्हें पहाड़ी और समुद्र-तट स्थानों पर भेजा दिया गया है । अब यहाँ रोटी और जानवर पालने में बहुत ही ज्यादा उन्नति कर भी गई है । इन मैदानों में अब काफी लोग रहत हैं जिनमें पहिले कोई नहीं रहता था । अब यह भाय बिस्व में बैंग, दूध, मक्खन, गनीर, मांस, ऊन, चमड़ों, हड्डियों, चीयों, घंटों और सुन्दर, ताजतबर जानवरों के भिजे मसहूर हो गया है । ये सभी चीजें अब यहाँ पर बहुत ज्यादा होती हैं । पुराने रहने वाले भी यह देखकर अब कुछ-कुछ सम्मसते जा रहे हैं । अपनी पुरानी जमीर को छोड़ रहे हैं । परन्तु अब भी सममें ज्यादातर पुरानी जिम्मेदारी ही बिता रहे हैं । इन मैदानों में होकर रेल की चढ़कें तथा जाने जाने के रास्ते भी बहुत बन गये हैं । दुनिया का सबसे बड़ा रेल का मार्ग ट्रांस साइबेरियन यहीं होकर पुखरता है । इस रेल के प्रस्ताव कई बड़ी रेलें भी यहीं होकर जाती हैं—बीसे कैनेडियन पॅसिफिक और ट्रांस ऐशियन । ]

अब हम अन्य देशों की कुछ बातियों का उल्लेख करते हैं ।

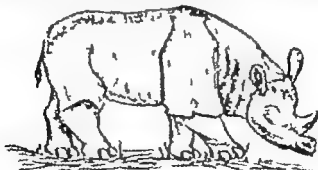
नीपो—नीपो अफ्रीका की प्रमुख बाति है । अफ्रीका महाद्वीप में सुबान एक राज्य है । यहाँ की रहने वाली बाति को हम्बी या नीपो कहते हैं । इन लोगों का रंग कासा, नास नु बराने नाक चपटी होती है । यामा की हड्डियाँ उमरी हुई होती हैं । इनके थोठ मोटे और चौड़े होते हैं । इनका जबड़ा मजबूत और बाहर निकला हुआ होता है । इनकी थोपड़ी रंग और लम्बी होती है । अब इनका बिपना होता है । वे भोज सुबान के पुराने रहने वाले हैं और सपाटार बूमते रहते हैं । यहाँ गरमी के दिनों में बहुत गरमी पड़ती है और गरमी का मौसम बुरा होत ही यहाँ पर बहुत बरसात होती है । छत्र के दिनों में यहाँ पर बहुत कम बरसात होती है । यहाँ की बरती की बनावट चोरस है कहीं-कहीं ऊँचे हिस्से पा गये हैं । यहाँ की जलवायु और बरती की बनावट के कारण बहुत लम्बी और मोटी बास होती है । यहाँ पर बास ही ज्यादा होती है । इन बास के मैदानों के बीच-बीच में कहीं-कहीं पेड़ भी अब पाये हैं । बास बहुत ज्यादा होने की वजह से यहाँ बैटी का काम होने नहीं पाता । इन बास के मैदानों में मांस जाने वाले जानवर घेर, बघेर, चीता इत्यादि बहुत

होते हैं। घास खाने वाले जानवरों में हिरण, खैराक, और घेंसे पाई जाती हैं।



हिरण

घास के मैदानों का होना बेसी व होना प्रायः वार्षिक रूप से घूमने वाले हिरणों और जानवरों को बचाने वाले मौसमों के रूप में बदल देती है। ये मौसम घास बँन, घेंसे, खोई, मरहू, खबर, ऊट, पालतू हैं और इन जानवरों को बचाने के लिए



खैराक

ये मौसम इतर से उबर चुका करते हैं। घास के जानवरों की रक्षा के लिए हमें घोंघों पर उभार होकर घास खाने वाले जानवरों का निवार भी करना पड़ता है। लम्बा निवार करना भी इनके स्वभाव को बड़ा कठोर बना देता है। ये

सोम अपने जानवरों से ही खाने-पीने की चीजें और घर बनाने की चीजें ले लेते हैं। यहाँ पर पूरे साल गरमी रहने की वजह से इन्हें प्यास कपड़ों का अस्तित्व मासूम ही नहीं पड़ती है। इनके जानवर तो खुली हवा में रह सकते हैं। वे लोग पेड़ों की छाल के पतले कपड़े बना लेते हैं और छातों की छाल की बमड़े की खोपड़ियाँ बना कर उन्हें पशियों से ढक लेते हैं। पढ़ाई में से ही बस्ती लेते हैं। जानवरों की हड्डियों से लूटे और काँटे बना लेते हैं। बमड़े की रस्सियों और गन्तों से जोड़े बना लेते हैं। वे लोग खंजीर जानवरों से अपने और अपने जानवरों के बचाव के लिये चारों तरफ काँटों का बेरा लगा देते हैं, जिसमें जानवर रात भर बन्धी तरह रह सकते हैं।

हमका खिलबील छोटा परन्तु कसा हुआ मजबूत होता है। ये लोग बड़े घातकी होते हैं परन्तु सड़ने की ताकत भी रखते हैं। कँटीले पेड़ जैसे मजबूत से वे लोग बौद निकालते हैं। बमड़े का मरक और ज्वाले बना लेते हैं। चीमों के वे लोग बाले बनाते हैं। इन चीमों के बहसे में वे लोग खाने-पीने और पहिने की चीजें ले लेते हैं। प्रायः हम लोगों से कुछ पाँच बाले हिस्सों को काटकर घेरी कर रहे हैं, जिससे नीच बाले हिस्से में बाबल गन्ना, मक्का कपास तम्बाकू के पत्त केसे प्रादि पैदा होते हैं। ऊँचे हिस्से में कच्चा और कोको की पशवार भी हो रही है।

अब वे लोग इस जीवन को बीरे-बीरे छोड़ रहे हैं। परन्तु अब भी वे लोग ब्याबातर इसी हालत में रहते हैं। इन लोगों की कुटी हालत है बाहर के लोग आकर इन पर आस्थाचार कर रहे हैं। अपने बस से इन्हें बचा लेते हैं। कहीं-कहीं तो वे लोग गुलाम कहलाते हैं क्योंकि बाहर वाले आकर इन्हें पकड़ कर ले जाते वे और अपना गुलाम बना लेते हैं। समय-समय पर वे गुलाम बेच भी दिये जाते हैं। अफ्रीका में और अमेरिका में अब भी वही हाल है।

बोड़ी सी अक्ल का खाने पर वे लोग बीरे-बीरे उन्मत्ति करते जा रहे हैं। वे लोग अब एक जगह पर बना कर रहते हैं। राज्यों के कामों में भी हिस्सा लेने लग गये हैं।

बहुत—बहुत भी एक मजबूत जाति है जो अरब और उत्तरी अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान में पाई जाती है। वे लोग बर्ग रेगिस्तानों के रहने वाले हैं। उत्तरी अफ्रीका का सहारा रेगिस्तान दुनिया भर में प्रसिद्ध है। अरब का रेगिस्तान भी बहुत बड़ा है। बहुत लोग इन रेगिस्तानों में भ्रमते रहते हैं। इन रेगिस्तानों में गरमी का मौसम बहुत बड़ा होता है और बड़ी गर्मकर

नरमी पड़ती रहती है। और देशों के लोगों का तो इस गरमी में रहना असम्भव है। परन्तु ये रेगिस्तान के रहने वाले इस गरमी के घाबे होते हैं। बहुत ना मरमम ही "रेगिस्तान के रहने वाले" होता है। दिन में तो यहाँ बहुत गरमी पड़ती है जिससे यहाँ की रेत बहुत गरम हो जाती है, परन्तु रात होते ही यहाँ पर रेत बहुत ठन्दा होना शुरू कर देती है। इसी की वजह से यहाँ जटायों दूधती रहती हैं और महीन बाधु रेत बन जाती है जिससे रेगिस्तान बढ़ता जाता है। रेगिस्तान में रेत ही रेत होती है। चारों तरफ़ निपाह उठाने पर रेत ही रेत गजर जाती है। रेत के बड़े बड़े टील होते हैं। यहाँ पर बड़ी बर्बरक घाँघियाँ बहती हैं, जिनमें घाँघों में जलो में मुह में, सब जगह रेत ही रेत धा जाती है। यहाँ के लोगों की ज़िन्दगी दुर्लभ से बरी होती है। पानी तो यहाँ बिल्कुल होना ही नहीं। बरसात भी यहाँ न क बरबर होती है। पूरा साल सूना जाता है। रेत ही रेत होने और बरसात न होने की वजह से यहाँ सेती नहीं हो सकती है न ही यहाँ पर जानवर पाले जा सकते हैं। ऊट यहाँ का बहाक माना जाता है, जिसके पाँच बरती के पन्दर बँसते नहीं हैं। बरतु लोप ऊँठ पालते हैं जो इनको सचारी का नाम देना है। ऊट को ज्यादा पानी की भी जरूरत नहीं होती है क्योंकि उसके पेट के पन्दर एक पसी होती है उसमें कई दिनों के लिये पानी इकट्ठा रहता है। उस कई दिनों तक तो पानी की जरूरत भी नहीं होती बरबर पानी के भी बह रह सचता है। रेगिस्तान के पन्दर इधर उधर कुछ भाँघियाँ होती हैं। जटियार छोटे-छोटे पेड़, मोटी घास भी यहाँ पर इधर उधर बोड़ी-बोड़ी होती है जिसे बहुत लोपों के ऊँठ चरते हैं। ऊँठों को चराने के लिए ये ही चीजें यहाँ मिलनी हैं।

इन लोपों की प्राकृतिक अवस्था ऐसी है कि ये लाव एक जगह नहीं रह सकते। इनको इधर-उधर घूमना ही पड़ता है। ये लोप ऊँठ के पनावा लम्बर, बेंड़, बकरी भी रखते हैं जो इन जटिली भाँघियों पर ही अपना ज़िन्दगी बिताते हैं। परन्तु बहुत लोपों को अपने जानवरों के चारे के लिये टण्ड के दिनों में रेगिस्तान के एक हिस्से से लेकर दूसरे हिस्से तक घूमना पड़ता है। यहाँ कुछ बोड़ी की भी बाग मिल जाती है यहाँ ये लाव बोड़ दिन के लिये अपना बैग तम्बू लगा देते हैं। इनके तम्बू किरमिष के होने हैं। जब बहुत ज्यादा गरमी पड़ने लग जाती है तब ये लोप अपना तम्बू और बाँड़ा सा सामान ऊँठों पर लादकर किसी पहाड़ की ठण्डी घाटी में चले जाते हैं।

पुछने जमाने से ही इन लोपों का चरना शिकार करना और दुग्धार करना, तथा जानवर चराना है। मांस, दूध, घुघाघ और छत्र इनका मुख्य

लाता है। इनके प्रसादा रेगिस्तान में होता ही कुछ नहीं है। कुछ समय पहिले यहाँ के लोग कुछ समझदार हुए। इन्होंने सिंचाई करके मूंग, चावल, ज्वार, बाजरा कपास, तम्बाकू सुधार। धान, टमाटर, प्याज पैदा करना शुरू कर दिया। इसके प्रसादा इन लोगों ने घर बनाने की कला भी सीख भी है। ये लोग मिट्टी की बीमारों रखी कर लेते हैं। उनके ऊपर ताड़ और खजूर की दाहिरी रखकर, उसके ऊपर ताड़ और खजूर की ही पतियाँ बिछा देते हैं, जिनके ऊपर मिट्टी की कपटी छतें बना देते हैं। इन लोगों की देखा-देखी दूसरे लोग भी लेते ये लोग भी इन बसे हुए बड़बूधों के बेटों से कुछ प्रभाव लेते हैं और उनके बातें हैं। यह लोग रेगिस्तानों से खजूर, रेगिस्तान की लमकीन भूमियों से लमक बटीले पेड़ों से पोंछ और मोहवाग इकट्ठा करके उबा ऊँट, भेड़, बकरियों के ऊन से कम्बल, काशीन, लपटे चमड़े से मरक, डाल व्यासियाँ बनाकर और खजूर के पत्तों से चटाइयाँ और टोकरियाँ उनों से विनास प्याले समूह, कुर्सी बेंच और मिट्टी के बरतन बनाकर ऊँटों पर लाद लेते हैं और एक रेगिस्तान से दूसरे रेगिस्तान तक और एक समुद्र के किनारे से दूसरे समुद्र के किनारे तक इस सामान को बेचते व्यापार करते जाते हैं। इससे इनकी जिन्दगी थोड़ी सी बचती है। अपनी इन चीजों के बदले में ये लोग अपने तम्बुओं के लिए किर्चमिश, रस्सियाँ और लाने-लीने का सामान कम कर लेते हैं।

बड़बूध लोगों का जीवनशैली अत्यन्त और ताकतवर होता है। छुप और गरमी की बजह से इनका रंग काला पड़ जाता है। ये लोग बड़े सहनशील होते हैं। ये लोग व्यापार रत के समय अपनी यात्रा तारों के सहारे करते हैं जिससे ये लोग तारों के बारे में बहुत जानने लग जाते हैं। ये लोग दिन भर जाती अपने तम्बुओं में पड़े रहते हैं, जिससे ये लोग अच्छे विचारवान और दार्शनिक हो गये हैं। गणित, रसायन, धर्म यन्त्र के बारे में अच्छे ज्ञाता भी हैं। कुछ समय-समय पर थोड़ी भी करते रहते हैं और बाका भी जानते रहते हैं। इसलिए ये स्वभाव से थोर और बाकू होते हैं। वैसे ये लोग बेटी भी करने लग जाते हैं। अम्बदा पहिले जानवर व्यादा पासते थे। ये लोग लड़ाई लड़ना भी शुरू जानते हैं। दूसरे पड़ीसी देसों पर हमला भी कर लेते हैं। दुनिया के दूसरे रेगिस्तानों में जगिन बहुत होते हैं जिसकी वजह बाहर के किसी भी लोग इन रेगिस्तानों के बारे में बिचस्पसी लेने जाते हैं। इससे रेगिस्तानों की हानत बहुत कुछ घुबर गई है। रेगिस्तानों में बड़बूध लोगों की हानत बहुत बढ़ती जा रही है।

देपी है बड़बूधों की जिन्दगी, जो दुनिया की और जातियों से अलग है।

रेंगितानी लोगों को परेशानियाँ तो बहुत पाती हैं। प्रकृति के बस में पड़ कर वे लोग कुछ भी उपति नहीं कर पाते।

रैड इंडियन—यह जाति अमेरिका में अमेजन नदी की बाटी में पाई जाती है। यह जाति बहुत ही जंगली है और करीब-करीब जंगी रहती है। यह जाति व्यापार करने वालों में रहती है जो कि अमेजन नदी की बाटी में जाते हुए हैं। इनका मुख्य काम मछली मारना बिकार करना और जंगलों की परावार इकट्ठी करना है। वे लोग अमेरिका के बहुत पुराने समय से ही निवासी हैं। इनका नाम रैड इंडियन कोलम्बस नाम के एक यूरोप के रहने वाले ने रखा था। कोलम्बस सन १४९२ में भारत को खोजने निकला था, उसे भारत का पता नहीं था। वह सीधा समुद्र ही समुद्र बसा घाया और अमेरिका पहुंच गया। अमेरिका को उसने भारत समझा इसलिए वहाँ के रहने वालों को इंडियन के नाम से पुकारने लगा।

इन लोगों का रंग भाल है इसलिए बाह में लोगों ने इनका नाम भाल भारतीय रक्त दिया और यह रैड इंडियन कहलाने लगे।

यहाँ का जलवायु और हावा ऐसी है कि लोगों को धूमते रहना पड़ता है। इन्हें जंगलों में इधर उधर घूमकर जंगली पेड़ों और झाड़ियों से फल-फूस इकट्ठा करके अपना खाना लेना पड़ता है। वे लोग पत्तियों और जड़ों को भी इकट्ठा करते हैं। वे लोग जानवरों और बिड़ियों का शिकार करते हैं, और नदियों से मछली मारते हैं। इस हिस्से में व्यापार करने की बगल से इन्हें व्यापार कपड़ों की जरूरत नहीं होती है, केवल अपने शरीर के हिस्सों को ढँकने के लिये पेड़ों की छालों से कपड़े बना लेते हैं। यहाँ की जमीन बहुत बसबसी है इसलिए वे लोग जमीन पर घर नहीं बनाते हैं, बल्कि पेड़ों के ऊपर ही अपना घर बनाते हैं। जिस तरह जानवरों और बिड़ियों का घर होता है उसी तरह आदिमियों का घर बना होता है। अपने घर बनाने की चीजें वे लोग जंगलों से ही लेते हैं। वे लोग एक पेड़ के तिरों से बहुत दूर के पेड़ तक लम्बे लट्ठें फँसा देते हैं। ये लट्ठें १० से लेकर २०० फीट तक लम्बे होते हैं। उनके नीचे भी लम्बे लट्ठों के ही लम्बे बाड़ सेते हैं। फिर लट्ठों को औरकर सीधा बना लेते हैं, फिर उन पर बाँस और पत्ते छाँद देते हैं। इस तरह उनका घर तैयार हो जाता है। ऐसे घर में १० यावसी घर बड़ी आसानी से रह सकते हैं। इन घरों में ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बना लेते हैं और जानवरों से बचने के लिए घरों में मकड़ी के दरवाजे और तिकड़ी लगा देते हैं। पेड़ों की छालों से टस्सियाँ बना लेते हैं और लकड़ियाँ के टुकड़ों

से बंटी बना सेतो है। भट्ठों से ही एक घर से दूसरे घर जाने के लिये पुन बना सेतो है। इन्हीं जंगली पेड़ों की कठोर और मजबूत लकड़ियों से ये लोग हथियार बना सेतो हैं। पेड़ों को काटने के लिए मासे और डंडे भी इन्हीं पेड़ों से मिल जाते हैं। यहाँ जंगली पेड़ों से ही करोड़-करोड़ सभी चीजें बनाई जाती हैं। थोटे-मोटे तनों को ये लोग बिस्कुम खोसता कर सेतो हैं, उन पर आमचरों की खास बँटकर डोल और डण्ड बनाते हैं। इसी तरह बड़े-बड़े और मोटे-मोटे तनों को बीच में से जलाकर मद्धे कर सेतो हैं जो गरिबों में चलने के लिए छोटी-साटी मार्गें बन जाती हैं। मध्य तथा दूसरे पीलों की खोसनी मलियों से ये लोग बमूक बना सेतो हैं। जिससे तीर बारे जा सकते हैं। यहाँ पर ताड़ नाम का एक पेड़ होता है। उसकी लकड़ी के व्यासे बालियाँ कठोरी और यिलास बनाते हैं। माजकम के व्यापारी लोगों ने यहाँ प्राकर इन लोगों को कुछ नई बातें सिखा दी हैं। वे लोग रबर, सिन्कोना मैनीप्राक ताड़ का तेल, कटापाका, पोंच और हाथी के दाँत इकट्ठा करना सीख गये हैं। इनके बचसे में ये लोग खाने-पीने की चीजें और कपड़े ले सेतो हैं।

यहाँ पर बहुत से बाहर के लोग आकर रहने लग गये हैं। जहाँ तक इन लोगों से हो सका है वहाँ तक इन्होंने जंगलों को साफ करके शेती करना शुरू कर दिया है। शेती में ये लोग बाजरा यथा गारियल केला चाबूदाना और तरह-तरह के मसाले जैसे लौन मिर्च, बाजबीनी आदिभी बायफल, तेलपात पैदा करते हैं। इन्हीं लोगों की देखा-देखी रेड इन्डियन भी कहीं-कहीं जंगलों को जला कर जोड़ा बहुत खाने के लिए पैदा करने लगे हैं। इन लोगों का हास यह है कि जब वो तीन साल तक जयातार शेती करते के बाद वहाँ की जमीन पैदा करने के लिए कमबोर पड़ जाती है तब दूसरी जगह जंगल साफ करके या पेड़ों को जला कर शेती करने लग पड़ते हैं।

परन्तु अब रेड इन्डियन लोग बहुत समझदार होते जा रहे हैं। बीरे-बीरे इनमें बुद्धि घाटी जा रही है और अपनी पहली हालत को छोड़ते जा रहे हैं। अब इन्होंने बहुत सम्रति कर ली है।

पिम्मी—मफरीका में कौनों नाम की बहुत बड़ी नदी है जिसकी बाटी में बहुत बंगाली लोग रहते हैं। इन लोगों को पिम्मी कहते हैं। ये लोग बीने भी कहलाते हैं क्योंकि इनका कप बहुत ही छोटा होता है। बेखने में ही ये लोग बीने सबरो हैं। यह भी बुनिया की एक मनीव जाति है जिसके रंग-रंग और दूसरी बंदनी जातियों से भी मजबूत है। यहाँ पर जम्स जलवायु पायी जाती है जो प्रायमियों को घाये उन्नति नहीं करनी देती। सब्ज जलवायु मन के लिए

घोर शरीर के लिए बहुत ही कुफ़लान पहुँचाती है। कई हिस्सों में तो तरह-तरह की बीमारियाँ फैला देती है। काँचों नदी की घाटी में ही टिसाटिरी नाम की मक्की होती है जो नीब की बीमारी पैदा कर देती है। इसके घसना मच्छरों की बजह से यहाँ के रहने वालों को मसैरिया घोर पीसा कुत्तार हो जाता है। इस तरह घाबसी तन्मुस्त में रहकर बीमार ही पड़ा रहता है। यहाँ के मारमी जंगली है इसलिये इनकी ज़रूरतें भी कम हैं, जो यहाँ पर पूरी हो जाती है। ये लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। ये अधिकतर नंगे ही रहते हैं। कभी-कभी कपड़ों के कपड़े पहिन सेते हैं। इनका काम भी मछली पकड़ना और धिंकार खेती है।

ये लोग बहुत घने जंगलों में रहते हैं जहाँ धिंकार खेती के लिए जानवर मृत मिल जाते हैं। नदियों से बहुत मछलियाँ मिल जाती हैं। इन जंगलों में व्याघ्र, भालू, हरियाई घोड़े, बहरीनी मछलियाँ मकड़, कैंडू, बड़ियास, पानी के साँप नदियों में मिलते हैं। इनके घसना धिंकार के लिए खेर, नीसे, हावी, बेंदा, जंगली गुम्बर, बिराफ़ घादि मिल जाते हैं। पेड़ों के ऊपर भी कुछ जानवर मिलते हैं जैसे घुड़ के सहारे मटकनै बाना बग्गर, कई तरह की रंग-बिरंगी बड़ियास, बिमगाबड़, कीड़े मकड़ी, छिपकली, विग्विट। इस तरह पशुओं को बहुत से जानवर धिंकार करने के लिए मिल जाते हैं। पिम्मी जहाँ के बहुत पुराने लोग हैं। ये लोग जंगल के अन्दर दब-उपर छिपे हुये रहते हैं। यहाँ की आबादी भी बहुत कम है।

पिम्मी लोग बोने तो होते ही हैं, इनका बीम-बीम भी बहुत छोटा होता है। इनका रंग काला होता है। इन्हें मजबूर होकर प्रकृति के समीप रहना पड़ता है। ये लोग अपने मन से जंगली नदी बना रहना चाहते, परन्तु पर्यावरण के अनुकूल इन्हें रहना पड़ता है। भयंकर गरमी और लगातार वर्षा होने और घने जंगलों के होने के कारण ये ये लोग पिछड़े रह गये हैं। यहाँ पर रहने वाले जनसंख्या कि सूरज की रोशनी पेड़ों से छनकर बरती पर जाती ही नहीं है। पेड़ों की टहनियाँ एक दूसरे से लिपटी हुई रहती हैं।

पुराने समय में इन लोगों का दूसरे जंगलों के लोगों के साथ मिलना जुलना तो बहुत बुरिफ़्त ही था, जिससे ये लोग पिछड़े ही रह गये। ये लोग अब भी घने जंगलों से चारों तरफ़ घिरे हुए हैं जिससे बिस्त्रुत घनग बने हो जाते हैं। हमसे ये लोग सम्बन्ध में तो बहुत पिछड़े ही रह गये हैं।

ये लोग भू-श्रेष्ठ और विद्याओं पर विश्वास करते हैं और उनकी देवताओं की तरह पूजा करते हैं। यदि इन पर कोई लकड़ या पड़ता है तो उसका कारण ये लोग भू-श्रेष्ठ को समझते हैं। फिर जानू-दोने भू-हा जाने



से फटि बना सेरो है। लट्ठों से ही एक घर से दूसरे घर जाने के लिये पुन बना सेते हैं। इन्हीं खंगसी पेड़ों की कठार और मजबूत लकड़ियों से ये सोम हथियार बना सेरो हैं। पेड़ों को काटने के लिए चासे और बड़े मो इन्हीं पेड़ों से मिल जाते हैं। यहाँ जंगली पेड़ों से ही करोब-करीब सभी चीजें बनाई जाती हैं। मोटे-मोटे तनों का ये लोग विस्कुम खोलना कर सेरो है, उन पर जानवरों की घात मँडकर कोम और कछ बनाते हैं। इसी तरह बड़े-बड़े और मोटे-मोटे तनों को बीच में से खलाकर गड़के कर सेरो हैं जो गरियों में बसने के लिए छोटी-छाटी नावें बन जाती हैं। मछल तथा दूसरे पौधों की खोजसी गरियों से ये सोम बगुन बना सेरो हैं जिनसे तीर घारे जा सकते हैं। यहाँ पर ठाढ़ नाम का एक पेड़ होता है। उसकी लकड़ी के प्याले बालियाँ कठोरे और बिसास बनाते हैं। धातुकर्म के व्यापारी लोगों ने यहाँ आकर इन लोगों को कुछ नई बातें सिखा दी हैं। ये लोग रबर, चिन्कोना, मैनीफ्राक ठाढ़ का तेल बटपायाँ पोंच और हाथी के दाँत इकट्ठा करना सीख गये हैं। इनके बरतने में ये सोम धाने-बीने की चीजें और कपड़े से सेरो हैं।

यहाँ पर बहुत से बाहर के लोग आकर रहने लग गये हैं। जहाँ तक इन लोगों से हो सका है वहाँ तक इन्होंने खंजलों को साफ करके सेती करना शुरू कर दिया है। छेती में ये सोम चावल मछा गारियन केला साबुसावा और तरह-तरह के बसाल जैसे सब्जियाँ मिर्च धानचीनी आदिची बामफल, लेमपाठ पैदा करते हैं। इन्हीं लोगों की बेला-बेबी रैड इंडियन भी कहीं-कहीं खंजलों को बना कर बोड़ा बहुत जाने के लिए पैदा करने लगे हैं। इन लोगों का हाल यह है कि जब वो तीन साल तक जगातार छेती करते के बाद वहाँ की खमीर पैदा करने के लिए कमजोर पड़ जाती है तब दूसरे जगह खंगस साफ करके या पेड़ों को बना कर छेती करने लग पड़ते हैं।

परन्तु धन रैड इंडियन लोग बहुत सम्भवतः होते जा रहे हैं। बीरे-बीरे इनमें बुझि जाती जा रही है और अपनी पहली हालत को खोदते जा रहे हैं। धन इन्होंने बहुत उपरति कर ली है।

पिम्मी—मछरोका में कौनों नाम की बहुत बड़ी नदी है जिसकी बाटी में बहुत खंगसी सोम रहते हैं। इन लोगों को पिम्मी कहते हैं। ये सोम बीने भी कहलाते हैं क्योंकि इनका कब बहुत ही छोटा होता है। बेबने में ही ये सोम बीने सबरो हैं। यह भी बुनिया की एक मजबूत जाति है, जिसके रंग-रंग और दूसरी खंजली जातियों से भी भिन्न है। यहाँ पर उष्ण जलवायु पायी जाती है जो आदिमियों को आने उत्पत्ति नहीं करने देती। उष्ण जलवायु मन के लिए

घोर शरीर के लिए बहुत ही सुसज्जित पहुँचाती है। कई हिस्सों में तो तरह-तरह की बीमारियाँ फैला देती है। काँचों गली की बाटी में ही टिसाटिसी नाम की मक्खनी होती है जो नीबू की बीमारी पैदा कर देती है। इसके घसावा मक्खनों की बगल से यहाँ के रहने वालों को भरेरिया घोर पीला बुखार हो जाता है। इस तरह घावमी लग्नुस्म न रहकर बीमार ही पड़ा रहता है। यहाँ के घावमी बगली हैं इसलिये इनकी बकरों भी कम हैं जो यहाँ पर घुरी हो जाती हैं। य लोम बहुत पिछड़े हुए हैं। ये अधिकतर नंगे ही रहते हैं। कसी-कसी काम के कपड़े पहिन केते हैं। इनका काम भी कपसी पकड़ना और चिकार बेसना है।

ये लोम बहुत बने अँधलों में रहते हैं जहाँ चिकार बेसने के लिए जानवर कुछ मिल जाते हैं। नदियों से बहुत मछलियाँ मिल जाती हैं। इन अँधलों में ज्यादातर मगर बरिमाई बोड़े जहूँसी मछलियाँ, मंडक, केंकड़े बड़ियास, पानी के साँप नदियों में मिलते हैं। इनके घसावा चिकार के लिए खेर, बीते, हाथी गेंडा, अँधमी सुगर, बिछक, घाबि मिल जाता है। पेड़ों के ऊपर भी कुछ जानवर बिसते हैं जैसे घूँस के सहारे मटकने वाला बन्दर, कई तरह की रंग-बिरंगी चिड़ियाएँ, चिमगादड़, लीके मकोड़े, छिपकली, पिरमिट। इस तरह पिंगियों को बहुत से जानवर चिकार करने के लिए मिल जाते हैं। पिम्पी यहाँ के बहुत पुराने लोम है। ये लोम बस के धन्वर इमर-जमर छिन्दे हुये रहते हैं। यहाँ की आबादी भी बहुत कम है।

पिम्पी लोम बीने तो हाथे ही हैं, इनका बीस-बीस भी बहुत छोटा होता है। इनका रंग काला होता है। इन्हें मकदूर होकर ब्रह्मि के समीप रहना पड़ता है। ये लोम अपने मन से अँधमी नहीं बना रहना चाहते, परन्तु पर्यावरण के अनुकूल इन्हें रहना पड़ता है। भयंकर गरमी और लबातार वर्षा होने और बने अँधलों के होने के कारण से ये लोम पिछड़े रह गये हैं। यहाँ पर रहने बने अँधल हैं कि सूरज की रोशनी पेड़ों से छनकर बरछी पर आती ही नहीं है। पेड़ों की टहनियाँ एक दूसरे से लिपटी हुई रहती हैं।

पुराने समय में इन लोमों का दूसरे देशों के लोगों के साथ मिलना पुनता तो बहुत मुश्किल ही था जिससे ये लोम पिछड़े ही रह गये। ये लोम अब भी बने अँधलों से चारों तरफ घिरे हुए हैं जिससे बिस्तुष अलम से हो जाते हैं। इससे ये लोम सम्मता में तो बहुत पिछले ही रह गये हैं।

ये लोम भूत-भ्रैठ और पिछाची पर विश्वास करते हैं और उनकी देवताओं की तरह पूजा करते हैं। यदि इन पर कोई सफ़्ट या पड़ता है तो उसका कारण ये लोम भूत-भ्रैठ को समझते हैं। फिर जाहू-टोने शुरू हो जाते

हैं। सोय बाढ़, दोनों पर बहुत विस्वास करते हैं। जो लोग बाढ़ और दोनों की बिधा में कतुर होरो हैं उनसे ये सोय बहुत डरते हैं।

ये सोय प्रायमी ना भी धिक्कार करते हैं। प्रायमी के धिर का धिक्कार ये सोय बहुत करते हैं। धिक्कार ये भोग ज्यादातर बुझे हुए तीरों से करते हैं। ये लोग प्रायमी को खा जाते हैं ज्यादातर ये सोय दूसरे देयों से घाये हुए लोगों को खाते हैं। इन्हें प्रायमी का मांस खाना अच्छा लगता है। बेटी के बारे में ये सोय कुछ जानते ही नहीं हैं न ही ये सोय पालतू जानवरों के बारे में जानते हैं। बस इन्हें तो भारती के लिये जानवर मितना चाहिये या प्रायमी मिलना चाहिये। धिक्कार करने में ये लोग बहुत होशियार होरो हैं।

समोयबीज—ये सोय भी एस्किमों लोगों की तरह अपनी बिल्वयो बिजाने हैं। एस्किमों उत्तरी अमेरिका के टुन्गा प्रदेश की जाति है जब कि समोयबीज एशिया के टुन्गा की जाति है। समोयबीज के घनाबा इस प्रदेश में प्रोस्टाक और वाकुत नाम की जातियाँ भी पाई जाती हैं। इस प्रदेश में तीन बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं सोबी, यनीची और नीना। नदियों के घनाबा इस देश में बहुत बलवत और मोर्से हैं। यह प्रदेश साल भर तक बरफ से ढका रहता है। अहाँ-तहाँ सिवार और मिचल को छोड़कर और कुछ पैदा नहीं होता है। ये जातियाँ बहुत पुरानी हैं और नदियों के किनारे बूमती रहती हैं।

इन जातियों का मुख्य काम धिक्कार करना ही है। ये लोग बहुत मछली मारते हैं। बारहसिचा इनके बड़े काम का जानवर है। वर्ष में सबारी के लिये कपड़ों और भोजन के काम जाता है। इसके कुर धिरे हुए होते हैं जो वर्ष पर फिसलते नहीं हैं। इन जातियों को भोजन के लिए मांस कपड़ों के लिये खान, डोरे के लिये घाँटें खुटी के लिये सीप और धीबार के लिए हड्डियाँ मिलती हैं। इन जातियों के लोग एक जगह से दूसरी जगह बूमते रहते हैं। जब एक जगह काय खत्म हो जाता है तब ये दूसरी जगह के लिये बस बैठे हैं।

इनके सामान में सूखी सिवार, खान के बने बिस्तर बटाइयाँ कुछ बर्तन, हथियार और कलका डेरा मुख्य होता है। इनका डेरा समोवर के पैर की छल्लों से या खालों से बना होता है जो कई जदों में बाँध दिया जाता है। भुपाँ निकालने के लिये बरगें एक सेव होता है। बाड़े के बिलों में ये भोज नीचे की ओर घा जाते हैं। सामान डोने के लिये इनके पास स्लेज गाड़ियाँ होती हैं जो बारहसिचा द्वारा खींची जाती हैं।

इन लोगों का मुख्य भोजन मांस, मछली और दूध है। पत्तों में ताजा मांस खाते हैं बाड़े में सूखा। बेटी तो बिस्कुल होती ही नहीं है क्योंकि हमेशा

बर्फ पकती रहती है। इन लोगों को सबद्वारन ऐसी ही जिनसी बितानी पकती है। वे खोल मछलियों की खास घीर नेल देव देते हैं। उसके बरतने में व्यापारियों से बहरत का सामान जैसे घफफन बाय, शरारत से लेते हैं। इन लोगों का जीवन करीब-करीब उत्तरी अमेरिका के एस्किमों लोगों से मिलता जुलता सा होता है।

लैप्स और फिन्स—यूरोप में लैप्स और फिन्स नाम के दो देश हैं। लैप्स में एक जाति पाई जाती है जो लैप्स कहलाती है। फिन्स में भी एक जाति पाई जाती है जो फिन्स कहलाती है। ये जातियाँ बहुत पुरानी हैं और पुराने जमाने में वे खोल बूमते रहते थे। कुछ कुछ इनका जीवन एस्किमों जैसा ही था। वे लोग भी चिकार करते थे और बहली मारते रहते थे। परन्तु अब इनकी जिनसी बहुत बरत गई है।

आवकम इन लोगों ने बेटी करना शुरू कर दिया है। बेटी से मोटे-मोटे घनाब जैसे कई घीर पाई जाकर लेते हैं। बेटी करने का डंभ इन लोगों को आ गया है। इन देशों में बहुत से जयल बने हुए हैं जिनसे वे खोल लकड़ियाँ काट लेते हैं। लकड़ियों काटने का हथियार भी बना लेते हैं। वे खोल बहुत समझदार हो गये हैं। पहिले की सी हालत इनकी नहीं रही है। यहाँ पर बहुत ठेक भदियाँ बहती हैं जिनसे वे खोल पानी से बिबली निकाल लेते हैं। उस बिबली से कायम बनाने के कारखाने बसा लेते हैं। कागज बनाने के तरीके भी वे खोल आते हैं।

वे लोग जानवर भी पालना जानते हैं। बालपास जहाँ पर भी बाघ-बाघ होता है वहाँ जानवर पालकर उनकी बरत लेते हैं। इनके जानवरों में बाघ बिल, भेड़ बकरी सुपर होत हैं। इनका दूध पीते हैं। दूध के घनाबा मांस ऊन और चमड़ा भी इन लोगों को मिलता है, जिसे काय वे लाते हैं। इनके घनाबा यहाँ की हालत दुष्टा बेटी बड़ी है। बेटी भी यहाँ होती है। घान भी होती है, घीर खनिज भी यहाँ मिल जाते हैं। फिन्स में कुछ मोहू पाया जाता है जो पहाड़ बनाने के काम आता है। इस तरह हम देखते हैं कि इन लोगों की हालत बुरी जलसी जातियों से अच्छी है। इसी बातों के कारण से लैप्स और फिन्स जाति के लोग एस्किमों से अधिक समर्थि कर गये हैं।

लामा—भारत के उत्तर में तिब्बत नाम का एक छोटा सा देश है जिसमें लामा नाम की जाति रहती है। वे लोग पहिले बहुत जलसी के पर धन के खोल समर्थि नहीं रहे हैं क्योंकि भारत और चीन जैसे देश इनके पास हैं। घनाबा घनर इस पर भी पड़ा। जहाँ नहीं का जीसय बहुत छोटा परन्तु बरत

होता है। यहाँ आका बहुत ज्यादा पड़ता है। तिब्बत का पठार करीब-करीब पूरा ही सूखा रहता है। सामा जाति के लोगों का मुख्य काम जानवर चराना है। ये लोग माक भेड़ और बकरियाँ चराते हैं। माक एक बोन होता है जो यहाँ बोझ डोने के काम में आता है। भेड़, बकरियों और माक से ऊन और मुलायम बाल मिलते हैं। तिब्बत का ऊपरी हिस्सा तो पूरा जगाड़ है वहाँ घाबाही भी बहुत कम है, परन्तु नीचे की तरफ घासभी रहते हैं। यहाँ पर जानवर पालने के प्रताप छेती भी होती है। घाबाही भी ऊपर की बजाव ज्यादा है। यहाँ घानाज तो पैदा होता ही है। बाँस भी पहा की जाती है। इनके प्रताप आड़ू, कूबानी घासि फल भी होते हैं।

माक यहाँ का मुख्य और काम का जानवर है जैसा कि दुग्धा में बाण्ड सिंघा और रैगिरतान में ऊट होता है। इसके बड़े-बड़े ऊनी बाल होते हैं, जिससे वह कड़ी से कड़ी सर्दियों भी सहन कर लेता है। जगमग चार भीत की ऊँचाई तक बढ़ जाता है। बोझी ची हरियानी पर ही अपनी पुंवर कर लेता है, इसका मांस और दूध खाने पीने के काम में आता है। दूध का मक्खन



माक

भी बनता है और वह जो की लपसी या चाय में मिलाया जाता है। काम यहाँ पर अच्छी नहीं होती। माक की बाल और हड्डियों से कपड़े डेरे, बर्तन भी बनते हैं। इसका पैर बहुत पक्का होता है। इसलिए बर्फ सेब नहीं या ऊँची-नीची जमीन पर उसके बिलों का डर नहीं रहता। माक बोझ भी डोता है और हल भी खेता है। सामा लोग इसके गोबर का ईंधन बनाते हैं जो खाना पकाने के काम आता है। सामा लोग खासी बहुत कम करते हैं जिससे घाबाही कम बढ़ती है। ये लोग बीछ बर्म को मानने वाले हैं और अबमान बुद्ध की पूजा करते हैं। भयमान बुद्ध को ये लोग देवता मानते हैं। नामा बीछ बर्म को मानने वाले होते हैं।

बेहा—भारत के दक्षिण में एक छोटा सा द्वीप है जो चारों तरफ समुद्र से घिरा हुआ है, उसे लंका कहते हैं। लंका में एक जाति पायी जाती है जो बेहा कहलाती है। ये लोग बहुत भयभी होते हैं और लंका के बने जंगलों में रहते हैं। इस जाति के लोग करीब-करीब सभी बने रहते हैं। कभी-कभी पेड़ों की

ज्ञान पहिने सेते हैं। इन लोगों का मुख्य काम मछली पारना, छिपार करना और जंगलों से जो चीजें मिलती हैं उनका इकट्ठा करना होता है। जंगलों से ये लोप लकड़ी काटते हैं। उस लकड़ी से भांसे उभरे, कुम्हारियाँ बनाते हैं। मोटे मोटे तनों को लोखना करने डफ भी बनाते हैं। ये लोग जंगलों से खर, छिन्कोना, टाड़ का तेल हाथीदाँत इकट्ठा कर लेते हैं। यहाँ पर बेटी भी बुरा हो गई है जिसमें जायस यन्ना नारियल केसा, साबुदाना और तरह तरह के चम मसाले लीप मिर्च, दालचीनी जाबिओ जायफल, लेकपात भी पैदा होते हैं।

बहुधा—इस जाति के लोग उठने खंयसी नहीं हैं। इस जाति के लोग झफरीका भी जंगलों नदी के किनारे पर रहने वाले हैं। कपड़े नहीं के किनारे पर रहने वालों को ही बहुधा कहते हैं। ये तो ये लोग खंयसी ही हैं पर उठने नहीं बिठने पियमी हैं। ये लोग पुछने तरीकों से बेटी करते हैं। बेटी में जायस न्कार और जाबरा पैदा करते हैं। बेटी के बनाना यहाँ के लोग छिपार भी करते हैं। इस जाति के लोग एक जगह टिक कर बेटी नहीं करते बल्कि नई जमीनों को साफ करके एक जगह से दूसरी जगह बेटी किया करते हैं। इन तरह ये लोग एक जगह बस कर बेटी नहीं करते। इस तरह की बेटी को सरकती बेटी कहते हैं।

ज्याक और पुनन—पूर्वी द्वीपसमूह में बोनियो नाम का द्वीप सबसे बड़ा है। बोनियो द्वीप के रहने वाले ही ज्याक और पुनन कहलाते हैं। ये लोग जंगली तो हैं ही परन्तु धार्मिक नहीं। इनकी भी जिम्बवी बहुधा लोगों की तरह बीठती है। यहाँ पर कम बने जयल पाये जाते हैं। यहाँ के लोग भी पुछने तरीकों से बेटी करते हैं। जायस, न्कार, जाबरा यहाँ की पैदावार है। बेटी करने का भी तरीका बहुधा जाति जैसा ही है। ये लोग भी एक जगह बसकर बेटी नहीं करते हैं। सरकती बेटी ही यहाँ की जाती है।

तुरैय—झफरीका के सहारा रेगिस्तान में एक और जाति रहती है उसे तुरैय कहते हैं। यहाँ की बहुत परमी पड़ती है। बड़ी तेज धार्मिक जाती रहती हैं। परमी के दिनों में सहारा के रेगिस्तान में रहना मुश्किल हो जाता है। यह जाति भी खंयसी जाति है। बरखूणों की तरह इनका जीवन प्राकृतिक समस्या में व्यतीत होता है। बजारों की तरह ये लोग ऊटों के कारियों को लेकर एक जगह से दूसरी जगह बूमते रहते हैं एक जगह बसकर तो यह लोग रहने ही नहीं। ऊट इनका मुख्य जानवर है। बरघात यहाँ बिल्कुल होती ही नहीं है, जिससे ज्यादा भी पैदा नहीं होता। माँघ बूच, पुधराय बड़ूर इनका

मुख्य काम है। शिकार करना, जानवर बचाना, लूटपाट करना आदि इनके प्रमुख कार्य हैं।

परन्तु बंदरूओं और इनमें एक फर्क है कि तुरैग लोग सीने और हीरे की चीजों में काम करते हैं।

बुशमन और होटेंटोट—अफ्रीका में सहारा रेगिस्तान के प्रताप एक रेगिस्तान और है जो कामाहारी का रेगिस्तान कहलाता है। इस रेगिस्तान में जो जातिवाँ रहती हैं। बशेमन और होटेंटोट। वे विस्मय बर्णनी जातिवाँ हैं। इनकी जिन्दगी भी बंदरूओं की तरह है। शिकार करना, लूटपाट करना जानवर पालना इनका भी काम है। ऊँट ही इनके बहुत नाम का जानवर है। टीमबोली में वे लोग मजबूत और ताकतवर होते हैं। वे लोग कामाहारी रेगिस्तान में बहुत घुमने समय से रहते हैं। इधर उधर घूमते रहते हैं। शिकार तो वेमते हैं ही परन्तु वे लोव हीरे खोजे, और लोव की चीजों में भी काम करते हैं। कामाहारी में हीरे, सोने और लोव की बहुत सी चीजें हैं।

कुर्द—एशिया में कुर्दिस्तान नाम का देश है जहाँ के लोगों को कुर्द कहा जाता है। इन लोगों का जीवन भी जानवरों की तरह होता है। एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। भेड़ें पालना ही इन लोगों का मुख्य काम है। कुछ घासभी खेती भी करते हैं। परन्तु व्यापार लोव जानवर बचाने का ही काम करते हैं। भेड़ों के साथ ही साथ वे लोग बकरियाँ भी बचाते हैं। इन लोगों की जिन्दगी घूमने में ही जाती है। अब एक जगह की बास और बाघ खरम हो जाता है तब वे लोग उस जगह को छोड़ देते हैं और दूसरी जगह चले जाते हैं।

व्याकी—दक्षिणी अमेरिकन महाद्वीप में पम्पा नाम का एक प्रदेश है, जिसमें व्याकी नाम की जाति रहती है। वे लोग पम्पा प्रदेश के बरबाहे हैं, जो जहाँ के बागीरबारों के जहाँ मौकरी करते हैं। इन लोगों का काम भेड़ों और बोरों को बराना है। इन बोरों और भेड़ों की बरबाही में इन लोगों को हर दोब २५ सेर मांस प्रति व्यक्ति को मिलता है। व्याकी लोगों के घोड़े इनके भातियों के घर के पीछे होते हैं। हर एक व्याकी के पास बौड़ा होता है जिस पर बैठकर वह भेड़ों की देखभाल किया करता है। इसी की वजह से वे लोग दुनिया भर के मन्दिर मसजद बुरुसबार माने जाते हैं। इससे व्यावा मन्त्रे बुरुसबार कोई अन्य जाति नहीं है।

नाया—यह जाति भारत में एक हिस्से में पाई जाती है। वे लोग पहिले बहुत बर्णनी वे, बर्णनी जानवरों का मांस खाते थे। बर्णनी जानवरों की ही

यहाँ धार्मिकों तक को मार कर खा जाते थे। मरे रहते थे और सिर्फ एक संयोगी बाँधते थे। जालबन्धों को मारने के लिए अपने साथ जाते रहते थे। जाना बचाने में ये लोग बहुत होशियार थे। परन्तु अब इन लोगों की हालत सुबखी हो रही है। भारत सरकार इन्हें मुबारके का बहुत उपाय कर रही है। जबलों की साफ करके अब उन्हें खेती के योग्य बनाया जा रहा है।

बंभारे—यह जाति भी भारत में पाई जाती है। परन्तु ये लोग बहुत थोड़े हैं। कहीं-कहीं पाये जाते हैं। इनकी शिन्दवी भजातार धूमने में जाती है। ये लोग बिड़ हकरी नाम ज्यादातर पासते हैं। जहाँ इन्हें चाय और चाय मिलती है, वहीं ये लोग अपना दिन बिताने बैठे हैं। इनका सामान बहुत थोड़ा होता है। कुब, गहूरा और बाजरा ये इनका खाना है। अपने जामबतों को बपते हुए देस-अर में घूमते रहते हैं। साथ में इनके सामान से बरी माड़ी होती है। पूरा कबीला साथ ही साथ निकसता है।

इन बीजों की एक घीर किस्म होती है वह लोहपीटा कहलाती है। इनको बोई से मड़ी लकड़ी की बनी पाड़ी होती है जो इनका घर होती है। उड़ी में खाने बीने, रहने सहने का सामान होता है, यहाँ तक कि माटा पीमने की बड़ी घीर सोने के लिए साट भी इसी छोटी सी पाड़ियों पर रखी रहती है। बुरा कुटुम्ब इसी पाड़ी पर बसता है। ये लोग किसी शहर या कस्बे के निकट ठेक ठाक देते हैं। इनका मुख्य काम काहे की बकरी चोरे बगाना है, जो रलीई के पत्र भाँटी हैं। इन बीजों की ये लोग बाजार या बरों में बेच देते हैं और उनके बरने खाने का सामान कपड़े धरख भादि खरीद लेते हैं। योई दिन बाह में लोग दुधरे शहर या कस्बे की खाना हो जाते हैं।

नव प्रीत कंदर—ये लोग भी ब्रह्म के बासी जाति में से हैं। एक जगह से दूसरी जगह ब्रह्म के चले हैं। इनमें जो घर के धारणी पाये जाते हैं—पहले ही धारणी करतब ब्रह्म कर पैठ पालने वाले। ये लोग धारणी की करतब प्रीत बासी के ऊपर घर-घर के करतब ब्रह्म जाते हैं। उनके ब्रह्म में रोटी, धातु, कपड़ा मीन जाते हैं। ये लोग मेहनत करके जाते हैं परन्तु एक जगह ब्रह्म कर नहीं जाते। करतबों की ब्रह्म के लिए पाँच मीन प्रीत ब्रह्म-ब्रह्म में ब्रह्म जाते हैं। दूसरे घर के धारणी के ही जो भी ब्रह्म मीन कर ब्रह्म जाते हैं। इन घर के लोगों में प्रीत हो प्रीत मीन जाते हैं, मई ब्रह्म। मई धारणी कर जाते हैं प्रीत ब्रह्म जाते हैं उसे ब्रह्म जाते हैं। घर के ब्रह्म से ये लोग लोग भी ब्रह्म जाते हैं प्रीत ब्रह्म जाते हैं। ये लोग ब्रह्म के ब्रह्म भी ब्रह्म में ब्रह्म जाते हैं।



भील—पहिने यह जाति भी जंगली थी। जंगलों में रहकर कम-बुल पर मुबारक करती थी। तीर चलाने में इस जाति के लोग बहुत होशियार होते थे। ये लोग जंगली जानवरों का शिकार भी किया करते थे। यह जाति भारत में जंगलों में मिलती थी। परन्तु अब इनकी हालत पहिले जैसी नहीं रही है। इन लोगों ने बहुत ही ज्यादा उन्नति कर ली है। सरकार ने इनके रहने के लिए घर बनवा दिये हैं।

### आस्ट्रेलिया की आदिम जाति

अर्वाचीन युग में आस्ट्रेलिया महाद्वीप में अर्बोब लोग बहुत ज्यादा रहते हैं। वहाँ पुराने रहने वाले कम ही निवास करते हैं। पुराने रहने वाले वहाँ बहुत समय से रहते हैं, जब कि वहाँ अर्बोबों का नाम भी नहीं था। वहाँ के मसमी रहने वाले थे ही लोग हैं। ये लोग लम्बे और लठे हुए घटीर के होते हैं। इनके बाल कुचलने होते हैं। इनका रंग काला होता है। इनके दाँत मुन्दर होते हैं। नाक चौड़ी और घाँसे चमकीली होती हैं। इनके बालों की हड्डियाँ उठी हुई होती हैं। ये लोग शिकार से ही पेट भरते हैं। साँप, स्निफनी गुबरीसे और बूढ़े को तो कच्चा ही खा जाते हैं। इस जाति के कुछ आदमी तो आदमी को भी खाने वाले होते हैं। ये लोग कपड़ा तो नहीं के बराबर पहिनते हैं, कटीब-कटीब लंगे रहते हैं। ये लोग अपने घटीर में मच्छरी का बबबुबार पैल मत लेते हैं। मच्छरी मारने और शिकार करने में बहुत होशियार होते हैं। ये एक ऐसा हथियार बजाते हैं जो शिकार को मारकर इनके ही पास बापिस लौट आता है, उस हथियार को बूमरैंग कहते हैं। ये लोग बहुत जंगली हालत में हैं। अर्बोबों को ये लोग बेबसा समझते हैं और उनकी हज्जत करते हैं। लेकिन ये लोग बीरे-बीरे बहुत कम होते जा रहे हैं।

अफगान—यह जाति अफगानिस्तान की रहने वाली है। ये लोग यहाँ पुराने समय से ही रहते हैं। इनकी भिन्नता भी बूमने में ही आती है। अफगानिस्तान पठारों का देश है, पूरा देश ऊँच-साबक और पहाड़ों से बरा हुआ है। यहाँ बरसों के मौसम में कभी बरसी और ठण्ड के मौसम में कभी ठण्ड पड़ती है। बरसात तो यहाँ बहुत कम होती है जिससे पूरा देश सूखा ही रहता है। यहाँ की जनबाहु और मिट्टी ऐसी है कि यहाँ पर अच्छी तरह पैती हो ही नहीं सकती। पड़-पोंकों में भी यहाँ कुछ नहीं मिलता। केवल हजर-जहर बिखरे हुए बास के छोटे मैदान और कँटीली आकियाँ मिलती हैं। इन बास के टुकड़ों में छोटी-छोटी सी बास होती है। इसी बास के सहारे यहाँ पर शाय, नेल, मोड़ा, ऊँच भेड़, कफरियाँ पाये जाते हैं, जो इसी बास पर अपनी मुँदर करते हैं।

इन्हीं कुहरती परेशानियों, धरती और जलवायु की बजह से ये लोग एक बजह बन कर नहीं रह पाते हैं। इन्हें घूमते रहने की बिम्बवी बितानी पड़ती है। अफगान लोग अपने जानवरों के लिए चारे की खोज में इधर-उधर घूमते हैं। इनके साथ बम्बे और ऊन के समर्थों के बने हुए तम्बू होते हैं। बाड़े के दिनों में अफगानिस्तान में बर्फ पड़ना शुरू हो जाती है। जिससे बचने के लिये अफगान लोग बाटियों की तरफ चले जाते हैं। इनको खाने-पीने की चीजें कपड़े, घर की चीजें, सवारी और बूझी चीजें भी अपने जानवरों से ही मिल जाती हैं। इन्हें पठारों की मैदों और बकरियों से बहुत सुन्दर और गरम ऊन मिलती है जिससे कासीन और कम्बल बनाये जाते हैं। यहाँ के कासीन और कम्बल प्रसिद्ध हैं। ये ऊँट के रोमों को जमाकर तम्बुओं और बिस्तरों के लिए समझे बनाते हैं। प्रायःकल जबकि इस देश में सिपाही के पन्थे तरीके बड़े बड़े हैं, उनकी मदद से उपजाऊ बाटियों में गेहूँ की मछा कपास, तम्बाकू के पत्ते, घड़ीम के लिए पोस्ट का दाना खजूर और फल पैदा किये जाते हैं। प्रायःकल ये पन्थे व्यापारी बन गये हैं।

इनका जीवन-शैली अधिकतर लम्बा और यथार्थ होता है। इनका स्वभाव अधिकतर कड़ा और मजबूत होता है। ये लोग पन्थे सिपाही बन सकते हैं। अपने लोक और प्रचलित स्वभाव के लिए वे लोग मजबूत हैं। इनको कुहरत से मुक्तिदा करना पड़ता है, इसलिए इनकी बिम्बगी को 'लगातार मुकाबले की बिम्बगी' कही जाती है।

बसूची—बसूचिस्तान में रहने वालों को बसूची कहा जाता है। ये लोग बहुत पुराने समय से यहाँ रहे हैं। इनकी बिम्बगी भी अधिकतर घूमने में ही जाती है। बसूची लोगों की बिम्बगी भी अफगानों की तरह होती है। ये लोग भी जानवर पासते हैं और उन्हें बचाने के लिए इधर-उधर घूम कर रहे हैं। यहाँ और बकरियों की सुन्दर और गरम ऊन से ये लोग कासीन और कम्बल बनाते हैं। ऊँटों के रोमों को जमा करके तम्बुओं और बिस्तरों के लिये समझे बनाते हैं। ये लोग एक बसूचिस्तान के देशों में भी चले गये हैं और वहाँ मेहनत-मजदूरी करते हैं।

तुर्क—तुर्किस्तान के रहने वाले लोगों को तुर्क कहते हैं। ये एशिया माइनर के लोचरी पठारी भाग में घूमने वाले लोग हैं। इस देश में बहुत समय से रहे हैं। इस देश में अपनी के दिनों में कड़ी परजी पड़ती है और घर बाह्य बिन्दुत नहीं होती। सरसी के दिनों में कड़ी सरसी पड़ती है और इन

बिनी भी बरसात नहीं होती। इस मजह से यहाँ पर कुछ भी पैदा नहीं होता, सिर्फ छोटी-छोटी पास कहीं-कहीं होती है। इसलिये तुर्क लोगों को मजबूर होकर केवल जानवरों ऊटों, बाड़ों, भेड़ों और बकरियों के सहारे ही अपनी ज़िम्मेदारी बितानी पड़ती है। इन्हीं से घास घीने, रङ्गने की सभी चीजें मिल जाती है। इन्हीं जानवरों को बचाने के लिये तुर्क लोगों को पठारों पर इधर उधर घूमना पड़ता है। इनकी ज़िम्मेदारी घूमते रङ्गने में ही बीतती है।

इस प्रकार की जमवानु और बरती में और कोई चीज मिमती ही नहीं है। ये लोग मजबूरान घूमने वाले बरबाहे बन जाते हैं। ये अपनी ज़रूरत की चीजें जाने-बीने कपड़े धर और सवारी की चीजें जानवरों से ले लेते हैं। तुर्किस्तान में पठार पर अंबोरा नाम की बकरी और मेरिला नाम की भेड़ मिमती है, जिसका ऊँ बड़ा गरम और सुन्दर होती है, जो बहुत कीमती, पतले और बिड़ने कासीन बनाने के काम में आती है। वह महीन ऊँ कपड़े बनाने के भी काम में आती है।

तुर्क लोगों का बीम बीम अधिकतर सम्बा और मजबूत होता है। परन्तु इनका रंग कासा होता है। ये खान के बने हुए तम्बुओं में रहते हैं जिसके लिये खान अपने जानवरों से ही ले लेते हैं। तुर्क लोग बड़े मेहनती हारो हैं। सहने की ताकत भी इन लोगों में बहुत होती है। ये लोग बड़े बीर और ताकत वाले होते हैं। इन लोगों को बीटोमान भी कहते हैं। अगर सड़ाई के लिए इन्हें रक्त बिना चाये तो ये लोग बड़े अच्छे और बीर सिपाही बन सकते हैं। अब इनकी हालत जोड़ी सुन्दर रही है।

### भौगोलिक पर्यावरण का वास्तविक महत्व

(Real Importance of Geographical environment)

हमने भौगोलिक पर्यावरण के पक्ष में विचार तथा विपक्ष में धारणाओं का विवेचन किया है। इन सभी का निष्कर्ष अगर निकाला जाय तो यही रहता है कि प्राचीन समाज में भौगोलिक पर्यावरण का महत्व अत्यधिक था। सामान्य जीवन के सभी कार्य प्रकृति द्वारा संचालित होते थे। धातुनिक युग में भौगोलिक पर्यावरण बीधा ही है परन्तु मनुष्य उसे अपने अनुकूल बनाने में समर्थ हो गया है। अब अनिष्ट सम्पर्क होने से प्राकृतिक वातावरण का प्रभाव प्रतीत नहीं होता है। सांस्कृतिक वातावरण के विकास ने मनुष्य को कुछ-कुछ प्राकृतिक वास्तव से मुक्त कर दिया है तथा सुख्यता के विकास ने सामान्य को प्राकृतिक पर्यावरण का महत्व अतथा दिया है। हीन जनमानस में भी भौगोलिक पर्यावरण अतथा ही प्रभाव डाल रहा है। अब भौगोलिक

पर्यावरण की उपेक्षा करना अनुचित है। उसका प्रभाव धातु भी किसी न किसी रूप में मानव जीवन पर पड़ रहा है। हमारी भाषा वसाधों का निर्माण तथा निर्धारण प्राकृतिक पर्यावरण पर आधारित है। यहाँ पर खोरोकिन का कथन स्मरण हो आता है कि 'सामाजिक दृष्टान्तों का कोई भी विरसेपण, जो भौगोलिक साधनों पर ध्यान नहीं देता, अशुद्ध है। इतना अवश्य है कि मानव जीवन पर प्रभाव डालने वाले साधनों में से भौगोलिक पर्यावरण भी एक साधन है (It is not only the factor but one of the factors)। भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव मानव-जीवन पर वसानुसंक्रमण (Heredity), सभ्यता (Civilization) और संस्कृति (Culture) तथा सांस्कृतिक और सामाजिक (Social Environment) का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति मानव को अनेक निधि सौंपती है। उनका उपयोग करना या न करना मानव पर आधारित है। उनका उपयोग करके ही मानव अपने सामाजिक पर्यावरण को विकसित बना सकता है। मानव की सभ्यता तथा संस्कृति इसी पर आधारित होती है। उद्योग प्रदान देशों में खनिज पदार्थ तथा कच्चे मांस विद्युत की सुविधाएँ, कृषि प्रदान देशों में भूमि सिंचाई की सुविधाएँ समुद्री तटों पर मछलियों की सुविधाएँ प्रकृति की ही देन हैं। इस बारे में दस्तूर (Dastur) का कथन पुनः स्मरण हो आता है कि 'प्रकृति केवल सामग्री प्रदान करती है मनुष्य अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति से उसका उपयोग करता है। लामो ने इस ओर ध्यान देते हुए कहा कि 'सिस्फार की योजना सामाजिक पर्यावरण के ह्रास में है, परन्तु सांस्कृतिक धर्मों को ईंट और चूना भौगोलिक पर्यावरण से ही प्राप्त होता है। मानव की बुद्धि प्राकृतिक दृष्टान्तों को धार करती है और प्राकृतिक सुविधाओं का उपयोग करती है। राउटर (E. B. Rauter) का कथन भी सत्य है कि 'प्राकृतिक पर्यावरण के अवसरों से उपलब्ध कर देता है जिनके अनुसार सामाजिक जीवन चलना चाहिए, लेकिन सामाजिक दृष्टान्तों के उन मूल्यों को निर्धारित नहीं करता, जिनको कि समाजवादी विवेचक करने के लिये सोचता है।' इसके साथ-साथ भौगोलिक पर्यावरण सभ्यताओं की सीमाओं का भी निर्धारण करता है।



इसके बाद विदेशी जातियों के नाम हैं जैसे यवन, शक, कुषाण, ईर, हर्षादि ।

भारत की असंख्य जातियों का सम्मेलन करना एक विशाल प्रश्न का प्रत्यक्षण करना है । इन अनेक जातियों के अपने अपने रिवाज हैं । फिर भी इन जातियों की एक आम भूमि है । धार्मिकीय भारतीय जमीन पर खड़े हैं । वह है वास्तुदर्श । अर्थात् यहाँ एक ब्राह्मण वर्ण है, एक क्षत्रिय वर्ण है एक वैश्य वर्ण है और है एक शूद्र वर्ण । हर एक वर्ण में असंख्य जातियाँ हैं और हर एक के असंख्य देवता हैं । हर एक का देवता उसके को माय्य है और एक निश्चित सहिष्णुता है । और भी एक निश्चितता है कि धार्मिकीय भारतीयों का चिन्तन कुछ साम्य भावों को लेकर चलता है । वह है धर्म-विधान का दृष्टिकोण । (इसमें हम वर्णों को नहीं ले सकते ।)

इस जिस युग में रहते हैं उसे हमारे धर्मशास्त्र धन्य नहीं कहते । महा भारत तथा महाभारत पुराण और उनके बाद की पुस्तकें भी यही कहती हैं कि हमारा युग पतन का युग है । इन सबकी वाक्यता के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति से पतन की ओर जाती है । इसका अर्थ व्यावहारिकता के क्षेत्र में वह है कि दिन बर दिन हमारा और हमारी सत्ता का अर्थ विप्लवता जायेगा, और हम निरन्तर पतन की ओर ही बढ़ जायेंगे । और फिर भी हम यह प्रयत्न करते हैं, कि हमारी सत्ता धन्य बने राष्ट्र का सुधार हो, दुनिया के सब लोग सुख-सन्ति से रहें ! किन्तु धर्मों की दुहाई देने के बाद क्या हमारा ऐसा करना एक अर्थ प्रयत्न नहीं है ? हमारे पुराण और शास्त्रों की वाक्य कहते हैं, कि 'धर्म नहीं है दुनिया में कल्पवृक्ष और कामधेनु, जो दान्य करते ही सब दे देते थे ? उनके अस्तित्व का इस तरह सोच हो जाना क्या हमारी धन्यता नहीं है ?'

इस दौर में भारत धन्य नहीं है, यूनान के पुराने ख्याल वाले निवासी भी अपने अतीत को बहुत धन्य मानते हैं । वे स्फूर्तयुग, रजतयुग, कांस्ययुग और लौहयुग में समय का विभाजन करते हैं । इसी प्रकार चीन के रहने वालों में भी पहले देवताओं का युग था फिर वैश्वमानुष युग और बाद में मनुष्य । भारत में ही तीन लोग समय को अथर्वयुग के रूप में बाँटते हैं । उनके मत में इस संसार में मनुष्य पहले बहुत सुखी था । उन दिनों सुनसिंधु सन्तान होती थी, अर्थात् एक की ओर एक पुरुष दृढ़दंठे जग्य भेते थे और बाद में नार्द अहिम ही पति-पत्नी बन जाते थे । उन दिनों इस पृथ्वी पर सबकुछ सुखमय था और अथर्व-जगत् नष्टवृक्ष जैसे होने से जिससे जगमाने पत जाने को मिल जाता करते थे इसलिये मनुष्य को किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता था ।

मेकिन बाद में जब मनुष्यों में ईर्ष्या, ईर्ष, वासना और हिंसा आदि प्रकृतिबल बढ़ने लगीं, तो कल्पवृक्षों ने जैसे फल देना बन्द कर दिया। उस समय भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों ने जन्म जिया और उन्होंने धोत्र छोड़कर बिबाह करने की रीति तथा पौष्टी करना मनुष्यों को सिखाया और जैन धर्म का उपदेश दिया।

कल्पवृक्ष के परितरित हिंस्रुषों में ऐसा माना जाता है कि वहाँ एक काम येनू भी थी जो प्राचीन काल में पूज्यास्थाओं को भगवानी वस्तुमें देती थी। क्या कामयेनू सबकुछ कोई भाव थी? महाकवि कामिदास ने अपने मेघदूत में धनकापुरी का जो वर्णन किया है तो वहाँ भी कल्पवृक्ष से फलों को बरस मदिता और भुगार प्राप्त करते बताया है। वहाँ वहाँ मनुष्यों के कुल मिलते हैं और धानम्ब ही धानम्ब बना रहता है। कामिदास के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके समय में कल्पवृक्ष एक काल्पनिक वस्तु थी। जिस समय महाभारत में संक्रम ने धृतराष्ट्र को उत्तर कुब और किम्पुस्य ब्रह्म का वर्णन सुनाया है वहाँ भी इच्छा-नामी वृक्षों, भस्ती से घूमते जोड़ी और बिना क्रम दिये सुन से छाने-बीने बाने जोबो का वर्णन किया है। इन सारी कथाओं का कामयेनू के कुल की कुल खास बातें प्रगट होती हैं। जैसे भाई-बहिन की घायी हो जाती थी सर्वोप बिबाह होते थे, लोगों को चित्ताये नहीं थीं ने बेटी नहीं करते थे और फल इत्यादि छाकर जीवित रहते थे। जब समय बहता परि वर्तन भावे। महाभारत में भीष्म ने बताया है कि सबसे पहले सकस्य से सन्तान पैदा होती थी—अर्थात् इच्छा हुई और सन्तान पैदा हो गई। उसके बाद सत्सर्ग सन्तान होने लगी अर्थात् स्त्री और पुरुष एक दूसरे को छू लेते थे तब सन्तान होती थी। उसके बाद मैत्रुन से सन्तान होने लगी और भीष्म के युग में स्त्री पुरुष के इच्छ से सन्तान जन्म लेने लगी। इन सबके क्या मानी है?

संस्कृत काल में स्त्री और पुरुष की इच्छा भाव परस्पर भिन्न के सिधे काफ़ी थी, तब बिबाह नहीं होते थे। उसके बाद संस्पर्श का कुप प्राया जिसमें शरीर बिबाह का आरम्भ हुआ। अन्तिम पर्यों में वह परम्परा कुछ के समय तक प्रचलित थी। उसके अनन्तर जोर छोड़ने की परम्परा जब से पड़ी, तब से 'मेकुल' ब्रह्म का प्रयोग हुआ। किन्तु इच्छ फिर क्या रहा? प्रथम ही हमें एक और बात देखनी होगी। पहले माता के नाम पर गण्य का नाम रखता जाता था। बेटों की माता अविति थी। बाद में पुरुषों के नाम पर घरों के नाम पड़ने लगे। तब पितृसत्ता का अवयव हुआ और स्त्री को सन्तान पैदा करने का साधनमात्र समझ जाने लगा। यथाति की पुत्री मायवी को गामय ने इसी प्रकार सन्तान पैदा करने के लिए

बार पुस्कों के पास रखना या भीर समके बाध यथाति में अपनी पुत्री का विवाह करने का प्रयत्न किया था । महाभारत में उद्दालक ने स्नेहकेतु से कहा, "हे पुत्र, यदि यह यतिनि बाह्यल तेरी माता को अपने साथ ले गया है, तो तू इस पर कोष न कर, क्योंकि इस संसार में स्थियाँ नाशों की तरह स्वयम्भू हैं ।" उसी समय स्नेहकेतु ने यह मर्मांश बसा ही कि धाम से एक स्त्री और एक पुत्र का ही जीवन भर बाँधा बंधेगा भीर स्नेहकचरणों बजित होगा । इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री और पुत्र के सामाजिक सम्बन्ध पुत्र-पुत्र में बढतते रहे । जिस समय पुत्र स्वामी हो गया और स्त्री उसके दासीन हो गयी तब वह घर की आत्मिका ही कभी और हम तरह उसने जिसका आश्रित स्वीकार किया, उसी की सम्पत्ति का स्वाधिकार प्राप्त करने का सपना धारण किया । इसी में जो इन्द्र वीरा हुआ उसी का बिज ऊपर के प्रसंग में किया गया है ।

इस प्रकार आर्य काल की विवाह हीन व्यवस्था मातृसत्ताक युग में थी । उस युग में बेटी नहीं होती थी । उस जीवन की किमी की सम्पत्ति नहीं थे । जोन बूमते फिरोते थे और वे बाहे नहीं थे कस छोड़ कर जाते थे । ऊन्ही इच्छित कस देने वाले कुलों की याद, कल्पवृक्ष बनी ।

जब पितृसत्ता का कल्प हुआ तब सारा कबीला बानी नष्ट इकट्ठा रहता था और इकट्ठे ही बेटी-बाटी होती थी । उनकी पार्वे भी सत्य में समकी लाने होती थी । वेनु बूम और बछड़ा बेटी थी । बछड़ा बीन बन कर बछ्ठी बोटका था और वह नृपथ बनकर बछड़े पैदा करता था । जनह्वान की उन्नेह कर उसकी बीनी जाल में मरे हुए अनुष्य को ली दिया जाता था और उसे अग्नि पर रखकर वैदिक ऋषि प्रार्थना करते थे कि हे अग्नि, इस लव को भस्मा ही बना । इसके बाद यवन के मुँह की उल्लंघन पसियों के जाने के लिये टाँग दिया जाता था ( इस प्रथा की परम्परा आर्यियों मर्वात् महर बानी अनुस के बपावर्कों में अभी तक विद्यमान है ) और वह माया जाता था कि यह भनह बाल भर्वात् बन इस भुर्गे की आत्मा को परलोक पहुँचायेगा । जिस प्रकार शीतल अनुष्य के लिये नृपथ न्यायशायक था, उसी प्रकार मृता के लिए भी होना चाहिये था, क्योंकि तब बीन ही बाह्यन था । इसी की परम्परा अभी तक मरते समय मोक्षण के रूप में विद्यमान है, जिसमें यह कामा जाता है कि यह जान में की हुई नाश अपनी पुत्र पकड़नाकर परलोक के रास्ते में नकने वाली बैतरिणी गयी को पार करा देगी । उस समय बीन और नाभ ने ही अनुष्य को बेटीबाकी और योजन का उद्धार किया था । समाज के नियम सुधर्मबन्धित होती पर निर्धार थे क्योंकि उसी के मान मिलता था । बेटी यम और बीन के होती थी । इसविद् नाभ के बार पीरों पर बर्न स्थित रहता था । नाभ 'पी' सत्य के बना



लेकिन बाद में जब मनुष्यों में ईर्ष्या, द्वेष, भावना और हिंसा आदि प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं, तो कस्यबुद्धों ने जैसे फल देना बन्द कर दिया । उस समय भयवान् ऋषयदेव आदि तीर्थंकरों ने जन्म लिया और उन्होंने जोन छोड़कर विवाह करने की रीति तथा धेती करना मनुष्यों को सिखाया और जैन धर्म का उपदेश दिया ।

कस्यबुद्ध के धर्तिरिक्त हिन्दुओं में, ऐसा माना जाता है कि यहाँ एक काम नेनु भी थी जो प्राचीन काल में पुण्यात्माओं को मनमानी वस्तुमें देती थी । क्या कामनेनु सबमुच कोई गाय थी ? महाकवि कामिदास ने अपने मेघदूत में ममनापुरी का जो वर्णन किया है तो वहाँ भी कस्यबुद्ध ॥ स्त्रियों को ब्रह्म मंदिरा और मृ गार प्राप्त करते बताया है । वहाँ स्र्धों ऋषुओं के पूत जिनसे है और यान्त्र ही यान्त्र बना रहता है । कामिदास के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके समय में कस्यबुद्ध एक वास्तविक वस्तु थी । जिस समय महाभारत में संजय ने कृत्तवृक्ष को उत्तर कुव और किम्बुक्य कण्ड का वर्णन सुनाया है वहाँ भी इच्छा-कामी वृक्षों मस्ती से बूमते जोड़ो और बिना काम किये फूल से छाने-पीने वाले सोनो का वर्णन किया है । इन सारी कथाओं से कामनेनु के घुम की कुछ खास बातें प्रगट होती हैं । जैसे माई-बहिन की साथी हो जाती थी सगोत्र विवाह होते थे, सोपों को चिन्तामें नहीं थी वे बेटी नहीं करते थे और फल इत्यादि खाकर जीवित रहते थे । जब समय बदला परि वर्तन आये । महाभारत में भीष्म ने बताया है कि सबसे पहले सकम्प से सन्तान पैदा होती थी—मर्णात् इच्छा हुई और सन्तान पैदा हो गई । उसके बाद सत्सर्ष सन्तान होने लगी मर्णात् की और पुरुष एक दूसरे को खू सेठ से सब सन्तान होती थी । उसके बाद मैत्रुन से सन्तान होने लगी और भीष्म के युग में स्त्री पुरुष के द्वन्द्व से सन्तान जन्म लेने लगी । इन सबके क्या मानी हैं ?

सकम्प काब में स्त्री और पुरुष की इच्छा-भाव परस्पर मिलन के लिये काफ़ी थी, सब विवाह महीं होते थे । उसके बाद संस्पर्ष का युग आया जिसमें सगोत्र विवाह का प्रारम्भ हुआ । शान्ति लणों में वह परम्परा कुछ के समय तक प्रचलित थी । उसके अनन्तर जोन छोड़ने की परम्परा जब से पड़ी, सब से 'मैत्रुन' बन्ध का प्रयोग हुआ । किन्तु द्वन्द्व फिर क्या रहा ? अब यहाँ हमें एक और बात देखनी होगी । पहले माता के नाम पर बसु का नाम रक्खा जाता था । दोनों की माता धर्ति थी । बाद में पुरुषों के नाम पर बर्यों के नाम पड़ने लगे । सब पितृसत्ता का जबस हुआ और स्त्री को सन्तान पैदा करने का साधनमात्र समझा जाने लगा । यथाति की पुत्री माधवी को यान्त्र ने इसी प्रकार सन्तान पैदा करने के लिए

चार पुरुषों के पास रखना था और उसके बाद यमाति ने अपनी पुत्री का विवाह करने का प्रयत्न किया था। महामारण में उद्भासक ने स्नेहकेतु से कहा, 'हे पुत्र यदि यह प्रतिनि आह्वान तेरी माता को अपने साथ ले गया है, तो तू इस पर क्रोध न कर, क्योंकि इस संसार में स्त्रियाँ गायों की तरह स्वतन्त्र हैं। उसी समय स्नेहकेतु ने यह मन्त्रिणा बना भी कि धात्र से एक स्त्री और एक पुरुष का ही जीवन भर जोड़ा बनेगा और स्नेहकाचरण बलिष्ठ होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री और पुरुष के सामाजिक सम्बन्ध पुनः-पुनः बदलते रहे। जिस समय पुरुष स्वामी हो गया और स्त्री उसके प्राचीन हो गयी तब वह घर की मातृकिण हो गयी और इस तरह उसने जिसका सामित्व स्वीकार किया उसी की सम्पत्ति का स्वामित्व प्राप्त करने का समर्थ प्रारम्भ किया। इसी में जो द्वन्द्व पैदा हुआ उसी का विक्रम के प्रसंग में किया गया है।

इस प्रकार धार्मिक काम की विवाह-हीन व्यवस्था मातृसत्ताक युग में थी। उस युग में बेटी नहीं होती थी। तब जंगम की क्रिया की सम्पत्ति नहीं थे। लोग क्रमते फिरते थे और वे जाहे जहाँ से पल ठाढ़ कर जाते थे। उन्हीं शक्तिशाली कल होने वाले कुलों की याद कल्पवृक्ष बनी।

जब पितृसत्ता का उदय हुआ तब साठ कबीला बानी गए इन्द्राक्ष प्लुता का और इन्द्राक्ष ही बेटी-बाड़ी होती थी। उनकी नार्यें भी आपस में सबस्ते नार्यें होती थीं। वेनु द्रुम और बल्लभा बेटी थी। बल्लभा बैल बन कर बरती मोरठा का और वह वृषभ बनकर बल्लभे पैदा करता था। जनह्वान को उन्हेड़ कर उसकी बीसी खाल में मरे हुए मनुष्य को सी बिया जाता था और उसे धमि पर रखकर वैदिक ऋषि प्रार्थना करते थे कि हे धमि, इस धन को प्राचा ही बना। इसके बाद धर्म के मुर्दे का उठाकर पत्नियों के खाने के भिन्न टीन दिया जाता था (इस प्रथा की परम्परा पारसियों अर्थात् धात्र बानी धात्र के सपासकों में अभी तक विद्यमान है) और यह माना जाता था कि यह धनदान धर्मात् बैल इस मुर्दे की आत्मा को परलोक पहुँचावेगा। जिस प्रकार बोधित मनुष्य के लिये वृषभ आभारार्थक का उसी प्रकार गृध के लिए भी होता चाहिये था क्योंकि तब बैल ही माहल था। इसी की परम्परा अभी तक मछो समय मोरठा के रूप में विद्यमान है, जिसमें यह माना जाता है कि यह धन में ही हुई याम अपनी पूछ पकड़वाकर परलोक के रास्ते में पड़ने वाली शेरिस्सो नदी को पार करा देगी। उस समय बैल और माय ने ही मनुष्य को बेटी-बाड़ी और मोरठा का सहाय दिया था। समाज के नियम सुस्पष्टस्थित बेटी पर निर्भर थे क्योंकि उसी से धन मिलता था। बेटी माय और बैल से होती थी इसलिए याम के चार पीरों पर धर्म स्थित रहता था। नाम 'मी' उन्हे से ।

है जिससे संस्कृत में कई धर्म हैं। सूर्य किरण, इन्द्रिय, बाएँ पृथ्वी, इत्यादि। इस प्रकार पौ का पर्याय वेनु पृथ्वी के लिये भी प्रयुक्त होने लगा। पृथ्वी को कमबुजा कहा गया। महाकवि काविरास ने 'कुमार सम्भव' में एक रूप में एक प्रभाव-पूर्ण वर्णन किया है 'इस पृथ्वी का बोहान करने के लिये जब वृद्ध को बिठाया गया तब जिस प्रकार माय के सामने बछड़ा करने से वह रूप होती है उसी प्रकार पृथ्वी को इच्छा भर खेती और घस देने के लिये हिमालय ही उसके सामने बछड़ा बनाकर खड़ा किया।' ध्यान रहे कि हिमालय से ही नदियाँ बहकर धार्यावर्त की सींचा करती थीं।

यों स्पष्ट हो जाता है कि धरणी इतनी बड़ी उपयोक्ता के कारण हो माय को 'कामवेनु' मान लिया गया था। इस प्रकार मातृसत्ता ने हमको कल्पबृक्ष, और पितृसत्ता के समय ने हमें कामवेनु दी।

अब इस प्रश्न को लें कि पहले मनुष्य का चरित्र अच्छा था और वह बाद में बिगड़ता गया। परन्तु जरा इन उदाहरणों को देखिये : प्राचीनतम काल में इन्द्र ने यौतम-पत्नी प्रहिस्ता से क्लम किया था। बृहस्पति ने अपनी भाभी समता का अतिक्लमण किया था। अस्वनीकुमारों ने हिरण्यहस्त को पराधीनी स्त्री से पैदा किया था। उस समय हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व बाप की आज्ञा का सम्मान करके भर से भाग गया था। द्युतसेप का बच करने के लिए जन के लोग से स्वयं उसका पिता यजीपत्त ठंकार हो गया था। मनु ने अपनी पुत्री इक्ष्वा से ही सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की थी। देववानी ने बुद्धमाई कच पर ही ओरे डालने चाहे थे। यह सब सतयुग की बातें हैं। उसी जमाने में इन्द्र ने घोड़े से नमुचि को मारा था। पद्म पाने पर नहुष मरान्त हो गया था। सतयुग में राधा गल कुम्भा सेलते थे। परबु राम की माता ऋक्षुका यन्मर्ष विचरण की चेष्टा कर मोहित हो पड़ी थी। इसी प्रकार नेता में राधा राम ने अक्षरय ही बालि का बच किया था—बोले थे। सीता ने जहमण जैसे पवित्र व्यक्ति को लोभन मनाया था। कैकेयी ने राज्य लोभ में पुत्र को निर्वासित कराया था। महाभारत-काल में तो हमें नैतिकता का हाव और भी विभिन्न बिछाई देता है। सतयुग में भी बास्व घत्पाचार करने वाले मोक्ष के और हापर में भी। अतः यह कहना कि पहले लोग सुखी थे या सम्मन थे, यह भ्रम है। उस समय भी मरानक प्रकार पड़ते थे। नेता और हापर की सन्धि में विस्वामित्र ने बाष्काल का भय हुआ कुशा खाकर अपने पेट की भाव बुझाई थी। धार्तरों को पहाड़ी से पड़ने पर पता चलता है कि तब के मुर्कों में समाज में ऐसी रीतिर्वा प्रचलित थीं जिनका कल्पयुग में वर्णन किया गया जैसे—बाह्य, धूर्तों के हाव का पकाया जाना

पात से, मांस खाते से, बिचबारीयों के बिबाह होते से, स्त्रियाँ पैर पकती थीं और बनेक कटती थीं। यह प्रश्न उठाने पर हिन्दुओं में बिचारकों ने यही कहा कि पुरखों की प्रवृत्ताइयाँ तो वो मगर इनकी नफ़स मत करो। इस प्रकार नैतिकता का प्रश्न तो साफ हो जाता है। पाप सत्ययुग में भी था और भव भी है।

ब्रैडा कि हथ उमर उल्लेख कर पावे हैं पहले पृथ्वी का शासक ब्राह्मण ही था। उसके बाद जब ब्राह्मण ने अपनी शक्ति को जलियों के साथ बाँट दिया उस उसके नियंत्रण कम गया। वह पहले बीछा हुआ था, चमड़ा या लेकिन उसके बाद वह खड़ा रह गया, उसकी बलि कम लगी। महानारद ने स्पष्ट सिखा है कि पहले सत्ययुग में बर्बर, दुर्गन्ध, दमर और अन्य म्लेच्छ जातियाँ नहीं थीं। जब उनका विकास हुआ तो बर्बर वर घापात बहूँ, इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रैडा में काफी अनार्य बढ़ गये थे। राजा राम ने राज्यों की शक्ति को नष्ट करके शक्ति स्थापित की। किन्तु वे राजसुत संस्कृति को नष्ट नहीं कर पाये। जलियों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और भार्य और अनार्य योद्धाओं, शासकों, यथार्थ जलियों में परस्पर निजम प्रारम्भ हो गया, उस समय आपर पुन प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण की शक्ति और भी कम हो गयी। वह मीठ गया। महानारद बुद्ध के बाद अनार्य जातों ने फिर फिर ब्रह्मण और पण्डित का बंध कर दिया। ब्राह्मणों ने ही उसके पुन जनमेजय को प्रेरित करके जातों का बंध कराया। उस समय भार्य पिता और माता के पुन शास्त्रीक ने वह यज्ञ रचनाकर जनमेजय में और लक्षक में लम्बि करायी थी। उस समय शास्त्रीक ने ब्राह्मणों को साथ दिया था कि है ब्राह्मणों तुमने अपने को बंध काटल इतनी दूरपा कराई है, इसलिये अब से तुम्हारा बंधन सत्य नहीं होगा।

वहीं से आइएगा। मैं धर्मकार की भी कम हो गये थीर वह सो गया। अपनी बायीं हार गया, थीर इसलिये उसने अपने लिये कलियुग की घोषणा कर दी।

अहिंसा की अपेक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से भारतीय समाज की एक व्यवस्था के विघटन का संयोग है। इस विघटन में निम्नलिखित बातें हैं।

- (१) जाइल की शक्ति कम हुई—सर्वांग भौतिक जाइल के नियमन दृष्ट  
कते ।

- (२) बहुत से सभियों ने शाहजहाँ का विरोध किया।

- (३) महाभारत-काल में योद्धाओं को सावधान रहने का लेख मिलता है—

नहीं था यह बात समाप्त हो गई। उसके बाद वंश पत्र एकत्र करने लगे।

(४) शूद्र पहले यथा कामवध्य थे, वे भी ऐसे नहीं रहे।

(५) पुनिष्ठिर के समय में शास-प्रथा भी। ब्रौपरी को शासी बना कर ही बरी समा में नंगी किया गया था। परन्तु वैश्यों की उन्नति ने शास प्रथा को तोड़ा। वैश्यों ने काम ज्यादा लेने और फिजूल कर्ष रोकने को ठेके पर काम कराया। शास प्रथा टूटने लगी। ग्रेण्डिया (Guilds) का उदय हुआ।

(६) सामीप्य सम्प्रदाय नागरिक सम्प्रदाय बनने लगी।

(७) पहले धर्मों के चार वर्ग थे। अब विभिन्न जातियों के पुरोहित परस्पर मिलने के कारण पुरोहित व्यवसाय के कारण बाह्यण वर्ग में जुड़े। उनके अपने अपने देवता थे। इस प्रकार अनेक देवता हिन्दू धर्म में मान्य हुए। इसी प्रकार धर्म वर्गों में भी विभिन्न जातियों (Races) के विभिन्न लोग पैसे के हिसाब से बँट गये। चार वर्ग जो पहले धर्मों में थे हिन्दू समाज के मूलाधार (Broad base) बन गये।

(८) पहले धर्मों या वर्गों वैदिक व्यवस्था को मानने वालों में 'साधम' माने जाते थे। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि साधम-व्यवस्था असुरों की देन थी। परन्तु महाभारत युद्ध के बाद यह व्यवस्था भी टूट लगी।

(९) अनेक धर्म जातियों (Races) जैसे नाब वसुन्मिय जातियों (Castes) जैसे शूद्र और कबीला जातियों (Tribes) जैसे छत्र बाण्डास इत्यादि ने भी चिर उन्नत किया और वे भी अपने निवे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे।

इस सब कारणों में भारतीय समाज का विघटन (disorganization) था, जो नीचम युद्ध के पहले जन्मा रहा था। उस समय नीच और नीचतम वर्गों ने अपना चिर उन्नत और वैष्णव मत में भक्ति का स्वर उठा दिया। इसका प्रभाव बहुत बाद तक भी रहा।

कहा है—

प्रागित्य योग्यचिन्तिते पारम्पर्या सामान्यवत् । ७५।

महापातकिनी त्वासी । ८२।

(शाण्डिल्य श्रुतिश्रुत द्वितीय अध्याय)

यं भी रामनारायणवत् साक्षी 'उप' में इसकी व्याख्या की है—भक्ति में उन्नत जाति से लेकर बाण्डास नीच जाति तक के मनुष्यों का समान रूप से अधिकार है; ठीक वही तरह जैसे पहिछा, सत्य अस्तेय, धार्मिक सामान्य वर्गों के ज्ञान और अनुष्ठान में सबका समान अधिकार है; पुत्र तथा साक्षी के

उपदेष्टा की परम्परा से यही बात सिद्ध होती है [ ७८ ] ( यदि आध्यात्म जोति तक के अनुभूतों का शक्ति में अधिकार है, तब तो महापातकी अनुभूतों का भी उसमें अधिकार हो सकता है । इसके अन्तर में कहते हैं—) जिसके द्वारा यत्न हेतुभूत महापातक बन गये हैं ऐसे लोगों का केवल पात शक्ति में ही अधिकार है और किसी में नहीं । ( उसके द्वारा पाप निवृत्ति हो जाने पर सब प्रकार की शक्ति में अधिकार हो जाता है ) [ ८२ ] ।

इस प्रकार शक्ति के माध्यम से समाज में एक नयी चेतना पैदा कर दी ।

यह तीनों ही आन्दोलन मानवतावादी (humanist) थे किन्तु तीनों का तीन घटक चैत्यों से अनुप्राणन होता था ।

बौद्धों ने क्षत्रिय भेदों से वैश्य और वैश्यों से शूद्रों के स्वार्थ का विरोध ध्येय था । यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है । इसलिये भारतीय इतिहास की लम्बी बीड़ में अन्ततोगत्वा इस तीनों से वैष्णव मत ही अधिक प्रभाव वाली प्रमाणित हुया क्योंकि उसमें शूद्र धर्मात्मा बहुजन (masses) को सहारा मिलता था । इस्लाम ने बौद्धों को मिटा दिया और निर्बल हो गये किन्तु उनकी उस कट्टरता को जो भारतीय संस्कृति को ही नष्ट कर देना चाहता था, केवल वैष्णव मानववाद (Vaishnavism Humanism) ही भेद सका ।

वैष्णव मत पहले ब्राह्मणों में मान्य नहीं था । कथा भी है कि कृष्ण ने ( पीठा में निचे जादि ब्राह्मण कहा है ) विष्णु के कक्ष पर सात मापी भी । परन्तु विष्णु ने धया कर दिया और ब्राह्मण का मन खींच लिया—प्रचलित वैष्णवों ने ब्राह्मणों की अन्तर्दाहनी से भी । परन्तु कालान्तर में ब्राह्मणों ने वैष्णव मत को मजबूरान स्वीकार कर लिया । वैष्णव मत जाति-विरोधी था । परन्तु ब्राह्मणों ने बार बार आधुनिकता में शक्ति का अधिकार शूद्रों को देकर भी वर्णव्यवस्था को स्थापित करना चाहा । मुसलमानों ने महाराम तुमहीरास ने ऐसा ही किया । उन्होंने सामाजिक विपटन का विश्व इस प्रकार दिया है—

गारि बिबस नर सकल सोताई ।

बाबहि नट बर्षट की नाई ।

सुख बिजगह उपरोसहि म्याना ।

येनि जनेऊ पैहि भुवावा ।

मन नर काम सोम रत जोषी ।

देव बिब धृति रत विरोषी ।

बुन मन्दिर सुन्दर पति स्थायी ।

भजहि नारि पर पुष्प अभायी ।

सीभागिनी बिभूषन हीमा ।

बिबबन्ह के तियार नबीमा ।

बुर सिष्य बधिर धर्म का मेछा ।

एक म सुनह एक नहि देखा ।

हरह सिष्य बन सीक न हरई ।

छो घुब मोर मरक यह परई ।

मातु पिता बामकन्ह बोलाबहि ।

सदर भरे सोइ धर्म सिखाबहि ।

( रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड )

तुलसीदास के समय में जैसे एक और संकट उत्पन्न हो गया । सूत्र द्विजों को उपदेस देते थे । बनेऊ पहन कर बाग मैते थे । सब बबह बेरों का विरोध हो रहा था । शिष्यों कुलठा हो बनी थीं । पातिव्रत नष्ट हो रहा था और पुष्प भी पत्नी के प्रति ईमानदार नहीं रहे थे । बिबबाए भु नार करने लगी थीं । बुर सिष्य के सम्मान भी टूट रहे थे । घुब सीधी हो बने थे । माता पिता बालकों को अच्छी शिक्षा नहीं देते थे । और—

बरन धर्म नहि ध्यायन जायी ।

श्रुति विरोध रह सब नर नायी ।

द्विज श्रुति बेचक रूप प्रजासन ।

कोउ नहि मान निमम अनुशासन ।

भारय सोइ का कहु बोइ भावा ।

पंडित सोइ जो गाव बचावा ।

मिथ्यारथ बंध रह बोई ।

ता कहु संत कहह सब कोई ।

सोइ सयाग जो परजन हारी ।

जो कर बंध सो बड़ धाचारी ।

जो कह कूठ मसपरी जावा ।

कमिकुग सोइ पुनर्बत बचावा ।

निराचर जो म ति पब स्थायी ।

कबिबुन सोइ प्यानी सो बिरापी ।

जाके बस धर नष्ट जिसावा ।

सोइ तापस प्रसिद्ध कबिकावा ।

घसुम बेच घुसल घरे भण्डामण्ड के बाहि ।  
तेह जोणी तेह सिद्ध नर पुम्पते कति कुप माहि ॥

( रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड )

बर्लामण्ड नष्ट हो पड़े थे । बाह्याण्ड बेद को बेचते थे । राजा प्रजा को सताते थे । कोई बेद का अनुशासन नहीं मानता था । सोय दूधरे के बन वा घनहरण करते थे । हम ने धाधार को पराशित कर दिया था । इसको तुलसीदास ने कतिपुन कहा था । उस समय लोगों में ज्ञानपान का भी ध्यान नहीं रहा था ।

तुलसीदास ने तो कतिपुन के विच्छिन्न राजा राम की सेवा में पशिका (धत्री) भिजवाई थी ।

कति कोई कल्पना नहीं थी । पुरुषों में तथा धर्म्य प्रभों में, धीर पात्र से समयमें ४०० वर्ष तक के बर्लानों में कतिपुन का प्राय एक सा ही बर्लान निश्चिता है । इसका कारण है कि समाज की व्यवस्था इसी धार्मिक षड् बी कि वह सीमा नहीं बदलती रही थी । परन्तु दिनोदिन हास्यविषय छोटी सी और हनीसिये यह मान लिया गया था कि कति में दिन पर दिन पतन होता । तुलसीदास कहते हैं—

जै बरनामम तेनि कुम्हार ।

स्वपन किरास कोल कलबारा ।

नारि भुरै यह सपति नासी ।

धूठ भुङ्गाइ होहि संभासी ।

ते दिग्रन्ध सन पापु पुत्राबहि ।

जमय लोक निज रूप नसाबहि ।

विद निरन्धर सोसुपकामी ।

निराचार सठ कुससी स्वामी ।

सूत्र करहि बप तप ब्रत नागा ।

बैठि बरासन कहहि पुत्रमा ।

सब नर कल्पित करहि धनारा ।

जाइ न बरनि धनीति धनारा ।

मये बरन धंकर कति मित्र सेतु सब सोप ।

करहि पाप पाबहि दुख धनकम लोक विरोध ।

× × ×

तपसी बनवत हरिउ पुरी ।

कति कीतुक तात न जाइ नही ।



कुमर्बति निवारहि नारि सती ।  
 ग्रह घालहि बेरि मिबेरि मती ।  
 सुत मानहि मातु पिता तब ली ।  
 धनमानन बीज नहीं जब ली ।  
 समुदायि विचारि मयी जब रें ।  
 रिपुवध कुटुब भर तब रें ।  
 सुप पाप परामन धर्म नहीं ।  
 करि बड बिडंब प्रजा मितही ।

ऐसी कुम्हार बरषव किरात कोम सब ही तिर उठा रहे थे ।  
 कनि में सब ही बर्तुसंकर से हो मय ब ।

बनवत कुमीन मसीन मपी ।  
 द्विज बिन्दु जनेऊ उचार तपी ।  
 नहि मान पुराण न बेरहि जो ।  
 हरि देवक संत सही कनि ली ।  
 कनि नारहि नार कुकल परे ।  
 विनु भक्त बुखी सब लीप मरे ।

मुलु लयेस कनि कपट हनु बज डेव पार्बड ।  
 मान मोह मारवि मय व्यापि रहे नृपण्ड ।  
 लामस बर्म करहि नर बप तप कत मन्त्रान ।  
 देव न बरपहि बरणी बए न जामहि जान ।

× × ×

कनिकात बिहाव किए मनुजा ।  
 नहि मानत कबी मनुजा तनुजा ।  
 नहि लोप विचार न सीवसता ।  
 सब जाति कुजाति मए मगता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के लिये कनि एक बौ-ही-सी  
 (by the way) बात नहीं थी । वह उनके लिये एक ठोस और पूरा  
 कतरा था ।

तुलसीदास समाज-निर्मिता थे । उन्होंने मुसलों के खोपक साम्राज्य के  
 विरुद्ध भारतीय जनता को समर्थित किया था । उनका कहना था कि चारों बर्ष  
 अपने अपने काम करके एक होकर अपनी संस्कृति को बचाओ, अपने राम का  
 मार्ग सदाय में स्थापित करो और मजमाती करने वालों को हटाओ ।

मुलसीरास ने सोये हुए पीड़ित शोर्नों को जगाया था। मुलसीरास पुनरुत्थानवादी (Revivalist) थे।

उन्होंने पुराने धर्मों की भी व्याख्या की है।

(१) इतपुग में सब योगी विद्वानी थे। सब लोग सब हरि ध्यान करने ही तर जाते थे।

(२) वेडा जुम में लोग यज्ञ (यजन=प्रयत्न) करते थे और प्रभु को अपने कर्म समर्पण करके तर जाते थे।

(३) हापर में लोग राम के चरणों की पूजा करते थे और इसी उपाय से महाभारत को तर जाते थे।

(४) परन्तु कलियुग में न योग था, न यज्ञ था। न ज्ञान था। केवल राम-कुल-याग ही एकमात्र साधारण था। कहा है

इतजुम सब ओवी विद्वानी।  
करि हरि ध्यान तरहि मय प्रानी।  
वेडा विविध जप्य नर करहीं।  
प्रभुहि समर्पि कर्म नब तरहीं।  
हापर करि रघुपति पर पूजा।  
नर मय तरहि उपाय न दूजा।  
कलियुग भोग न जप्य न ध्याना।  
एक साधारण राम जुम पाना।

इत प्रकार मुलसी ने धर्मों को बीजों के सिधे हुये अधिकार फिर सिधे, परन्तु उसके साथ ही कर्तव्य-व्यवस्था भी एक राजनीतिक पैटर्न (Political Pattern) जैसा बनाकर भारतीय (धर्मात हिन्दू) समाज के सामने रखा। कति का आरम्भ क्यों हुआ था।

कति जूए में हारा रूप था। प्राचीनकाल में जूए में हारने वाला कति और जीतने वाला इत कहलाता था। जूधा एक आम खेल था। इन प्रतीकों (Symbols) को सर्वसाधारण समझते थे। अतः यह जल पड़े थे।

कति सामाजिक विघटन (Social disorganization) का जिसमें पुरानी व्यवस्था गूढ़ हो रही थी। परन्तु कति केवल उच्च वर्गों के स्वार्थ का प्रतिनिधि नहीं था। कति समस्तोपस्था जनता का भी धनु बन गया था।

तब कति भक्तिकाल के साधारण का साधारण था तो पहले यह प्रतीकों का प्रतीक था। कति एक प्रतीक (Symbol) बन गया।

कति का भारत में विशेष महत्त्व है। वो बाते कति में मिल कर जाती हैं—

(१) मानवतावाद, जिसने विकास किया है।

(२) जातुमर्त्य, जिसने अपने को बचाने के लिये, रूप बदल-बदल कर मानवतावाद की छाड़ ली है।

अब प्रश्न यह है कि चार बलों की व्यवस्था भारत में बराबर बनी कैसे रही? योंतम २५०० वर्ष पहले से, जन्होंने भी ब्राह्मण की निम्न की भी कमीर ने उनके हजारों शास्त्र बाब ऐसा ही किया। बस्कि नामक इत्यादि भी किया। फिर भी कौन सी बात को व्यवस्था का आधार बहो बना रहा।

बिबेसों में भी समाज में चार चार वर्ष थे। पर वे बदल गये। भारत में ही क्या बात थी?

इसका कारण भी यही की जाति-वशा।

जाति-वशा क्षानपान पर निर्भर थी। पर उसका उदय टॉम से हुआ था। उसमें पिटर-बुबा (Ancestor Worship) की और बल जातिवादी (castes) विभिन्न जातियों (Racial stocks) में बाई थी। सब उनमें पुराने और परम्परात्मक भेद थे। प्रत्येक जाति एक विशाल व्यवस्था में समा गई थी। इसका भीतरी भाग अपना ही था। बहुत से बिबेसी इसी बल-व्यवस्था में पुस गये, क्योंकि उसमें प्रवेश करने का धर्म था, भारतीय समाज में अपनी मान्यता प्राप्त कर लेना। जोबियों ने इसका विरोध भी किया था। लेकिन इस्लाम के आक्रमण होने पर बल-व्यवस्था भारतीय संस्कृति का प्रतीक बन गई और समाजहीन विभक्ती के समय में कहा है

तटि तीरथि ब्रह्मणि के करमा,  
पुत्रु दान कबी के करिमा,  
बणिज बिज्जाक बेसनो के करिमा  
सेवा भाव सुप्रि के करिमा,  
चारों करनि हू चारों करमा,  
करपट प्रसिधे सुसिहो सिधु भनु बति

कोए जोनी के करमा।

—करपटनाम

करपटनाम एक महान योगी थे। उनकी रसेस्वर भक्त में अवर्द्धत हैं। समूहने बल-व्यवस्था को स्वीकार कर लिया।

भारतीय समाज शास्त्र में बल-व्यवस्था के विरोध में मुक्त नहीं था। यह केवल बलों के अधिकारों और कर्तव्यों (duties) की फिर फिर व्याख्या करता रहा।

बल-व्यवस्था का व्यापक धर्म यह माना जाता था कि पेशों के हिसाब से

ब्रजाय में बार विवाहन होते हैं। कुछ लोग हिमायी काम करते हैं, कुछ राम बनाते हैं, कुछ व्यापार करते हैं और बाकी लोग समाज की सब तरह की सेवा करते हैं। बाराँ बाराँ का प्रत्येक वा पक्ष के प्रति एक ही दृष्टिकोण था। परन्तु व्यवहार में बातों में सर्व्व भी था। मोनियर विवियन्स ब्रिगेडों के जाने के समय में ही भारत में अनेक बाह्यण पाये थे।

उत्तरी बाह्यण

बीड़<sup>1</sup>

- (१) काम्यकुम्भ (कमीब)
- (२) सारस्वत (उत्तर-प्रविचम)
- (३) बीड़ (बंगाल और दिल्ली)
- (४) मेविल (उत्तरी बिहार)
- (५) उत्कल (बड़ीसा)

दक्षिणी बाह्यण :

इन्द्रि

- (१) महापद्म (मराठी साम्नीय)
- (२) तैलन (तेलुगु " )
- (३) प्रावि (तमिल " )
- (४) कर्णाट (कर्नाटक , )
- (५) कुर्ब (मुलपट " )

काम्यकुम्भों के ११९ बेटे हैं। इनमें १०० तो बापेज कहलाते हैं, व १९ राठ कहलाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक के भीतर अनेक अनेक उपभेद और भी थे। ऐसा बाह्यणों में था, बाकी लोगों का तो कहना ही क्या। मोनियर विवियन्स भारत की देखकर चबड़ा गया था। वह लिखता है—'हमारे यहाँ तो एक दूसरे में मिल सकते हैं, हम उनके बीच का सब पड़ा भी नहीं बना सकते।'।

परन्तु भारत में जगह-जगह लकीरें बिधी थीं। इन लकीरों को देख बिदेसी समझ नहीं पाते थे। भारतीय जाति-व्यथा की विचित्रता यह थी कि

(१) यहाँ बने बँटे हुये थे।

1 Hindulam Monier Williams p III.

2 With as all ranks and orders run into each other and blend imperceptibly together, that it becomes impossible to separate them into sharply defined strata or to say where

(२) हर्षे ऊँचे नीचे माने जाते थे ।

(३) पर नीचे हर्षे बाला अपने आपकी किसी भी तरह मटिया नहीं मानता था ।

(४) वह अपने से किसी को नीचा मानता था ।

(५) लेकिन हर हर्षे अपने भीतर ऊँचे हर्षे वाले को भी धिक्कारने को तैयार नहीं था ।

(६) हर्षे एक व्यवस्था के प्रतीक थे । पचास वर्ष का छात्र भी दस वर्ष के ब्राह्मण के बैठे के पास खूटा था पर वह ब्राह्मण को अपनी जाति में नहीं मिला सकता था ।

यह भारत की विशिष्टता थी ।

भारत पुण्य के सृष्टिकर्म में सनक ने भारत को उपदेश दिया है कि भारत सर्वप्रोष्ठ है ।

ऐसा क्यों किया गया ? भारत पर इतना बर्ष क्यों था ?

पहले हम देखें कि जाति-प्रथा-विरोधी किन्हीं जातियाँ आई थीं यही के किन्हीं आन्दोलनों का पता चलता है ।

#### जाति

#### आन्दोलन

- |                      |                                 |
|----------------------|---------------------------------|
| (१) क्षत्र           | (१) बौद्ध                       |
| (२) शूद्र            | (२) बौद्ध                       |
| (३) कुशा             | (३) वैष्णव (उत्तरी)             |
| (४) बर्बर            | (४) शैव (दक्षिण)                |
| (५) पुरुष            | (५) शैव (दक्षिण)                |
| (६) बौद्ध (विजयवादी) | (६) सिद्ध (वैष्णववादी)          |
| (७) शूद्र            | (७) नाथ भोवी                    |
| (८) पञ्चन (मुसलमान)  | (८) कबीरपंथ                     |
| (९) मुसलमान          | (९) बौद्ध के भावधार, रामानुज    |
| (१०) मधोस (मुसलमान)  | (१०) भारत और सहजवादी            |
| (११) मुसलमान         | (११) बौद्ध महाप्रभु             |
| (१२) शैव             | (१२) मानक तथा अन्य विद्वानों से |
| (१३) शूद्र           | (१३) सिद्ध                      |
| (१४) शैव             | (१४) शूद्र रामानुज              |
|                      | (१५) रामानुजामी मत              |
|                      | (१६) धर्म समाज                  |
|                      | (१७) ब्राह्मणमत ।               |

(१८) बापी

(१९) सर्वोच्च धर्मोत्तम ।

(२०) विवाह

ये ती मोटे तौर पर निम्नानुसार हैं । ॥ २५०० वर्ष का बाप है । सभी लोगसे जाने किन्तु ही छूट गये हैं ।

इसका कारण था कि इसी व्यवस्था के आधार पर यहाँ की सर्व-व्यवस्था की और जहाँ पर संस्कृति टिकी हुई थी । मार्ग पुण्य कहा है

भारतवर्ष में मनुष्य को सांख्यिक, राजनैतिक और सामाजिक तीन प्रकार के कर्म करते हैं, उनका फल 'माय' भूमि में जन्म होता है । भारतवर्ष में किया हुआ जो कुछ व्यवस्था मनुष्य कर्म है, उसका लक्ष्यमंजुर (बचा हुआ) फल भीलों द्वारा ग्रहण होता है । प्रायः ही वेदों से प्राप्त भूमि में जान लेने की प्रवृत्ति करते हैं । वे सोचते हैं, 'हम लोग सब संवित्त किये हुये महान, धन्य, निर्मल एवं शुभ पुण्य के कलस्वरूप भारतवर्ष की भूमि पर जन्म लेने और सब कहीं महान पुण्य करके परम पद को प्राप्त होंगे—यह सब कहीं नामा प्रकार के नाम भौतिक-मौलिक के सब या व्यवस्था के द्वारा बदलीस्वरूपी हित की प्राप्ति करना करके उनके निरवधारणमय धनमय सब को सब प्राप्त कर लेने ।

यह भारत का धर्म है । इसी भारत में इसी धनमय मोक्ष के परम पद को प्राप्त भारत में मान्य रहे हैं और सब तक इनका आधार मिलता है । कहा है

जो भारतभूमि में जन्म लेकर व्यवस्था विष्णु की प्राप्ति में लग जाता है, उसके समान पुष्पात्मा लोगों लोगों में कोई नहीं है । व्यवस्था के नाम और पुण्यों का कीर्तन जिसका स्वभाव बन जाता है, जो व्यवस्थाओं का प्रिय होता है व्यवस्था को महापुण्यों की सेवा-सुख का होता है, वह वेदों के विषे भी व्यवस्था है । जो निरवधारण विष्णु की प्राप्ति में लगता है व्यवस्था ही भक्तों के स्वायत्त-व्यवस्था में संगठन रहता है और उन्हें जोवन करके सब हुए (संघ) सब का स्वयं सेवक करता है, वह व्यवस्था विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है ।

इस प्रकार प्रकट होता है कि वेदों के मत का एक व्यापक प्रभाव था, जिसमें व्यवस्था की व्यवस्था का मार्ग दिखाई देता था । जाने कहा है

जो भारतवर्ष में रहकर महापुण्य पूर्वोक्त प्रकार के धनमय व्यवस्था करता रहता है, वह हम लोगों का व्यवस्था है । जो धर्म ही इन पुष्पात्माओं में से किसी एक की ओर ही अपने आप को ले जाने की चेष्टा नहीं करता, वह पापघाती एवं बुरा ही है । सबसे बड़ कर बुद्धिहीन व्यवस्था कोई नहीं है, जो

भारतवर्ष में जन्म लेकर पुण्यकर्मों से विमुक्त होता है, ममूत का बड़ा जोड़ कर बिप ब्रह्म पात्र अपनाता है ।

यह समाज-अवस्था बताई है—

जो समुच्च्य देशों और स्मृतियों में बताये वर्गों का व्यवहार करके अपने धर्मका पवित्र नहीं करता, वही भारतवर्षात् और पापियों का अनुयायी है । जो कर्मभूमि भारतवर्ष का धाम्य लेकर वर्ग का व्यवहार नहीं करता, वह वेदक महारमाओं द्वारा सबसे 'अधम' कहा गया है । जो पुण्यकर्मों का परिचाय करके पापकर्मों का सेवन करता है, वह कामधेनु को छोड़कर भाक का दूध खोजता करता है । इस प्रकार बड़ा धार्मिक वैराग्य भी अपने भोगों के नाश से भयभीत होकर भारतवर्ष के भूभाग की प्रशंसा किया करते हैं । यद्यपि भारतवर्ष को सबसे अधिक पवित्र तथा उत्तम समझना चाहिए, यह वैराग्यों के लिए भी दुर्लभ तथा सब कामों का फल देने वाला है । जो इस पुण्यमय भूभाग में अल्पे काम करने के लिये जलत होता है, उसके समान आत्मशास्त्री तीनों लोकों में वृत्त कोई नहीं है । जो इस भारतवर्ष में जन्म लेकर अपने कर्मजन्य काट जालों को चेष्टा करता है, वह नररूप में जिया हुआ साक्षात् 'नापयल' है । (गा० पु०)

जीवन में व्यक्ति के लिये व्यवहार को ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है । यह व्यवहार में तो पूरी तरह लागू नहीं होता था, फिर भी सिद्धान्त रूप में स्वीकृत था । कहा है :

जो परलोक में उत्तम फल प्राप्त करने की इच्छा रखता है, उसे आत्मस्व छोड़कर अल्पे कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । उन कर्मों को अधिकपूर्वक भगवान् विष्णु को समर्पित कर देने पर उनका फल अक्षय माना गया है । यदि कर्म फलों की ओर से मन में वैराग्य हो तो अपने पुण्यकर्मों को भगवान् विष्णु से अर्पण होने के लिये उनके चरकों में समर्पित कर दें । ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुण्य दाय होने पर पुनर्जन्म देने वाले होते हैं; परन्तु जो कर्मों का फल नहीं चाहता, वह भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है । भगवान् को कुछ करने के लिये वैराग्यों द्वारा बताये हुए आत्मियों के अनुसार कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । समुच्च्य निष्काम हो या सकाम, उसे बिना पूर्वक कर्म अवश्य करना चाहिए । कर्मफल की इच्छा त्यागने वाले को अविनाशी पद मिलता है । जो अपने वर्ण और धाम्य के कर्मों को छोड़ देता है, वह विद्वानों द्वारा नीच या पतित माना जाता है । (गा० पु०)

परन्तु साथ में ही वर्ण और धाम्य को भी महत्त्व दिया गया है ।





चाहता हो, उसे ब्राह्मण को ही मान देना चाहिए । सदाचारी ब्राह्मण निबल होकर सबसे शान से उभरता है, किन्तु क्षत्रिय और वैश्य कभी किसी से शान ग्रहण न करें । जो ब्राह्मण कोषी, पुत्रहीन, दम्भाचार-वराचल तथा अपने कर्म का त्याग करने वाला है, उसको दिया हुआ शान निष्फल जाता है । जो परायणी की में धासल, पराये जन का सोभी तथा मधम-सूचक (ज्योतिषी) है, उसे दिया हुआ शान भी बेकार जाता है । जिसके मन में दूसरों के दोष देखने का बुद्धि भरा है, जो इच्छा कमटी और यज्ञ के अनधिकारियों से यज्ञ करने वाला है उसको दिया हुआ शान भी निष्फल जाता है । जो सदा माँकने में ही मगा रहता है जो हिसक कुष्ट और रस का विभक्त करने वाला है, उसे दिया हुआ शान भी बेकार ही होता है । जो भीत नाकर भीबिका बलाठा है, जिसकी भी व्यभिचारिणी है, दूसरों को कष्ट देने वाला है जो लसवार से भीबिका बलाठा है, जो त्याही से जीवन निर्वाह करता है, जो भीबिका के सिधे देखता की सेवा करना स्वीकार करता है, जो समूह माँक का पुरोहित है, जो जामन का काम करता है जो दूसरों की रसोई बनाता है, जो कविता द्वारा लोगों की झूठी बड़ाई करता है, जो बघ और न जाने वाली भीबों को खाता है, जो सुओं का भक्ष खाता है, गुरों के मुँह बनाता है, जो व्यभिचारिणी की की सन्तान का भक्ष खाता है, और जो भयवान् विष्णु के नाम-जप को बेचता है उसको दिया हुआ शान भी व्यर्थ ही जाता है । जो सन्ध्याक्रम को त्यागने वाला है तथा दूधित शान-ग्रहण से बन्ध हो चुका हो, जो दिन में सोता और मैथुन करता है और सार्वज्ञिक में जाता है, जो मङ्गपातकों से मुक्त है, जिसे जात धाहमों ने समाज से बाहर कर दिया है उसे शान देना भी व्यर्थ है । जो कुण्ड ( पति के रहते हुए भी व्यभिचार में उत्पन्न हुआ ) और मोलक ( पति के मर जाने पर व्यभिचार से पैदा हुआ ) है, जो परिनिधि (छोटे भाई के विवाहित हो जाने पर भी स्वयं धर्मिवाहित) छठ, परिवेत्ता (बड़े भाई के धर्मिवाहित रहते हुए भी स्वयं विवाह करने वाला ), की के बघ में रहने वाला और अत्यन्त कुष्ट है, उसे दिया हुआ शान भी न के बराबर ही माना जाता है । जो क्षराबी, माँसखोर, की-सम्पट अत्यन्त लीची, चोर और चुरनी जाने वाला है, जो कोई भी पापपरायण और अशुभ पुरुषों द्वारा सदा निन्दित हो, उनसे न तो शान संग्रह चाहिए और न शान देना ही चाहिए । (गा० पु०)

कल में इस प्रकार ब्राह्मण ने स्वयं ही माँस मलस का परित्याग कर दिया । कर्ण-व्यवस्था को बनाये रखकर भी ब्राह्मण ने भर्तृ अपने को पुरोहित वर्ग से अलग करने की चेष्टा की है । ब्राह्मण को एक अन्ध कील का अनुसरण करने वाला बताया गया है ।

जो ब्राह्मण उत्कृष्ट में भाग हुआ हो उसे यत्नपूर्वक दान देना चाहिए । जो दान भद्रापूर्वक तथा भयवान् विष्णु के समर्पणपूर्वक दिया हुआ एवं जो उत्तम पात्र के वाचना करने पर दिया गया हो वह दान प्रति उत्तम है । इस लोक या परलोक के साथ का उद्देश्य रखकर जो सुपात्र को दान दिया जाता है, वह अकाम दान मध्यम माना गया है । जो दम्भ से, दूसरों की हिंसा के लिए, धर्मिधिपूर्वक भेष से व्यवहारा से और व्यवस्था को दिया जाता है, वह दान प्रथम माना गया है । राजा बलि को समुपलब्ध करने के लिए यात्री व्यवस्थित भाग से तथा व्यवस्था को दिया हुआ दान प्रथम स्वार्थ-सिद्धि के लिये दिया हुआ दान मध्यम तथा भयवान् की प्रसन्नता के लिये दिया हुआ दान उत्तम माना जाता है । वह देव-देवताओं में प्यार डाली पुरुष कहते हैं । ( गा० पु० )

नई परिस्थिति में दान की भी नयी व्याख्या करने की चेष्टा की गई ।

१. दान, दान और दान—ये दान की तीन शक्तियाँ हैं, जो न दान करता है, और न उपयोग में लाता है, उसका दान केवल उसका दान का कारण होता है । दान का दान है धर्म और धर्म नहीं है जो भयवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला है । ( गा० पु० ) ।

दान और धर्म को यहाँ मिलाने की चेष्टा हुई और धर्म की व्याख्या ब्रह्मा में रखी गई । दान की आवश्यकता माना गया । क्यों ? क्योंकि समाज में दान एकत्र करने वाली प्रवृत्ति बड़ रही थी । पूछते हैं

क्या कुछ भीष्म बाल्य नहीं करते ? वे भी इसी जगह में दूसरों के हित के लिये जाते हैं । जहाँ कुछ भी अपनी जड़ों और पत्तों के हाथ दूसरों का हित करते हैं वहाँ धर्म अनुष्ण परोपकारों न हो तो वे मरे हुए के ही समान हैं । जो मरणाधीन मानव शरीर से, दान से भयवान् दान और वाणी से दूसरों की प्रशंसा नहीं करते, उन्हें महान् पापी ही समझना चाहिये । ( गा० पु० )

परोपकार की इतना महत्त्व देना समाज की प्रमुखता को स्वीकार करना था । समाज में दान के विस्तार के साथ स्वार्थ वृद्धि बढ़ती का रही थी इसी लिए एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता का उपदेश दिया गया ।

ध्यान रहे कि यह अनोखी कल्पित नहीं है—अर्थात् एक समाज के विवर्तन के जो दूसरा समाज अन्ध से रहा था, वह अपने लिये नये धर्म निर्धारित कर रहा था । एक प्रकार से यहाँ प्रवृत्ति वगैरे का फिर से नया पुनर्गठन हो रहा था । पुराना हिंसा समाप्त हो जाता था । भय नये सिरे से सम्बन्धों को स्थापित किया जा रहा था ।

इस मानव शरीर इतिहास में अनुरोध के लिये भी नयी जगह खोजी जा

रही थी। समाज के विविध स्वार्थ एक दूसरे में मिलकर अपनी जगह बना रहे थे। तभी कहा है

आ-ओ प्रसीधत वस्तुषु है वह सब बाह्य को जान कर दे, ऐसा मनुष्य पुनर्जन्म से रहित भगवान् विष्णु के नाम में जाता है। भय और जल के समान दूसरा कोई नाम न हुआ है, न होया। भयभय देने वाला प्राणवाता कहा गया है, और जो प्राणवाता है वह सबकुछ देने वाला है। इसलिए भयभय करने वाले को सम्पूर्ण दोनों का फल मिलता है। ( मा० पु० )

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि धार्मिक रूप से बाह्य काशी सीमा तक पर्यमित हो गया था। इसीसे दान की इतनी महिमा है। कहा है

जलदान शीघ्र सन्तुष्ट करने वाला है। इसीसे ब्रह्मवाचो मनुष्यों ने जलदान को भयभय से अधिक महत्त्व बताया है। महापातक भयवा उपपातकों से मुक्त मनुष्य भी यदि जलदान करने वाला है तो वह उन सब पापों से मुक्त हो जाता है, वह ब्रह्मा का कथन है। शरीर को भय से उत्पन्न कहा गया है। प्राणी को भी भयजनित मानते हैं। भय जो जलदान देने वाला है, उसे प्राण वाता समझना चाहिये क्योंकि जो जो पुष्टिकारक दान है वह समस्त मनो-बान्धित फलों को देने वाला है। अतः इस पृथ्वी पर भयभय के समान कोई दूसरा दान नहीं है। ( मा० पु० )

किन्तु दान का महत्त्व जाति परक ही नहीं था। उसमें भय भी योग्यार्थ था।

जो बरिष्ठ भयवा रोयी मनुष्य की रक्षा करता है, उस पर भगवान् विष्णु खुश होकर उसकी इच्छाओं को पूरी करते हैं। जो भय, वाली और क्रिया द्वारा रोयी की सेवा करता है। वह सब पापों से छूट कर सम्पूर्ण क्रमनाशों को प्राप्त कर लेता है। जो बाह्य को निवास-स्नान देता है, उस पर प्रसन्न हो देवेश्वर विष्णु अपना बोक देते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता बाह्य को कपिला नाम दान देता है वह सब पापों से मुक्त हो स्व-स्वक्य हो जाता है। जो भय से व्याकुल भित्त वाले पुत्रों को भयभय दान देता है उसे यदि शराव के एक पत्रके में रत्न और दूसरे पत्रके में पूर्ण रूप से उत्तम बलिष्ठ पैकर सम्पन्न किये हुये सभी यज्ञों की रत्न, तो वे समान होंगे। जो भय-विह्वल बाह्य को रक्षा करता है वह सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान कर जुका और सब यज्ञों की बीजा में जुका समझा गया है। ब्रह्मभय करने वाला स्व-लोक में और कल्याणवाता ब्रह्मलोक में जाता है। ( मा० पु० )

किन्तु साथ में ही आतुर्भय और आभयों को भी स्थान देने को कहा गया है

जो अपने धर्ममोक्षित भाषार के पामन में सत्तम सम्पूर्ण भूतों के हित में उत्तर तथा दम्भ और धनुषा से रहित हैं, वे ब्राह्मणों में जाते हैं। जो भीतरान और ईर्ष्यारहित हो दूसरों को परमार्थ का उपदेश देते हैं और स्वयं भी यमवान की धाराधना में लगे रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य नाम में जाते हैं। जो सत्तम में धारणा का अनुभव करते हैं, साधर्म्य करने के लिये सदा प्रयत्न रहते, और दूसरों के अपराध से मुक्त होकर जाते हैं वे विष्णुनाम में जाते हैं। जो सदा ब्राह्मणों और वीरों का हित साधन करते और पराधीन लोगों के संग वे विमुक्त होते हैं, वे यमलोक का दर्शन नहीं करते हैं। किन्तुने इन्द्रियों और आहार को भीत लिमा है जो काशों के प्रति क्षमा भाव रखने वाले और सुधीन हैं तथा जो ब्राह्मणों पर भी क्षमा भाव रखते हैं, वे ब्रह्मचर्य नाम में जाते हैं। जो धर्म का प्रेम करन काम मुक्त-हेतु पुण्य हैं तथा जो पति की सेवा में तयार रहने वाली स्त्रियाँ हैं, वे कर्मा यम-विराट् रूप संसार के बन्धन में नहीं पड़ती। जो सदा देव पूजा में उत्तर, हरिनाम की धारणा करने वाले तथा प्रतिग्रह से दूर रहते हैं, वे परमेश्वर को प्राप्त कर लेने वाले होते हैं। जो ब्राह्मण के प्रभाव धर्म को बसाते हैं, वे सदा यमलोक यमों का फल भोगते हैं। जो पूजा रहित धर्मविज्ञान का पत्र पुण्य फल धर्मवा बल से पूजन करता है वह विमान पर बैठकर धर्मशास्त्र सिद्ध के पास जाता है। जो भक्त-योग्य और कर्तों द्वारा निर्जन स्थान में स्थित धर्मविज्ञान का पूजन करता है वह पुनरावृत्तिरहित धर्म-साधुज्ज को प्राप्त करता है। ( वा० पु० ) ।

यह स्वयं और नरक के साथ यमज्ज की नीतिकला को सीखा गया है ।

जो पूजा रहित विष्णु-प्रतिमा का बल से पूजन करता है, उसे विष्णु का सातोक्त प्राप्त होता है। जो वैशाख में शिवार्चन के बराबर पूजा को भी जब से सीखता है, वह स्वयं लोक पाता है। जो देव मन्दिर की भूमि को यमज्ज मिश्रित बल से सीखता है, वह बितने कणों का जियोदा है, उतने ही कल्प तक उस देवता के समीप निवास करता है। जो अनुग्रह पत्थर के चूने से देव मन्दिर की दीवारों को पोछता है या उसमें स्थापित धर्म के किण्व बनाता है, उसको धर्म पुण्य प्राप्त होता है। जो यमवान विष्णु या शिव के समीप यमज्ज दीप की व्यवस्था करता है उसको एक एक क्षण में यमलोक यम का फल भुगत होता है। जो देवी के मन्दिर की एक बार, सूर्य के मन्दिर की सात बार यमलोक के मन्दिर की तीन बार और विष्णु-मन्दिर की चार बार परिक्रमा करता है, वह पत्र उनके पास में जाकर लाखों सुवर्ण तक सुख भोगता है। जो नक्ति नाम से यमवान विष्णु या सदा ब्राह्मण की प्रशिक्षण करता है, उसे पत्र पत्र पर यमलोक यम का फल भोगता है। जो काशी में यमवान शिव

के निम्न का पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है, उसका फिर संसार में जन्म नहीं होगा। जो निम्न से भगवान् विष्णु की इच्छा और नाम परिक्रमा करता है, वह भगवन् जनकी कृपा से स्वर्ग से नीचे नहीं जाता है। जो रोग लोक से रहित भगवान् विष्णु की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता है, वह मन से जो-जो चाहता है, उन सब इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है। जो अति-भाग से मुक्त हो देव मन्दिरों में नृत्य या पान करता है, वह सब लोक में जाकर मोक्ष का भागी होता है। जो मनुष्य देव-मन्दिरों में जाया बजाते हैं वे हसमुख विमान में बैठ कर ब्रह्माजी के नाम की जप्ते जाते हैं। जो देवामय में करतल बजाते हैं, वे पापों से छूट कर सब हजार वर्ष तक विमानचारी होते हैं। ( ना० पु० )

समाज में नैतिकता ही उसके मुख्यों का मानदण्ड है। वह कायून से भी ऊपर होती है, क्योंकि इसका सम्बन्ध राम्य से भी ऊपर परमात्मा से माना गया है। यह मनुष्य को सामाजिक बनाती है और अपराध करने से रोक्ती है। समाज में इसका महत्त्व प्रभाव पड़ता है। इसीलिये इस पर बहुत बल दिया है। कहा है

जो सोम मेरी, मृगं पठे, मुरज और विद्विष प्रादि द्वारा देवेस्वर सिद्ध की प्रशंसा करते हैं वे सम्पूर्ण कामनाया से वृजित हो स्वर्ग-लोक में जाकर पाँच कल्पों तक सुख भोगते हैं। जो भगवान् विष्णु के मन्दिर में ताल या मृद आदि का शब्द करता है वह सब पापों से मुक्त हो भगवान् विष्णु के लोक में जाता है, जो उनके साक्षी निर्जन एवं ज्ञानस्वरूप विष्णु हैं, वे समुष्ट होने पर सब जनों का महायोग्य फल देते हैं। जिन देवाधिदेव सुवर्चन-वक्रवारी श्रीहरि के स्मरण-भाव से सब कर्म सफल होते हैं वे जननीस्वर परमात्मा ही सब कर्मों के फल हैं। पुण्य कर्म करने वाले पुण्यों द्वारा सर्वा स्मरण किय जाने पर वे भगवान् उसकी सब पीड़ाओं का नाश करते हैं। भगवान् विष्णु के सहस्र से भी कुछ किया जाता है, वह अक्षय मोक्ष का कारण होता है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं, धर्म के फल भी भगवान् विष्णु ही हैं। इसी प्रकार कर्म कर्मों के फल और उनके मोक्ष भी भगवान् विष्णु ही हैं। कार्य भी विष्णु ॥ करण भी विष्णु ॥ अगते प्रलय कोई नस्तु नहीं—अर्थात् सबकुछ मानव न विष्णु ही है। ( ना० पु० )

भग परमात्मा का एक रूप नहीं माना गया है। वह जिन भी हो सकते हैं, विष्णु भी। वेद भी उसके साथ जुड़ा है। प्रत्यक्ष देवी-देवता तो हैं ही। यह एक बहुत व्यापक बुद्धि है। इसे हिन्दू धर्म का महा रूप कह सकते हैं।

इसमें वर्णन भी है और साथ में प्रति भी है। योग धर्म को भी स्वीकार किया गया है।

परन्तु समाज के कुछ ऐनिक जीवन-व्यवहार सम्बन्धी नियम भी थे। विद्वान्त और व्यवहार में पूरा सामंजस्य बैठ नहीं पाया था। भारतीय समाज में बहुत-सा यह अन्त बहुत दिनों बना है और आज भी चल रहा है। यदि अपनी बगल आज भी मौजूब है और हमारे विद्वान्त इनका स्वयं ही खंडन करते हैं। फिर भी परम्परा बसती जाती है।

आधुनिक को रहने की योजना यों प्रपट होती है—

जो मनुष्य भोजन करते समय श्रेष्ठ में या अज्ञानजन किसी अपवित्र वस्तु को या बाधाल एवं पतित को छू लेता है, वह अपवित्र वस्तु को छू लेने पर तीन रात और बाधाल या पतित को छू लेने पर छः रात तक पञ्चगव्य से तीनों समय स्नान करे ता शुद्ध होता है। यदि कदाचित् भोजन करते समय बाधाल की घुसा से लज्जा हो जाय भयवा बूँट मुँह भयवा अपवित्र रहने पर ऐसी बात हो जाये तो उसकी घुँटि निम्नलिखित कार्य करने से हो सक्ती है। पहले वह बाधाल घोंच जाकर जल से पवित्र होने परान् जल से हाथ धर साफ करके कुम्हा और स्नान करे। इसके बाद दिनरात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है। यदि भोजन करते समय पेसाब हो जाये या पेसाब करने पर बिना घुँटि धिरे हुए ही भोजन करने तो दिनरात उपवास करे और धर्म में भी की भावति है। यदि भोजन के समय बाधाल किसी भी निमित्त से अपवित्र हो जाये तो उस समय घास को जमीन पर रख कर स्नान करने के बाद शुद्ध होता है। यदि उस घास को खाये तो उपवास करने पर शुद्ध होता है और यदि अपवित्र भवस्था में सात भोजन करके उठे तो तीन रात तक उपवास करने से शुद्ध होता है। यदि भोजन करते समय बपन हो जाये तो पस्वस्व मनुष्य तीन तो मायमी मर्गों का धन करे और स्वस्व मनुष्य तीन हजार पावनी बने यही उसके सिधे उत्तम प्रायश्चित्त है। (भा० १००)

यहाँ हम देखते हैं कि अधिक बल स्वास्थ्य और स्वच्छता पर दिया गया है। बेचि-बुझा या एक कारण यह भी था। धर्मियों के साथ अस्वास्थ्य और रोग को भी जोड़कर ही रख दिया गया है। उपर्युक्त मुख्य है—

यदि द्विज भनमूर करने पर बाधाल या भोजन से छू जाये तो वह निराश्रय पत करे और यदि भोजन करके बूँट मुँह छू जाये तो छः रात तक पत करे। यदि पस्वता की और घुँटिका की को बाधाल छूने तो तीन रात तक पत करने पर शुद्ध होती है। यदि पस्वता की कुत्तों बाधालों भयवा कीर्तों से छू जाये तो वह अशुद्ध भवस्था तक निराश्रय रहे और बीजे दिन स्नान करने

सुख होती है। यदि वो रजस्वभार्ये आपस में स्पर्श कर लेती है, तो ब्रह्म कुर्ष पीने से उनकी सुख होती है और ऊपर से भी ब्रह्मकुर्ष द्वारा उन्हें स्नान कराना चाहिए। जो बूढ़े से ब्रह्म जाने पर तुरन्त स्नान नहीं कर लेता उसके लिये भी यही प्रायश्चित्त है। ऋतु काल में भोजन करने जाने पुरुष को वर्माचान होने की आशंका से स्नान करने का विधान है। बिना ऋतु के स्त्री संवत्स करने पर मतसून की ही भाँति सुख मानी गयी है—अर्थात् हाथ, मुँह धोकर कुस्मा करना चाहिये। भोजन कर्म में लगे हुये लोगों पति-पत्नी समुद्ध होते हैं, परन्तु सँझा से उठने पर स्त्री तो सुख हो जाती है पर पुरुष तब तक समुद्ध रहता है जब तक वह स्नान नहीं कर लेता। जो सोय पतिष्ठ न होने पर भी अपने बन्धुजनों का स्नान करते हैं (राजा को उचित है कि) उन्हें उत्तम साहस का दण्ड है। यदि पिता पतिष्ठ हो जाये तो उसके साथ ह्मन्मनुष्य बर्तन करे—अर्थात् अपनी कब्र के अनुसार उसका त्याग और ग्रहण दोनों कर सकते हैं किन्तु माता का त्याग कभी न करे। (भा० पु०)

सैक्स (मीन जीवन के सम्बन्ध में उस समय और ही प्रकार के कारणों से)। सैक्स टेबू के यहाँ कुछ रूप यों स्पष्ट होते हैं।

समाज में बहुत ही बातें निषिद्ध मानी जाती थी—

जो रस्ती प्राणि प्राणियों द्वारा फँसी लगाकर आत्मघात करता है, वह यदि मर जाये तो उसके शरीर में पवित्र वस्तु का लेप कर दे, और यदि जीवित बच जाये तो राजा उससे दो सौ मुद्रा दण्ड ले। उसके पुत्र और मित्रों पर एक एक मुद्रा दण्ड लगावे और वे लेप प्राणीय विधि के अनुसार प्रायश्चित्त करें। जो मनुष्य मरने के लिये बल में प्रवेष्ट करके अथवा फँसी लगाकर मरने से बच जाते हैं जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास ब्रत धारण करके उसे त्याग देते हैं, जो विध पीकर अथवा ऊँचे स्नान से मिर कर मरने की चेष्टा करने पर भी जीवित बच जाते हैं तथा धन का अपने ऊपर आधात करने पर भी नहीं मरते वे सब सम्पूर्ण लोक से बहिष्कृत हैं। इनके साथ मांजन या निवास नहीं करना चाहिए। ये सबके-सब एक आग्रामस अथवा दो तप्तकण्ड ब्रत करने से सुख होते हैं। (भा० पु०)

इस प्रकार आत्महत्या को निषिद्ध बताया गया है। मनुष्य के जीवन की सामाजिकता की अधिक महत्त्व देने के लिये ही इस प्रकार के विधान बने हैं। राज्य (राजा) को भी व्यक्ति से सम्बन्धित बताया गया है।

आये कहा है :

कुत्ते चिमारे, और बारन प्राणि प्राणियों के कटने पर तथा मनुष्य द्वारा बाँटने से कटने पर भी मनुष्य विन रात अथवा सन्ध्या या कोई भी समय कभी न

हो तुरन्त स्नान कर सैन्य पर कुछ हो जाता है। जो बाह्य प्रभाव से या मनमान में किसी प्रकार बाधमान का मन का होता है वह मानव और मानव का साहस करके सत्रह दिन में कुछ होता है। यी प्रभाव बाह्य का वर जता कर मरे हुए मनुष्य का स्पर्श करके तथा उसके बन्धनों को काटकर बाह्य प्रभाव की शक्ति के लिये एक कृष्णवर्ण का धारण करे। माता गुह्यलि, बहिन, पुत्री गुह्यवृ से सवागम करने वाला ही प्रभावित मणि में प्रवेश कर जाय। उसके लिये कुछ का कोई दुष्टता क्वाय नहीं है। सभी, संस्थापिनी, बाय, अपने से थोड़ा बर्तु की स्त्री तथा सवागम गोम बायी स्त्री के साथ सवागम करने पर मनुष्य हो कृष्णवर्ण का अनुष्ठान करे। पिता के गोम या माता के गोम में उत्पन्न होने वाली सम्मान्य स्त्रियों तथा सभी पर स्त्रियों से सम्मान रखने वाला पुत्र उस पाप से हट कर अपनी कुछ के लिये कृष्ण वान्तपनवत करे। जिसका श्रवण तथा रूप कुछोक्त को केवल एक बार १ रात तक पीछ कर वेदवागमन के पाप का विचारण करते हैं। (भा० पु०)

परस्त्रीगमन, कर्तृलेकरता, वैराग्यजन तथा अन्य ऐसी बातों को बहिष्कृत माना गया है। इनकी कानून से रोककर नम और नैतिकता के साथ पर रोकने की चेष्टा भी नहीं है। वैशिष्ट्य समाज में बाय को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था।

कुलस्वामी के लिए जो वस्तु है, वही कुछ भोज नीमात के लिये बताते हैं और कुछ विद्वान् मन्त्रीयों (वर्गग्रह) के लिए भी उसी वस्तु का विधान करते हैं। जो वस्तु से नी के ऊपर उद्धार करके मार विरता है उसके लिए नीमात का जो सामान्य प्रायश्चित्त है उससे बूना वस्तु करने का विधान है। सभी वह वस्तु उसके पाप को कुछ कर सकता है। (भा० पु०)

यों का रक्तस्रवण आसन्न है।

नी होने के लिये संभूते के बचकर बोड़ी, बाह के बचकर बड़ी परमक-कुल और नीली पतली जाल का बन्धा उचित बताया गया है। यदि नीलों के मारने पर उनका गर्भ भी हो और वह मर जाये तो उसके लिये, प्रत्य-प्रभव एक-एक कृष्णवर्ण करे। यदि कोई कष्ट, वेता, पत्थर प्रभवा किसी प्रकार के शस्त्र द्वारा नीलो को मार जाये तो निम्न-निम्न शस्त्र के लिये शस्त्र में इस प्रकार प्रायश्चित्त बताया गया है। काष्ठ से मारने पर आन्तपन वस्तु का विधान है। हथौड़े से मारने पर आन्तपन करना चाहिये। पत्थर से मारने पर वस्तु कृष्ण और किसी शस्त्र से मारने पर अतिकृष्णवर्ण करना चाहिये। (भा० पु०)

भाय भी नीहूला करने वाले को पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। वह यमाया पाय और वैशिष्ट्य समाज के सम्मान पर आसन्न है।



यदि कोई गीर्णों ब्राह्मणों के लिये घण्टी मीसत है भीषण, क्षेम एवं भीजन है, और उसके देने के बाद उसकी मृत्यु हो जाये तो उस ब्राह्मण में कोई प्रायश्चित्त नहीं है। तेज और ब्रह्म पीने पर या ब्रह्म खाने पर, शरीर में बैठे हुये कटि या छोड़े घादि को निकालने का प्रयत्न करने पर मृत्यु हो जाये तो भी कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चिरिरसा या ब्रह्म करने के लिये, बछड़ों का कण्ड बाँधने से भयना राम को उसकी रक्षा के लिये उन्हें घर में रोकने या बाँधने से भी कोई दोष नहीं होता। (भा० पु०)

नाम और ब्राह्मण को एवसा स्थान देना एक मोड़ है। पहले ब्राह्मण को इतना परमिष्ठ नहीं माना जाता था। ब्राह्मण को पूज्य समाने का वह एक न्याय था। कहते हैं--

(उपपुत्र पापों का प्रायश्चित्त करते समय अनुषंग को इस विधि से मुच्छन करना चाहिये) एक पाद (चौपाई) प्रायश्चित्त करने पर कुछ रोम-भान कटा देने चाहिये। दो पाद के प्रायश्चित्त में केवल बाड़ी-मुँछ मुका है, तीन पाद का प्रायश्चित्त करते समय गिरा के सिवा और सब बाल बलबा है और पूरा प्रायश्चित्त करने पर सबकुछ मुका हैना चाहिए। इसी प्रकार क्षिप्त्वा के चिर मुका के विधान है। क्षी के लिये सारे बाल कटाने और भीषण से बैठने का नियम नहीं है। उसके लिये जोसामा में निवास करने की विधि नहीं है बल्कि यदि क्षिप्त्वा को प्रायश्चित्त करना पड़े तो उसके सारे बाल समेट कर दो धनुस बाल कटा देने चाहिए।

राजा राजकुमार भयना बहुत से शास्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण हो उन सबके लिए केवल मुका के बिना ही प्रायश्चित्त बताना चाहिए। उन्हें केर्णों की रक्षा के लिए हुते व्रत पावन करने की आज्ञा है। हुना व्रत करने पर उसके लिए बसिखा भी हुनी होनी चाहिए। यदि ऐसा न करे तो हत्या करने वाले का पाप नष्ट नहीं होता और ब्रह्मा नरक में पड़ता है। जो लोप वेद और स्मृति के विच्छेद व्रत-प्रायश्चित्त बताते हैं, वे चर्म पावन में विघ्न डालने वाले हैं। राजा उन्हें ब्रह्म द्वारा पीड़ित करे, परन्तु किसी कामना या स्वार्थ से मोहित होकर राजा उन्हें क्वापि ब्रह्म नहीं दे, नहीं तो, उनका पाप ही गुना होकर व्रत राजा पर ही पड़ता है। तबन्तर प्रायश्चित्त पुरा कर लेने पर ब्राह्मणों को भीजन कपडे। बीच गाय तथा एक बैस उन्हें बसिखा में है। यदि गीर्णों के धर्मों में भय होकर उसमें कीड़े पड़ जायें भयना मन्त्री घादि सबने मर्गे और इन करणों से गीर्णों की मृत्यु हो जाये तो उन ब्राह्मणों की रखने वाला पुण्य दावे कृष्णव्रत का अनुष्ठान करे, और अपनी सक्ति के अनुसार बसिखा है। इस प्रकार प्रायश्चित्त कराके

ये सब बाधाओं को दूर करके कम-से-कम एक मात्र सुख ही बन कर छोड़ दिया है। (भा० पु०)

यहाँ हम देखते हैं कि प्रायश्चित्त में बाधाओं का सामाजिक लाभ भी सम्मिलित कर लिया गया है—अर्थात् समाज के प्रत्येक नियम के रक्षण के लिए बाधाओं में अपने लिये (पीस) दुष्क नियत किया है। समाज के साथ वह भी स्वयं लिये का अधिकारी है। कहा है—

जल के पीने की बाँधी की कुओं के जल की ऊपर भूमि की, रास्ते की, समझाने की धूमि की तथा नीच से बची हुई—ये सात प्रकार की सृष्टिका काम में नहीं आनी चाहिए। बाधाओं को प्रयत्नपूर्वक दूरार्थ करने चाहिए। दृष्ट (यज्ञ-याग धारि) से वह स्वर्ग पाता है और पूर्व कर्म से वह मोक्ष पुत्र का नामी होता है। जल की अपेक्षा रखने वाले वज्र इन प्राणि कर्म दृष्ट कहलाते हैं। और समाज्य बनवाना धारि कार्य को पूर्व कहा जाता है—विशेषतः बनीया, किसी देवता के लिए बने हुए साक्षात्, बावकी, कुम्भी पोषण और देवमन्दिर—ये यदि मिटते या बह जाते हैं तो जो इनका उद्धार करता है, वह पूर्व कर्म का एक योग्य है क्योंकि वे सब पूर्व कर्म हैं। अक्षय माय का मूत्र आसी जो का मोहर, लवि के रंग आसी माय का मूत्र अक्षय माय का बही और कपिला माय का भी—इन सब वस्तुओं को लेकर एकत्र करे तो वह पञ्चमय्य बने-बने पाठकों का नाश करने वाला होता है। कुम्भी द्वारा लिये हुए तीर्थ-जल, और गन्दी-जल के साथ उल्लेख सभी ब्रह्मों को असत्य-समन प्रत्यक्ष मन्त्र से लकर प्रलय द्वारा ही उन्हें कष्टके प्रलय कथ कष्टे हुए ही बनका आसक्ति करे और ब्रह्म के उद्धारपूर्वक ही उनको पिये। पलायन मूल के विचित्र पत्तों में या ठीके के धुम पात्र में यक्ष्मा कमल के पत्तों में या मिट्टी के बर्तन में कुम्भीयक धारि उस पञ्चमय्य को पीना चाहिए। (भा० पु०)

हम देखते हैं कि इस समय के विस्थापन कुछ दूरे ही थे। आज के युग से उन्हें देखने पर हमें कुछ समीप या समता है। यह कि पण्डितों के प्रारम्भ हुए थे वह हम आज नहीं बता सकते। सामाजिक कर्म के विचार प्रसार के।

एक सूत्र में ब्रह्मण सूत्रक उपस्थित हो जाने से दूरे में लोग नहीं समता। पहले सूत्र के साथ ही उसकी बुद्धि हो जाती है। एक जगत् नीच के साथ ब्रह्मण जगत्नीच और एक मरुस्थलीय के साथ ब्रह्मण मरुस्थलीय भी बुद्ध हो जाता है। एक मातृ के भीतर गर्भ-आय हो तो तीन दिन का गर्भक बताने। दो मातृ से ऊपर होने पर स्थिति महीने में गर्भ-आय हो, बतानी ही राखियों में

उसके प्राचीन की निवृत्ति होती है। साम्प्रदायिक रजस्वला स्त्री रज बन्ध हो जाने पर स्नान-मात्र से मुक्त होती है। विवाह से सातवें पद पर या सप्तपदी की क्रिया पूरी होने पर अपने पितृ-सम्बन्धी गोत्र से अ्युत हो जाती है यानी उसके पति का गोत्र ही जाता है। यद्यपि उसके लिए ब्याह और तर्पण पति के गोत्र से ही करने चाहिए। पित्रागम में पति और परित्र दोनों का ध्येय होता है। यद्यपि प्रत्येक पित्र में दो मास से सक्रम्य होता चाहिए। इसका मतलब यह है कि पिता या पितामह आदि को सप्तलीक विशेषण समाकर पित्रागम करना चाहिए। इस तरह छ व्यक्तिओं के लिये तीन पित्र हैं योम्य हैं। ऐसा बात मोह में नहीं पड़ता। (गा० पु०)

स्त्री का महत्त्व इस रूप से प्राबल्यक समझा गया था। पितृसत्ता में स्त्री को सृष्टि के लिये प्राबल्यक माना जाता था। यह बात हमें सर्वत्र दिखाई देती है। यह सम्बन्ध पितृभोक्त में भी रहता है। कहा है—

माता अपने पति के साथ विश्वेदेवपुर्बक ब्याह का उपनीम करती है। इसी भाँति पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पति के साथ ब्याह-उप करती हैं। प्रत्येक वर्ष में माता-पिता का एकोद्दिष्ट ब्याह द्वारा उत्सव करे। उस वार्षिक ब्याह में विश्वेदेव का पूजन नहीं किया जाता। यद्यपि उनके बिना ही वह ब्याह भोजन कराने। उसमें एक ही पित्र है। निरप, नैमित्तिक काम्य बुद्धिब्याह तथा पार्षण-विधान पुरुषों के ये पाँच प्रकार के ब्याह माने चाहिए। प्रहण, सम्प्रति, पुणिमा या अमावस्या पर्व, उत्सवकाल तथा महानव के समय पर मनुष्य तीन वर्ष है और मृत्यु तिथि को पित्र है। जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ है, वह पित्र्य भोज और सुतक के विषय में पिता के गोत्र से असम्बन्धी है। पाण्डिप्रहण और मन्त्रों द्वारा वह अपने पिता के गोत्र से असम्बन्धी होती है। (गा० पु०)

पितृभोक्त और पितृसत्ताक समाज की व्यवस्था को स्त्री के सम्बन्ध में मिला दिया गया है। स्त्री की महत्ता अपने आप में नहीं मानी गयी है। सबकुछ को धर्मिक महत्त्व दिया गया है।

जिस कन्या का विवाह जिस वर्ण के साथ होता है, उसके समान उसे सुतक भी लगता है। उसके लिये पित्र और तर्पण भी उसी वर्ण के अनुसार होने चाहिए। विवाह हो जाने पर चौथी रात में वह पित्र्य भोज और सुतक के विषय में अपने पति के साथ एक हो जाती है। (गा० पु०)

इससे स्पष्ट होता है कि विवाह से स्त्री का सामाजिक पद बदलता है और उसके ही वार्षिक पद (status) भी। पाये गये हैं—

मृत व्यक्ति के प्रति हित बुद्धि रखने वाले संभ्रान्तों की व्यवस्था के प्रथम, द्वितीय,



उसके प्रतीक की निवृत्ति होती है। साम्प्रदायिकता की रज बन्द हो जाने पर स्नान-मात्र से छुट होती है। विवाह से सातवें पक्ष पर या सप्तपदी की क्रिया पूरी होने पर अपने पितृ-सम्बन्धी भोज से श्रुत हो जाती है यानी उसके पति का भोज हो जाता है। अतः उसके लिए ब्राह्मण और तर्पण पति के भोज से ही करने चाहिए। पित्रदान में पति और पत्नि दोनों का ध्येय होता है। अतः प्रत्येक पित्र में दो भाग से संकल्प होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि पिता या पितामह धार्मिक संपत्तिक विधेयण बनाकर पित्रदान करना चाहिए। इस तरह छः व्यक्तियों के मिले तीन पित्र देने योग्य हैं। ऐसा दाता मोह में नहीं पड़ता। (ना० पु०)

क्री का महत्त्व इस रूप से आवश्यक समझा गया था। पितृसत्ता में क्री को सृष्टि के लिये आवश्यक माना जाता था। यह बात हमें सर्वत्र दिखाई देती है। यह सम्बन्ध पितृभोज में भी रहता है। वस्तु है—

माता अपने पति के साथ विशेषपूर्वक ब्राह्मण का उपभोग करती है। इसी भाँति पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पति के साथ ब्राह्मण-भोज करती हैं। प्रत्येक वर्ष में माता-पिता का एकदिवसीय ब्राह्मण द्वारा उत्सव करे। उस वार्षिक ब्राह्मण में विशेषदेव का पूजन नहीं किया जाता। अतः उनके बिना ही वह ब्राह्मण भोजन करावे। उसमें एक ही पित्र है। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिब्राह्मण तथा पार्यण—विज्ञान पुरुषों के ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण माने जाते हैं। ग्रहण, संक्रांति, पुष्यमा या समावस्था पक्ष, उत्सवकाल तथा मङ्गल के समय पर अनुष्य तीन दण्ड दे और मृत्यु तिथि को पित्र दे। जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ है, वह पित्र गोत्र और सूतक के विषय में पिता के भोज से ग्रस्य नहीं है। पाणिग्रहण और मन्त्रों द्वारा वह अपने पिता के भोज से ग्रस्य होती है। (ना० पु०)

पितृभोज और पितृसत्ताक समाज की व्यवस्था को क्री के सम्बन्ध में मिला दिया गया है। क्री की महत्ता अपने आप से नहीं मानी गयी है। सबलता को अधिक महत्त्व दिया गया है।

जिस कन्या का विवाह जिस बर्ण के साथ होता है, उसके समान उसे सूतक भी समता है। उसके लिये पित्र और तर्पण भी उसी बर्ण के अनुसार होने चाहिए। विवाह हो जाने पर जीवो रज में वह पित्र, भोज और सूतक के विषय में अपने पति के साथ एक हो जाती है। (ना० पु०)

इससे स्पष्ट होता है कि विवाह से क्री का सामाजिक पक्ष बदलता है और उसके ही वार्षिक पक्ष (status) भी। आगे कहा है—

मृत व्यक्ति के प्रति हित बुद्धि रखने वाले अनुभवों को धर्मब्राह्मण के प्रथम, द्वितीय,





पृथीय, धनका चतुर्ध्व दिन अस्मि सचय करना चाहिये या बाह्यण याहि बारों  
 वणों का अस्मिर्सचय क्रमण भीमे पाँचमे सातवें, और मर्ने दिन भी अस्मि  
 बताना गया है । जिस मृत व्यक्ति के लिये म्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता  
 है, यह प्रत्यक्ष लोक से मुक्त और स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । नामि के  
 बराबर जल में डबा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर धारें  
 और यह बलाज्जलि प्रहण करें । दोनों हाथों को समुक्त करके जल से पूर्ण करे  
 और योग्यज्ञान जल उठा कर उसे पुनः जल में डाल दे । जल में डालिए की  
 ओर मुड़ करके डबा हो आकाश में पिछना चाहिये क्योंकि पितरों का स्थान  
 आकाश और वसिष्ठ विद्या है । देवता प्राय (जन्म) कहे गये हैं और पितरों का  
 नाम भी प्राय है अतः पितरों के हित को हर्षा रखने वाला पुत्र्य उनके लिये  
 जल में ही जल दे । ( भा० पु० ) ।

जब समय पितर पूजा (Ancestor worship) इस रूप में उपस्थित थी ।  
 इसके हम समझ सकते हैं कि उस समय के विश्वास दूसरे प्राचार्यों पर निर्भर  
 है । हमें समाजशास्त्रीय दृष्टि से उनका अध्ययन करना चाहिये । विज्ञान  
 सम्बन्धी कारणों सब प्रसंग थीं

जो दिन में सूर्य की किरणों से तपता है, रात में ताराओं के तेज तथा वायु  
 का स्पर्श पता है और दोनों संख्याओं के समय भी उक्त दोनों वस्तुओं का  
 सम्पर्क साध करवा है । वह जल सर्वा पवित्र माना गया है । जो अपने स्वामी  
 विद्वत् रूप में, जिसमें किसी अपवित्र वस्तु का मेल न हुआ हो वह जल सदा  
 पवित्र है, ऐसा जल किसी पात्र में हो या पृथ्वी पर, सदा शुद्ध माना गया  
 है । देवताओं और पितरों के लिये सदा जल में ही बलाज्जलि है और जो बिना  
 संस्कार के ही मरे । उनके लिये विज्ञान पुत्र्य भूमि पर बलाज्जलि है । आठ  
 और होम के समय एक हाथ से पिण्ड एवं आहुति दे किन्तु तर्पण में दोनों  
 हाथों से जल देना चाहिये । यह शास्त्रों द्वारा निश्चित वर्ण है । ( भा० पु० )

अब हम भारतीय विश्वासों का यह रूप देखते हैं

(१) पृथ्वी पर जीवन मनुष्य के कर्म ।

(२) कर्म के फलफल से स्वर्ग और नरक ।

(३) विभिन्न लोकों की चरता की स्वीकृति और पृथ्वी पर किए कर्मों से  
 मनुष्य का उनसे सम्बन्ध ।

(४) परलोक की स्वीकृति—अर्थात् पितर लोक को स्वीकृति ।

इसके प्रतिरिक्त वैदिक जीवन में भी अनेक पाप पुण्य की मर्यादाएँ हैं—

(१) एक नैतिकता (Ethics) है । उसका अर्थन नहीं होना चाहिये ।

(२) वातु मर्त्य याहि उस समाज की व्यवस्था के प्रतीक हैं ।



(३) पाप एक प्रकार से सामाजिक विघटन की प्रक्रिया (Process of social disorganization) है।

(४) उत्क्रांतीन विज्ञान की अपनी मान्यताएँ, जिनमें पितृसाह, स्वर्ग लोक और नरक को माना जाता है।

(५) इनका मानव जीवन और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है।

यों हमारे सामने इन्हीं का एक नया चित्र आता है। वस्तु को प्रकार के हैं—

(१) एक राजा के द्वारा समाया वस्तु।

(२) एक समाज के नियम के उल्लंघन का वस्तु।

राजा और समाज दोनों का ही सम्बन्धोत्पत्ति धर्म से सम्बन्ध है। धर्म का उत्क्रांतीन विज्ञान की कारणता से सम्बन्ध है।

नरक की पूरी कल्पना की गई है। नरक का समाज पर पूरा घातक है।

नरक पाप का फल देने वाले निम्नलिखित माध्यम हैं। यह नारक पुच्छ का साक्ष्य है, जिसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

(१) तपन,

(२) बाधुका,

(३) रौरव,

(४) मह्यरौरव,

(५) कुम्भ,

(६) कुम्भपाक,

(७) निवन्धवास,

(८) काससुन,

(९) ब्रमर्षन,

(१०) बर्मकर अक्षिपञ्चन,

(११) नासाधन,

(१२) हिमोत्पट,

(१३) मृषामस्ता,

(१४) बसाक्ष्य,

(१५) बेटरिखी मयी,

(१६) घमस्त्र,

(१७) मृषपान

(१८) पुरीबह्व,

- (१२) उत्तमसुत,
- (२०) उत्तमसुता,
- (२१) धातुमती सुत,
- (२२) धोणिषु कृप,
- (२३) ध्यानक धोणिषु जीवन,
- (२४) धन्विष्वासा निवेदन,
- (२५) धिमा बुद्धि,
- (२६) धन्विबुद्धि,
- (२७) धन्विबुद्धि,
- (२८) धारोदक,
- (२९) धन्विषु,
- (३०) धन्विषु पिण्डधन्विषु,
- (३१) धन्विषु धोणिषु,
- (३२) धन्विषु धोणिषु,
- (३३) धन्विषु धोणिषु,
- (३४) धन्विषु धोणिषु,
- (३५) धन्विषु धोणिषु,
- (३६) धन्विषु धोणिषु,
- (३७) धन्विषु धोणिषु,
- (३८) धन्विषु धोणिषु,
- (३९) धन्विषु धोणिषु,
- (४०) धन्विषु धोणिषु,
- (४१) धन्विषु धोणिषु,
- (४२) धन्विषु धोणिषु,
- (४३) धन्विषु धोणिषु,
- (४४) धन्विषु धोणिषु,
- (४५) धन्विषु धोणिषु,
- (४६) धन्विषु धोणिषु,
- (४७) धन्विषु धोणिषु,
- (४८) धन्विषु धोणिषु,
- (४९) धन्विषु धोणिषु,
- (५०) धन्विषु धोणिषु,
- (५१) धन्विषु धोणिषु,

- (१२) कबड्डी प्रहरण,
- (१३) नागासर्पबधन,
- (१४) नागामुखासीतम्बुसेवन,
- (१५) सकण्ठभक्षण,
- (१६) स्नायुबन्ध,
- (१७) अस्मिन्नेह,
- (१८) व्याघ्रम्बुर्णरन्ध्रप्रवेश,
- (१९) मसि भोजन,
- (२०) महाघोर पित्तपान,
- (२१) श्लेष्म-भोजन,
- (२२) कृष्णपातन,
- (२३) जलान्तर्यजन,
- (२४) पापाखबारख
- (२५) कण्टकोपरिचयन
- (२६) पिपीलिकाबधन,
- (२७) कुम्भिकपीडन,
- (२८) ध्यामपीडा
- (२९) शृङ्गालीपीडा,
- (३०) महिव-पीडन,
- (३१) कर्ममद्यमन
- (३२) दुर्बलपरिपूर्य,
- (३३) बहुशस्त्रास्त्रखण्डन
- (३४) महाशिला निषेवण
- (३५) धरवुष्कलेनपान,
- (३६) महाकटुनिषेवण,
- (३७) कपामोदकपान,
- (३८) तप्तपादाण-तप्तण,
- (३९) अल्पुष्णशीत-स्नान,
- (४०) बखनशीर्णन,
- (४१) तप्तमांस खपन, और
- (४२) अयोमार-भक्षण,

इस प्रकार करोड़ों तरह की मरक पातनाय होती हैं, जिनका हमारे  
बपों ने भी वर्जन नहीं किया था सकता ।

में जाते हैं। पानकी दान करने से भी जीव विमान द्वारा मुख्यपूर्वक यात्रा करता है। मुक्तासन पड़े, कुर्सी आदि के दान से यह मुख्यपूर्वक जाता है। बपीने लगाने वाला पुरुष धीतल छाया में कुछ से परलोक की यात्रा करता है। पूरुष माना दान करने वाले पुरुष पुष्पक विमान से जाते हैं। जो देवताओं के लिए मन्दिर, सन्यासियों के लिए आश्रम तथा सन्यासों और रोगियों के लिए घर बनवाते हैं, वे परलोक में उत्तम महलों के भीतर रहकर बिहार करते हैं। जो अग्नि, देवता पुरु, ब्राह्मण, माता और पिता की पूजा करता है तथा गुरुभागों और बीमों को रहने के लिये घर देता है, वह सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले ब्रह्मलोक का प्राप्त होता है। जिसने भद्रा के साथ ब्राह्मण को एक कौड़ो का भी दान किया है वह स्वर्गलोक में देवताओं का प्रतिनिधि होता है तथा उसकी कीर्ति बढ़ती है। अतः भद्रापूर्वक दान देना चाहिए। (५० पु०)

ध्यात रहे पौराणिक ने 'यष्ट' ब्राह्मण पर बहुत और दिया है। ब्राह्मणत्व की बाँध भी सीम के आधार पर ही की जाती थी।

इस प्रकार भारतीय समाज का विभटन एक बहुत लम्बे समय से होता जाता आ रहा है। अपराध-नियमन के लिए इसीलिए फलाफल का बात फेंकाया गया। सिद्धान्त रूप में बहुत बड़ी बातें कही गईं।

आज हमारा समाज नये मोड़ पर है। हम फिर नये मानवधर्म की खोज कर रहे हैं, परन्तु हमारे देश की पब्लिकस जनता—ग्रामी में—धमी तक इन्हीं पुराने फलाफल के मानवधर्मों से मन ही मन घातकित रहती है। हमारी आवश्यकता है कि अतीत के सीम के आधारों में से अच्छी बातें स्वीकार करें और फिर से मानववादी संस्कृति का निर्माण करें, जो उन बाधाओं और सीमाओं को पीछे छोड़ दें जिनसे निकलना चाहकर भी हमारे पूर्वज नहीं निकल पाये थे। उन्होंने अपनी सीमा में सबकी व्याख्या की थी और हम निकाले थे लेकिन उनकी धर्म-व्यवस्था उनके सिद्धान्तों का फल नहीं थी उनके सिद्धान्त उनकी धर्मव्यवस्था को उनकी अपनी सीमाओं में व्याख्यामाण थे, जो किसी प्रकार उनसे सार्वजन्य कर लेना चाहते थे।



